सन्मति संदेश

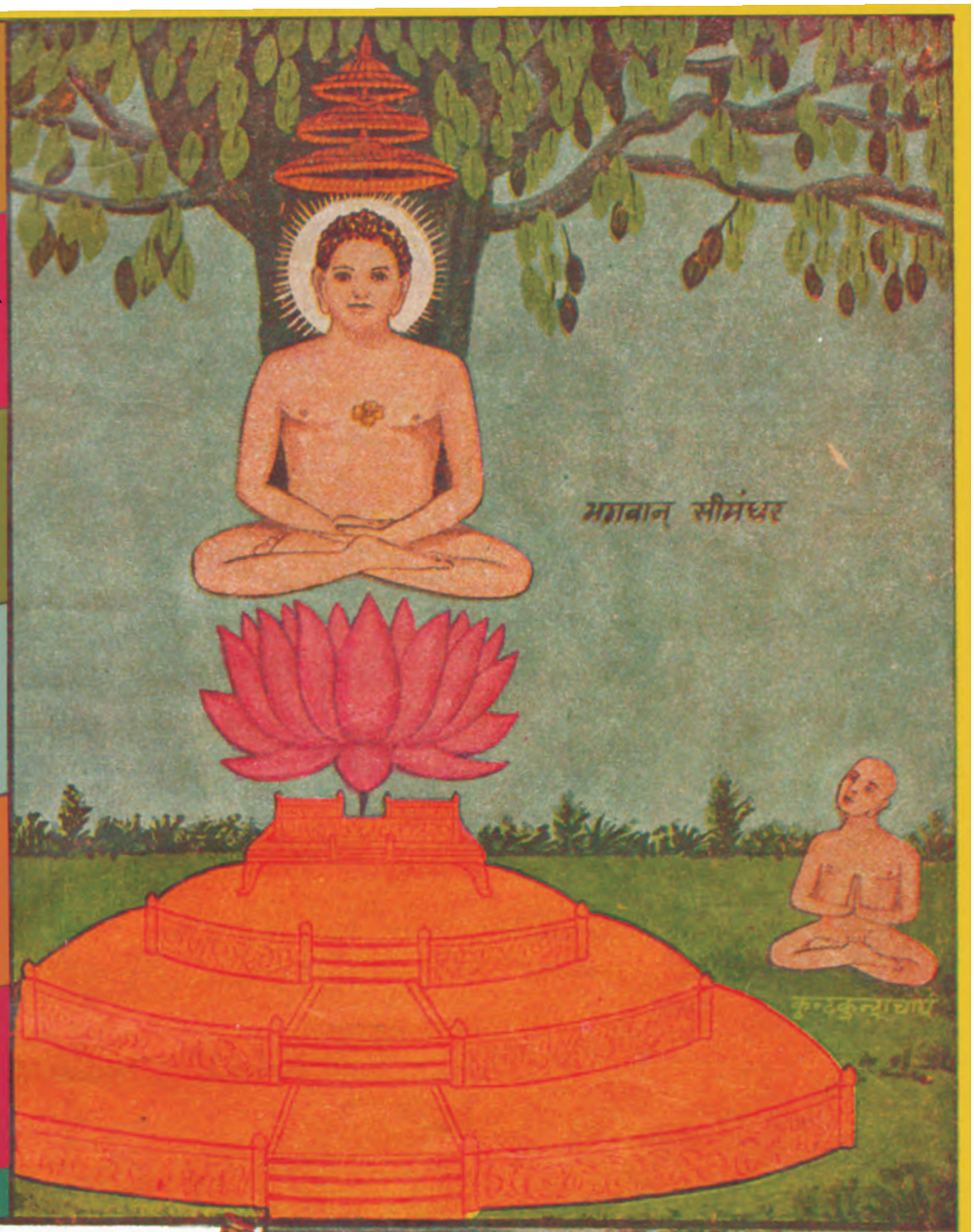

कानजीस्वामी जयंति विशेषांक

वार्षिक मूल्य ५) मई १९६२ इस अंक का मूल्य २)

इस अंक में

पूज्य कानजी के गुरुत्व का... (कविता) 'शशि'
श्रद्धा सुमनांजलियाँ
समयसार का अद्‌भुत प्रभाव
'पं. पन्नालाल साहित्याचार्य' सागर
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो (कथा)
'रूपवती किरण'
समय के प्रेमी पूज्य कानजीस्वामी
'कुन्दनलाल एम.ए.'
श्रद्धा सुमनांजलियाँ (विविध लेखकों द्वारा)
संक्षिप्त जीवन परिचय (स्वामीजी)
चिरंजीवी जयवंत हों (कविता)
'पं० शांतिलाल'
अभियान (कविता) 'युगल जैन, एम.ए. कोटा'
दिगम्बर जैन समाज की प्रगति में नया मोड़
'श्री पं० जगमोहनलाल शास्त्री'
जब मुझे सही दिशा मिली,
'मिश्रीलाल गंगवाल'
शाश्वत सुख के पथप्रदर्शक,
'सेठ राजकुमारसिंह, इंदौर'
अभिनंदन से अधिक आवश्यक पदवंदन,
'इंदौरीलाल बड़जात्या एडवोकेट, इन्दौर'
श्रद्धांजलि 'हीराचन्द बोहरा, कलकत्ता'
सोनगढ़ के सन्त 'विमलचन्द जैन-रांची'
सत्यदर्शन के उपदेष्टा 'यू.एन. ढेबर'
अध्यात्मप्रेम 'ब्र० जिनेन्द्र'
वर्तमान युग के अनुपम उदार चैतन्यरत्न जौहरी,
'पं० रतनलाल शास्त्री, इन्दौर'
एकमात्र सत्पथ प्रदर्शक पूज्य कानजीस्वामी
'पं० गेंदालाल शास्त्री'
सोनगढ़ की विशेषताएँ 'हितैषी'
जब मेरी जीवन दिशा बदली 'श्रद्धालाल'
कुन्दकुन्दाचार्य के विदेहगमन के प्रमाण 'ब्र०गुलाबचन्द'
क्या निमित्त के बिना कार्य होता है 'पूज्य कानजीस्वामी'
श्री कानजीस्वामी की अनेकांत वाणी
'पं० नाथूलाल शास्त्री'
महत्वपूर्ण घटना (संस्मरण)
अभिनन्दनपत्र 'वीरसेवा मंदिर एवं परिषद द्वारा'
पूज्य गुरुदेव का अमर संदेश
'ललिता शाह, बी.ए. आनर्स'
पूज्य गुरुदेव का उपकार 'पं० हीराबाई इन्दौर'
वे स्वयं समयसार हैं,
'सेठ भगवानदास शोभालाल सागर'
जब मुझे राह मिली 'बालमुकुट जैन, दिल्ली'
श्री गुरुदेव के चरणों में मेरी श्रद्धांजलि
'कोमलचन्द एडवोकेटफ
पूज्य गुरुदेव कानजीस्वामी और तीर्थधाम सोनगढ़
'फूलचन्द पांड्या इन्दौरफ
सन्मार्गदर्शी 'कन्हैयालाल पन्नालाल शाह दोहद'
सोनगढ़ के सन्त 'पं० ज्ञानचन्द जैन 'स्वतंत्र' सूरत'
सत्य शोधक 'सेठ नवनीतलाल झवेरीलाल बम्बई'
जहाँ का कण कण शुद्धोऽहं बोल रहा
'सुरेन्द्रकुमार जैन दिल्ली'
श्रद्धांजलि (कविता) 'चम्पालाल सि० पुरंदर'
मोक्ष पथ-प्रदर्शक 'कैलाशचन्द जैन बुलन्दशहर'
भारत की जनता द्वारा हार्दिक अभिनन्दन
व्यवहारनय से कल्याण क्यों नहीं 'पूज्य गुरुदेव'
उपादान की योग्यता 'पूज्य गुरुदेव'
आत्मार्थी सन्त श्री कानजीस्वामी ङ्गबा० छोटलालजी'
जैसा मैंने देखा 'पं० हीरालाल, सिद्धांतशास्त्री'
अभिनन्दन 'श्री सेठ खीमचन्द जेठालाल शाह'
यदि हमारी गुणैक .... 'पं० मणिकचन्द चंवरे'
विचार परिवर्तन, 'सेठ मानमल काशलीवाल'
क्रान्तिकारी श्री कानजीस्वामी
'बंशीधर शास्त्री, एम०ए०'
श्रद्धांजलियाँ (विविध लेखकों द्वारा)
मुमुक्षु मण्डलों के नाम
अनोखा क्रान्तिकारी सन्त (सम्पादकीय)
दिगम्बर जैन मन्दिरों का निर्माण आदि

भगवान सीमंधरस्वामी का प्रत्यक्ष उपदेश सुनने के बाद आचार्य कुन्दकुन्दस्वामी वन में ताड़पत्र पर शास्त्र लिख रहे हैं।

वत्थु सहावो धम्मो

वर्ष ७ वीर निर्वाण सं०

अंक ५

सन्मति–सन्देश

२४८८

आत्मबल, विश्वशांति प्रसारक आध्यात्मिक मासिक पत्र

कार्यालय – ५३५, गाँधीनगर, देहली–३१

सम्पादक

प्रकाश 'हितैषी' शास्त्री

पूज्य कानजी के गुरुत्व का मिलता ओर न छोर

(आशुकवि श्री कल्याणकुमार जैन 'शशि' रामपुर)

आत्मधर्म में निहित धर्म की नैया के पतवार!
कुन्दकुन्द आचार्य समर्थित, परम्परा के हार!
अति प्रभावशाली प्रतिभामय धर्ममूर्ति साकार!
जीवन दर्शन आज तुम्हारा जीवन के अनुसार!
आत्मधर्म को जागृत करने में रत हो निशियाम!
आध्यात्मिकता के प्रहरी तुम, तुमको कोटि प्रणाम!

श्री सोनगढ़ सन्तप्रवर तुम, दिया ज्ञान का दान!
भरा हुआ है आलोकित वाणी में तत्वज्ञान!
आत्मोद्धारक पंथ प्रदर्शक है उपदेश महान्!
मानो बोल रहा शुद्धोऽहं कण कण में गतिमान्!
भटके हुए पगों को तुमसे दिशा मिली अभिराम!
आध्यात्मिकता के प्रहरी तुम, तुमको कोटि प्रणाम!

लगी हुई है झड़ी धर्म–वर्षा की चारों ओर!
सुख खोजी जिज्ञासु विज्ञजन, सब आनन्द विभोर!
सन्त चन्द्र पर मोहित श्रोताओं का चित्त चकारे!
पूज्य कानजी के गुरुत्व का मिलता ओर न छोर!
छेड़ रखा है कर्म सैन्य से भीषणतर संग्राम!
आध्यात्मिकता के प्रहरी तुम, तुमको कोटि प्रणाम!

●

श्रद्धा सुमनांजलि –

प्रखर ज्ञानी

(श्री यू०एन० ढेवरभाई)

पूज्य महाराज श्री कानजीस्वामी की जयन्ती के बारे में मैं क्या सन्देश भेज सकता हूँ। हमारा तो उनकी सेवा में प्रणाम भेजने का अधिकार रहा है और हम प्रणाम भेजते हैं।

पूज्य महाराजश्री का महान् व्यक्तित्व, उनका प्रखर ज्ञान–सन्देश, उनकी तपश्चर्या, उनका प्रेम जितना मैं याद करता हूँ, तो ऐसा लगता है कि उनके पास ही बैठे रहें। आध्यात्मिक दृष्टि का मैंने कोई अभ्यास नहीं किया है। मैं तो एक सेवक हूँ। मेरा स्वधर्म जो मैंने समझा है, उसमें लगा हूँ। फिर भी मैं जानता हूँ कि वे कितना प्रेम दिखलाते हैं। वह उनकी महान् कृपा है।

उनकी सेवा में मैं अपना प्रणाम भेजता हूँ, और आप सबके साथ उनकी सेवा में श्रद्धांजली भेजने में शरीक होता हूँ। ●

अभिनन्दनीय

(श्री जैनरत्न सेठ गुलाबचन्द टोंग्या, इन्दौर)

आत्मार्थी श्री कानजीस्वामी द्वारा जैनधर्म का जो प्रचार उनकी वाणी द्वारा हुआ है – इस तरह का प्रचार गत चार युगों में नहीं हुआ है – साथ ही मैं शुभकामना करता हूँ कि आपका अभिनन्दनीय कार्य सानन्द सम्पन्न हो। ●

युग प्रवर्तक

(श्री पण्डित फूलचन्द सिद्धांतशास्त्री, वाराणसी)

श्री कानजीस्वामी ने मोक्षमार्ग के अनुरूप जिन सिद्धान्तों के प्रचार का बीड़ा उठाया है, उनके उस मार्ग का भीतर से हम अनुमोदन करते हैं। यही हमारी उनके प्रति हार्दिक श्रद्धांजली है। जैन समाज को अन्तरंग से उनकी बात को सुनना चाहिए, यह हमारी विनम्र सम्मति है। इसी में उसकी भलाई है।

आपने उनकी जयन्ती उत्सव के प्रसंग से सन्मति सन्देश का विशेषांक निकालने का

आयोजन किया है। हमारी राय में आपका कार्य प्रशंसनीय है। श्री कानजीस्वामी की भविष्य काल में युगप्रवर्तक पुरुषों में परिगणना की जाएगी। इसलिए इस महापुरुष के प्रति जो भी आदर भाव प्रगट किया जाएगा, वह अल्प ही होगा। हम आपके कार्य का समर्थन करते हैं। दृष्टिदोष के कारण हम लिखने में असमर्थ रहे, इसलिए आपसे क्षमा चाहते हैं। ●

क्रान्तिकारी सन्त

(श्री पण्डित चैनसुखदास न्यायतीर्थ, जयपुर)

इसमें कोई शक नहीं कि श्री कानजीस्वामी के उदय से अनेक अंशों में क्रान्ति उत्पन्न हुई है। पुराना पोपडम खत्म हो रहा है और लोगों को नई दिशा मिल रही है। यह मानना गलता है कि वे एकान्त निश्चय के पोषक हैं। हम सोनगढ़ में एवं सर्वत्र फैले हुए उनके अनुयायियों में निश्चय तथा व्यवहार का सन्तुलन देख रहे हैं। सौराष्ट्र में अनेकों नवीन मन्दिरों का निर्माण तथा उनकी प्रतिष्ठाऐं स्पष्ट बतलाती हैं कि वे व्यवहार का अपलाप नहीं करते। भगवान कुन्दकुन्द के वे सच्चे अनुयायी हैं। जो उनकी आलोचना करते हैं, वे आपे में नहीं हैं व उन्होंने न निश्चय को समझा है और न व्यवहार को और सच तो यह है कि जैन शास्त्रों का हार्द ही उन्होंने नहीं समझा। कानजीस्वामी विवाद में नहीं पड़ना चाहते, पर अपना काम करते जाते हैं। सोनगढ़ से जो धार्मिक साहित्य निकल रहा है, उससे स्वाध्याय का बहुत प्रचार हुआ है। कुछ लोग किसी भी विषय को आन्दोलन का रूप दे देना चाहते हैं। श्री कानजीस्वामी के विषय में भी ऐसा ही हुआ। निमित्त और उपादान तथा क्रमबद्ध पर्याय आदि दार्शनिक चीजें हैं; विद्वानों के समझने की हैं। ऐसी चीजों को आन्दोलन का विषय बनाना समाज की शक्ति क्षीण करना है। हमें प्रत्येक प्रसंग को निष्पक्ष दृष्टि से देखना चाहिए। आपका प्रयत्न प्रशंसनीय है। ●

समयसार का अद्‌भुत प्रभाव

(श्री पण्डित पन्नालाल साहित्याचार्य, मन्त्री-भा०व० विद्वद् परिषद, सागर)

श्री कानजीस्वामी युगपुरुष हैं, उन्होंने दिगम्बर जैनधर्म के प्रभाव का महान् कार्य किया है। उनके इस जीवन निर्माण में समयसार का अद्‌भुत प्रभाव है। इसमें निबद्ध कुन्दकुन्दस्वामी की विशुद्ध अध्यात्म देशना ने अगणित प्राणियों का उपकार किया है। उनसे पहले महाकवि श्री बनारसीदासजी को दिगम्बर धर्म में दीक्षित किया, फिर शतावधानी राजचन्द्रजी को दिगम्बर धर्म का श्रद्धालु बनाया और अब श्री कानजीस्वामी को दिगम्बर जैनधर्म का दृढ़श्रद्धानी बनाया है। न केवल कानजीस्वामी को, किन्तु उनके साथ बीस हजार व्यक्तियों को भी इस धर्म में दीक्षित कराया है। समयसार से प्रभावित होकर ही श्री कानजीस्वामी ने शुद्धवस्तु स्वरूप को समझा, वर्षों इसका एकान्त में मनन किया और अन्तरंग की प्रबल प्रेरणा पाकर अपने जन्मजात धर्म का परिधान छोड़ दिया। अब वे बड़े गौरव के साथ कहते हैं कि संसार सागर से पार करानेवाला यदि कोई धर्म है तो दिगम्बर जैनधर्म ही है। उनके इस सत्कार्य से सौराष्ट्र प्रान्त ही जागृत हुआ हो सो बात नहीं, भारतवर्ष के समस्त प्रदेश जागृत हुए हैं और स्वाध्याय के प्रति निष्ठा का भाव उत्पन्न कर आत्म कल्याण की ओर लग रहे हैं।

समयसार का वस्तुस्वरूप जिनागम के प्राणभूत अनेकान्त को अंगीकृत कर अवतीर्ण हुआ है। उसमें निश्चय-व्यवहार, निमित्त-उपादान, आदि सभी अंगों की चर्चा है। कुन्दकुन्दस्वामी ने जहाँ पौद्‌गलिक कर्मों के निमित्त से उत्पन्न होनेवाले रागादि को निमित्त की अपेक्षा पौद्‌गलिक कहा है, वहाँ यह भी कहा है कि राग की उत्पत्ति में जो पर को ही निमित्त मानते हैं, वे मोहरूपी वाहिनी को पार नहीं कर सकते। उन्होंने जहाँ दान तपो-जिन पूजा आदि व्यवहारधर्म को पुण्य बताकर शुद्धोपयोग की भूमिका में विचरण करनेवालों के लिए हेय बताया है, वहाँ अशुभ उपयोग से बचने के लिये प्रारम्भिक लोगों के लिये हस्तावलम्बन की तरह उसे उपादेय भी बताया है। उन्होंने जहाँ व्यवहारनय को हेय बताया है, वहाँ निश्चयनय को भी हेय बताया है, क्योंकि वस्तुस्वरूप उभयनयपक्षातीत है।

यद्यपि वस्तु स्वरूप निश्चय और व्यवहार दोनों से परे है, तथापि उसका प्रतिपादन करने के लिये दोनों आवश्यक हैं। जो वक्ता अथवा श्रोता दोनों का अच्छी तरह अवगम कर मध्यस्थ होता है, वही जिनागम की देशना का पात्र होता है। जिनधर्म की प्रवृत्ति के लिये व्यवहार और निश्चय दोनों ही अत्याज्य हैं, क्योंकि व्यवहार को सर्वथा छोड़ देने पर तीर्थ नष्ट हो जायेगाऔर निश्चय

को सर्वथा छोड़ देने पर तत्त्व नष्ट हो जायेगा। जो उपादान की अनुकूलता की अपेक्षा न रखकर सिर्फ निमित्त से कार्यसिद्धि चाहता है, वह सदा कर्तृत्व के अहंकार में निमग्न रहता है और जो निमित्त की उपेक्षा कर मात्र उपादान से कार्यसिद्धि मानता है, वह अकर्मण्य रहता है।

श्री कानजीस्वामी की प्रवचन शैली को लेकर आज विद्वानों में मतभेद है, पर मेरा विश्वास है कि स्वामीजी यदि समयसार सम्मत अनेकान्त गर्भित शैली से तत्त्व का निरूपण करें और विद्वान् उसे उसी शैली से अवगत करें तो सब विरोध स्वयमेव शान्त हो सकता है। जैनधर्म की अपनी एक विशेषता है जो उस विशेषता को अवगत कर लेता है, उसे अपना जन्मजात धर्म छोड़ने में देर नहीं लगती। गौतम गणधर और विद्यानन्दस्वामी, इस धर्म में इसकी विशेषता को अवगत करके ही दीक्षित हुए थे। श्री कानजीस्वामी भी इसी विशेषता को अवगत कर इस धर्म में आये हैं, हम उनकी इस परीक्षा प्रधानता का अभिनन्दन करते हैं। ●

मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो

(श्रीमती रूपवती 'किरण', जबलपुर)

'मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो' कथन श्रवण करते ही एक अलौकिक प्रतिभाशाली महान् सन्त कुन्दकुन्दाचार्य की स्मृति जाग उठती है। नेत्रों के सन्मुख पद्मासन लगाये ध्यानस्थ उनकी भव्य आकृति आ जाती है। अन्तस्तल आह्लादित हो उठता है। पंचम काल के भगवान श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्य ने हम पथभ्रष्ट अज्ञानियों को जिनवाणी के द्वारा जो अपूर्व सुधारस पिलाया है, उसकी मधुरता प्रलयकाल तक मानव विस्मृत न कर सकेगा। काश! प्रभु ने इस भारतवर्ष की वसुंधरा को जन्म लेकर पवित्र न किया होता तो हम अधमों का भविष्य घोरातिघोर अन्धकारमय ही रह जाता।

सन्त कुन्दकुन्द बाल ब्रह्मचारी थे। पालने में ही इन्हें अपनी माता द्वारा परम वैराग्य की शिक्षा मिली थी। जिस वैरागय का बीजारोपण गर्भावस्था में हो चुका था, वह माँ की लोरियों से परिपुष्ट होता हुआ अल्पकाल में ही विकसित हो उठा। जब बालक अबोध भोले रह कर अपने अभिभावकों का केवल पदानुसरण करना ही जानते हैं; तब बालक कुन्दकुन्द में निर्णयात्मक बुद्धि का अभ्युदय हुआ। अन्त में विवेक जागा। वे गहन चिन्तन में लीन हो गये।

युग-युग से प्राणी सुख-शान्ति का पिपासु रहा है। वह सदैव मंगलमय सुख की कामना करता है और बाह्याडम्बर में सुख-शान्ति की खोज करता है, परन्तु उसकी यह चिर प्रतीक्षित प्यास दिनोंदिन अतृप्त हो वृद्धिंगत ही होती जाती है। शान्ति नहीं, तृप्ति नहीं। क्यों? मानव ने शान्ति चाही, पर शान्ति के साधन नहीं अपनाये, वह अपने हृदय में सुख की आशा आकांक्षा लिये भौतिक पदार्थों में भटकता रहा। अपनी ही निधि उससे दूर होती रही। मृग मरीचिका से वह तड़पता रहा।

मातुश्री ने बतलाया-अनुभवी पूर्व आचार्यों की कथनी है शान्ति अपने पास है, सुख तेरे अन्तस् में छिपा है - जरा हृदय की खिड़की खोलकर झांक तो सही। पर बाह्यदृष्टि मनीषियों के अनुभव प्रसूत वचनों को मिथ्या समझी, प्रलाप समझी। हमारा दुर्भाग्य है, हम जो उनके वचनों का मूल्यांकन न कर सके। अहो चेतन! अब भी न जागृत हुआ तो महान् कठिनता से प्राप्त यह मानव जीवन व्यर्थ ही समाप्त हो जायेगा। अनेकों आत्मकल्याण के सुअवसर खोकर अनादि काल से संसार में परिभ्रमण कर अशान्तिमय कष्टप्रद दैन्य जीवन व्यतीत कर रहे हो। विचारो तो सही - भला अपनी निधि अपने से दूर? सचमुच ऐसा भी कहीं हुआ है? तो उठो न, मोह का पर्दा फाड़ दो और अपनी आत्मा का साक्षात्कार करो, ममता के श्याम पट के उस पार अपार ज्ञान की तेजोपुंज अमर ज्योति जल रही है। माता-पिता स्वजन, सहोदर गृह सभी बन्धन हैं। वस्त्र! यह भी बन्धन है। इन्हें भी त्याग दूँ? पर... तन भी तो बन्धन है, सबसे अधिक वज्र सदृश! आत्मा भिन्न वस्तु है, तन से इसका क्या प्रयोजन? अर्थात् शरीर भी त्यागना होगा। मृत्यु! मृत्यु नहीं आई, तब क्या आत्मघात कर लूँ? नहीं, इससे कल्याण किस प्रकार होगा? ...आया, कुछ समझ में आ रहा है। शरीर का त्याग करने से नहीं, वरन् इस अधम से अपनत्व का भाव त्यागना होगा।

स्नेहमयी मातुश्री एवं पिताश्री ने समझाया - वत्स! इस नितान्त अल्पवय में दीक्षा कैसी? बालक कुन्दकुन्द गम्भीरता से बोले - मातुश्री! क्या आपने ही मुझे नहीं बताया कि आत्मा का माप शरीर से नहीं? यह अनन्त बलशालिनी है। मुझे आत्मकल्याण की अनुज्ञा प्रदान कीजिये। इस चिर सत्य के सन्मुख दम्पति मौन थे, साधक ज्ञान वैराग्य की साधना में लीन हो गया। सन्तोष अभी भी नहीं हुआ। ज्ञान प्राप्ति की जिज्ञासा बढ़ी और इतनी बढ़ी की समाधान असम्भव सा प्रतिभासित होने लगा। किसी पूर्ण ज्ञानी की खोज थी। भरतक्षेत्र में यह साध! पंचम काल के केवल श्रुतकेवली का अभाव जो हो गया है। फिर भी पृथ्वी का धरातल ज्ञानियों से शून्य नहीं हुआ।

विदेहक्षेत्र का भूतल साक्षात् तीर्थंकरों से अभी विभूषित हो रहा है किन्तु आवागमन के साधनों का अभाव-योजनों ऊँचे विशाल पर्वत विस्तृत प्रदेश में फैले हुए हैं। सरितायें, सरोवर

दूर-दूर तक अगाध जलराशि लिये लहरा रहे हैं। प्रभो! सीमन्धरस्वामी! तुम्हारे समवसरण में भक्त एक बार भी दर्शन पा जाता तो कृतार्थ हो जाता। भक्तिविह्वल मुनि कुन्दकुन्द ने उत्तर दिशा में अवस्थित भगवान सीमन्धर को नतमस्तक हो मौन वन्दन किया।

श्रोतागण आश्चर्यान्वित हुए! सीमन्धरस्वामी की दिव्यध्वनि में प्रतिध्वनित हुआ - मुनि कुन्दकुन्द! तुम्हारी धर्मवृद्धि हो। चक्रवर्ती नरेश कौतुहल का शमन न कर सके। जिज्ञासा की - प्रभो! किन भाग्यशाली मुनिराज को शुभाशीर्वाद प्राप्त हुआ है? उत्तर मिला, राजन्! जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में निकट कुन्दकुन्दाचार्य कठिन तपस्या में लीन हैं। वे तत्त्वज्ञान के जिज्ञासु हैं। देवों ने सुना, उत्सुकता जागी। शीघ्रगमन में समर्थ युगल देव तत्क्षण भरतक्षेत्र हेतु प्रस्थान कर गये। दूसरे ही क्षण वे मुनि के समीप उपस्थित थे। दर्शनकर देव तृप्त हुए। पुनश्च, मुनिश्री की अभिलाषा-पूर्तिहेतु उन्हें लेकर उड़ चले नभ मार्ग से। मुनिश्री के हर्ष का पारावार न रहा। उनकी महती आकांक्षा पूर्ण हुई। वे आहार-जल, निद्रा का त्याग कर समवसरण में प्रभु की अमृतवाणी का निरन्तर पान करते रहे। परम भट्टारक श्रीमद् १००८ सीमन्धरस्वामी के चरणारविन्दों में आत्मा की सच्ची अनुभूति हुई। विकारों का कलुष धुल कर हृदय पवित्र हुआ। जन्म-जन्म के चिर संचित पाप गलकर क्षय हो गये।

तदुपरान्त, मुनिश्री प्रतिबोध प्राप्त कर भगवान सीमन्धर की वाणी को लिपिबद्ध करने में दत्तचित्त हो गये। अनेक मुमुक्षुओं के कल्याण का पथ प्रशस्त किया। काश! मंगलमय पथ प्रदर्शक आचार्य कुन्दकुन्द न होते तो हम अज्ञानियों का भविष्य निविड़ अन्धकारमय रह जाता। आज जो ज्ञान रश्मियाँ प्रकाशदान कर रही हैं; वह सब करुणासिन्धु श्रीमद् भगवान कुन्दकुन्दाचार्य देव के करुणा का सुफल है। फलस्वरूप जिनवाणी की आराधना करने के पूर्व स्वाध्यायप्रेमी विवश मुखर होकर कह उठते हैं - 'मंगल कुन्दकुन्दाद्यो।' मुनिश्री की वीतरागवाणी, प्रेरणास्पद उपदेश प्रलय काल तक निरन्तर भव्यों का पथ आलोकित करता रहे। अन्त में मुनिश्री के चरण कमलों में अकिंचना की विनम्र श्रद्धांजली समर्पित। ●

हुए न हौहिंगे कभी मुनीन्द्र कुन्दकुन्द से!

समय के प्रेमी पूज्य कानजीस्वामी

श्री कुन्दनलाल जैन, एम.ए., एल.टी., सा., शा. दिल्ली

यह तो सर्वविदित ही है पूज्य कानजीस्वामी समय (अर्थात् समयसार एवं टाइम) के बड़े प्रेमी हैं। उनकी हर व्यवस्था समयानुसार (अर्थात् समयसार की कथनी निश्चयानुसार एवं टाइम-वक्त के अनुसार) होती हैं। उनके समयसार के प्रेम का विवेचन तो मैं विद्वानों के लिए छोड़ता हूँ। पर उनके समय (टाइम) के प्रेम के सम्बन्ध की घटना को लिखूंगा।

घटना सन् १९५६-५७ की है, जब वे उत्तर भारत के तीर्थस्थानों की यात्रा के लिए ससंघ विहार कर रहे थे। मैं उन दिनों विदिशा कालेज में था। पूज्य स्वामीजी विहार करते हुए भोपाल पधारे और झिरनों के मन्दिर में ठहरे, वहीं उनका प्रवचन होता था।

जिस दिन उनका भोपाल से प्रस्थान था, उस दिन विदिशा एवं आसपास के नगरों तथा ग्रामों से बहुत से भक्त उनके दर्शनार्थ एवं उन्हें विदा करने के लिए भोपाल गये। दुर्भाग्यवश भोपाल १२ बजे पहुँचनेवाली पठानकोट एक्सप्रेस कुछ लेट हो गई। फिर भी भक्त लोग जैसे-तैसे दौड़धूप करके झिरनों के मन्दिर पहुँच ही गये। पर तब तक १ बज कर कुछ मिनट हो गये थे। पूज्य स्वामीजी का ठीक १ बजे का प्रस्थान था, भक्तजनों की भीड़ पहुँचने-पहुँचते पूज्य स्वामीजी की मोटर आँखों से ओझल हो गई।

किन्हीं सज्जन ने भक्तों के आगमन एवं उनकी दर्शना कामना के सम्बन्ध में पूज्य स्वामीजी से संकेत किया, पर उन्होंने घड़ी की ओर संकेत करते हुए अपनी असमर्थता प्रकट की और आगे बढ़ गये।

उपस्थित जनसमूह में कई लोग बड़े निराश हुए, पर मैं तथा मुझ सरीखे बहुत से लोगों ने उनके इस समयप्रेम की भूरि-भूरि सराहना की। इस घटना से स्पष्ट प्रतीत होता है कि पूज्य कानजीस्वामी आत्मप्रशंसा एवं व्यर्थ के दिखावे एवं ढकोसले से कोसों दूर हैं।

अन्त में ऐसे पुण्यपुरुष को उनके जन्म दिवस पर अपनी पुष्पांजलि अर्पित करते हुए वीर प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि वे 'सौ-सौ वर्ष जियें वर्ष के दिन हों एक हजार।' और धर्म एवं पथभ्रष्ट समाज का मार्गदर्शन कराते रहें, जिससे जैनधर्म अथवा जैन समाज ही नहीं अपितु सम्पूर्ण मानव जाति कल्याण के पथ पर अग्रसर होती हुई, समवेत स्वर में गाती रहे 'जीवेत् शरदः शतम्। शुभं भूयात् चिरंजीयात्।' ●

परमोपकारी

(श्री भाईलाल घेलाभाई, मद्रास)

श्री पूज्य सद्धर्म प्रभावक परमोपकारी सन्त कानजीस्वामी का जितना भी गुणगान करें, थोड़ा है। आपके द्वारा धर्म की जो प्रभावना हो रही है, उसे देखकर थोड़ी देर के लिये श्री तीर्थंकर भगवान का भी विरह भूल जाता है। जहाँ पर दिगम्बरों का नाम निशान तक न था, भगवान के दर्शन करना मुश्किल था, वहाँ आज जगह-जगह मन्दिर बने हैं, समवसरण, मानस्तम्भ निर्माण हुआ तथा तीर्थक्षेत्रों की दो महान यात्राएँ कीं, यह सब देखकर यह कहते हुए अतिश्योक्ति नहीं होगी कि आपने इस पंचम काल में तीर्थंकर जैसा कार्य करके दिखाया है। स्वामीजी दीर्घकाल तक निरोगी शरीर सहित जीकर इस तरह भव्यजीवों को मोक्षमार्ग का उपदेश सदा देते रहें और सभी भारतवासी अपितु अन्य देशवासी जैन, अजैनबन्धु नित्य उसका लाभ लें, यही मंगल कामना हम करते हैं। ●

स्वागत गीत

(श्री डॉ. सौभाग्यमल दोशी, अजमेर)

श्री कहान बिराजो मन मन्दिर स्वागत है शत शत अभिनन्दन।।
हे धर्म-दिवाकर कुलभूषण! जय हो जय जय ऊजम नन्दन।।टेर।।

जलहीन मीन सम व्याकुल थे, यह लोचन अब तक दर्शन को।
उपदेश सुधा बरसा दीजे 'दर्शन' भवताप हरण चन्दन।।१।।

'मोती' के लाल! भाल जग के, प्रवर हो आत्म की कथनी में।
हे अडिग हिमाचल जिनमत पर, निश्चय में निश्चय हो कुन्दन।।२।।

इस धूलि धरा को जब तुमने, निज रूप रतन की खान बना।
पावनतर बेलि जिनालय की, थापित की मानों नन्दन बन।।३।।

हे स्वर्गलोक के धर्मधाम, तुम पद पद्मों का तीर्थ बना।
हे जैन-जगत सम सूर्य शशि तम शीघ्र हरो मिथ्या क्रंदन।।४।।

युग-युग तक युगवीर रहो, सद्-धर्म-ध्वजा को फहराते।
हे कोटि कोटि कंठों की ध्वनि, 'सौभाग्य' मिले तुम पद वन्दन।।५।।

सोनगढ़ के सन्त

(श्री गुलाबचन्द पांड्या, भोपाल)

संसार में विज्ञान के दो रूप हैं – एक भौतिक विज्ञान, दूसरा वीतराग (आध्यात्मिक) विज्ञान। भौतिक विज्ञान जहाँ संसार का कारण है, वहाँ आध्यात्मिक विज्ञान संसार से पार उतारनेवाला है।

हमारा देश प्राचीन काल से ही अध्यात्म प्रधान देश रहा है। यहाँ तीर्थंकर जैसी विभूति, अनन्तानन्त चरम शरीरी हुए, जिन्होंने भौतिक विज्ञान पर विजय प्राप्त कर वीतराग विज्ञान के द्वारा सिद्ध पद प्राप्त किया। विश्व शान्ति (World peace) का रहस्य भी वीतराग विज्ञान में छुपा हुआ है।

जब संसार में अध्यात्मवादी अधिक होते हैं तो विश्व शान्ति बनी रहती है और जब भौतिकवादियों का जोर होता है, तो विनाशकारी अस्त्र-शस्त्रों (राकेट उद्जनवम आदि) के निर्माण के कारण विश्वशान्ति खतरे में पड़ जाती है।

इस युग के आध्यात्मिक सन्तों में १०८ आचार्य शान्तिसागरजी, १०८ मुनि गणेशकीर्तिजी वर्णी, पूज्य कानजीस्वामी, महात्मा गाँधी आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं, जिनके आत्मबल के तेज के कारण हमारा देश युद्ध की भीषण लपटों से बचा रहा। अत: गुरुदेव कानजीस्वामी की ७३वीं जयन्ती पर दीर्घायु की मंगलकामना करते हैं। ●

卐

आत्मार्थी सत्पुरुष कानजी स्वामी

(श्री पंडित हरिप्रसाद शास्त्री, सिंगोली)

७३वीं वर्षगाँठ के सुसमय पर हम हृदय से श्रद्धांजलि समर्पित करते हुए श्री वीर प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि स्वामीजी शतायुष्क हों। विगत वर्षों में कानजीस्वामी ने संसार के समक्ष जैनधर्म का मर्म सत्साहित्य द्वारा रखा, जिससे महान परिवर्तन हुआ। हम अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। ●

आध्यात्मिक सन्त

(श्री प्रो० राजाराम जैन, एम.ए., आरा)

श्री कानजीस्वामी जैन समाज के दयानन्द सरस्वती हैं। एक समय ऐसा भी आया था, जबकि भारत में जैन, बौद्ध, हिन्दू, मुसलमान एवं पारसी अपने शास्त्र-स्वाध्याय से परांगमुख होने लगे थे। उस समय भारत के पश्चिम अंचल में दयानन्द ने जन्म लेकर तथा भारतीय साहित्य का आलोडन विलोडन कर वाद-विवाद की पद्धति से प्रत्येक प्रमुख धर्म, दर्शन एवं साहित्य विषयक शास्त्रार्थ करने का चुनौती भरा आग्रह किया था। उस समय जैन मनीषियों ने उसे स्वीकार कर बड़े ही सत्परिश्रम, सत्साहस एवं अपनी प्रवीणता से अपने पक्ष को गौरवपूर्ण कोटि में ला दिया था। वह काल निश्चय ही हमारे इतिहास का एक स्वर्णिम अध्याय माना जावेगा।

उक्त प्रकृति को आगे बढ़ाने में उसके बाद नि:सन्देह ही एक परम्परा चलती रही, जिसमें कई साधक सरस्वती पुत्रों ने अपने जीवन का सद्व्यय किया। महाश्रमण कानजीस्वामी भी उसी तप:पूत परम्परा के अग्रणी महापुरुष हैं। वे नि:सन्देह ही एक लोकनायक हैं। अपनी दिव्य आत्मा एवं स्वस्थ खिला हुआ ओजस्वी शारीरिक गठन, उसमें सुदृढ़ आत्मा का निखरा रूप, विशाल ललाट, दीप्त मुख और प्रतिभा सम्पन्न वाणी के साथ जब वे 'जन समूह के बीच' उपस्थित होते हैं, तो वह उनके पीछे-पीछे चलने को उतारू हो जाता है।

आज का युग 'तर्क का युग' कहा जाता है। आज हम एक ऐसे युग से गुजर रहे हैं, जिसमें लोग प्राय: सभी प्राचीन परम्पराओं में आमूलचूल परिवर्तन ला देना चाहते हैं। हमारी प्राचीन मान्यताओं को तर्क एवं प्रयोग की कसौटी पर पूज्यश्री ने कसा है। उनका व्यक्तित्व विशाल है। वे जहाँ भी जाते हैं, लोग उनके स्वागत के लिये पलक पाँवड़े बिछा देते हैं, तथा विहार के समय तथा उसके महीनों बाद तक वे गमगीन रहते हैं। उनकी लोकप्रियता को देखने से विदित होता है कि उनके द्वारा निरूपित मान्यताओं का लोगों ने मनन एवं चिन्तन किया है। ऐसे लोकनेता का पाकर हम सभी अपने को गौरवान्वित समझते हैं। उनका तप, त्याग, साधना एवं लोकसेवा इतिहास का एक स्वर्णिम अध्याय है। वे दीर्घायुष्य हों, यही हमारी मंगल कामनायें हैं। ●

जयवन्तो हे गुरु कहान!

(श्री भँवरलाल सेठी, गोहाटी)

सुनकर के उपदेश तुम्हारा
आत्म ज्योति जग जाती है,
मिलती नई दिशा जीवन में,
सब भ्रान्ति भग जाती है।
समयसार का ज्ञान स्वयं
पढ़कर तुमने पाया है,
कुन्दकुन्द की आत्मज्योति से
अपना दीप जलाया है।
क्रियाकाण्ड में धर्म समझकर
भूल रहे थे जब प्राणी,
ऊपर से बहकाते थे कुछ,
हमको मिथ्या अभिमानी।
सद्ज्ञान सूर्य चमका करके
मिथ्या पाखण्ड हटाया है,
जयवंतो हे गुरु कहान!
तुमने सत् मार्ग बताया है।

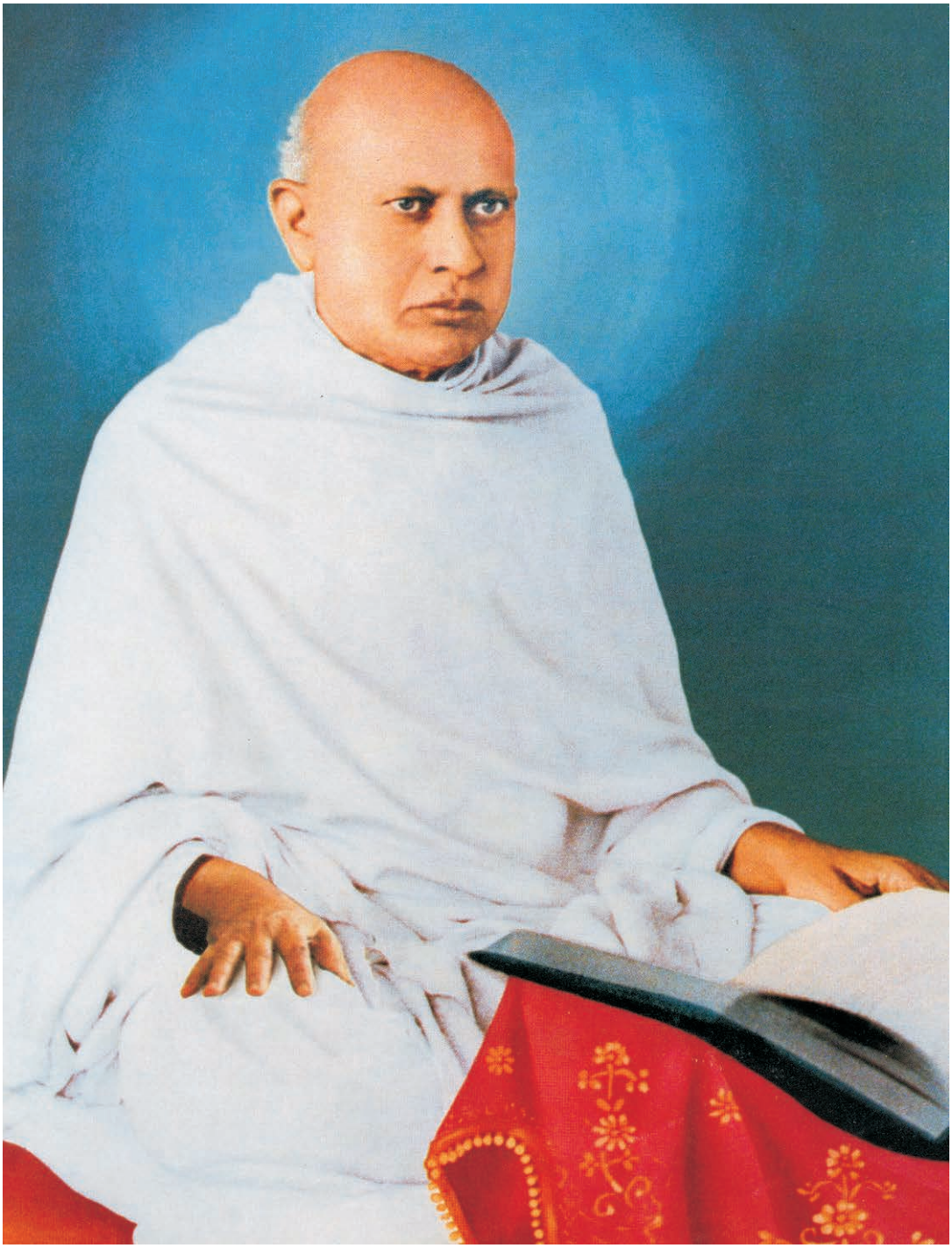

श्री पूज्य आत्मार्थी सत्पुरुष कानजीस्वामी

संक्षिप्त जीवन परिचय

आत्मार्थी श्रद्धेय सन्त श्री कानजीस्वामी

यह जीवन परिचय एक महान सन्त की अमर कहानी है, जिसने सत्य की खोज के लिये तूफानी संघर्षें का हँस-हँसकर सामना करते हुए, जब कोई भी साथ चलने को तैयार नहीं था तब 'सत्य पर अकेला चलो रे' को चरितार्थ किया था। जन्म-जात प्रभावशाली व्यक्तित्व को लेकर अपने कुल परम्परा के स्थानकवासी श्वेताम्बर समाज में साधु दीक्षा लेकर सत्य की खोज में दिन-रात सम्पूर्ण महान ग्रन्थों का आलोडन करते रहे। एक-एक ग्रन्थ को सैकड़ों बार पढ़ा, प्रवचन किया किन्तु उससे आपको आत्मतृप्ति नहीं मिल रही थी। एक बार अनायास आपको समयसार ग्रन्थराज मिल गया, जिसे आपने एकान्त जंगल में जाकर सैकड़ों बार पढ़ा। जितनी बार उसको पढ़ते, उतना ही उसमें से रसास्वादन मिलता। आप जंगल में जाते और दिन-रात इस ग्रन्थराज का आलोडन करते। इसको पढ़ते-पढ़ते आपको ऐसा अपूर्व आनन्द रस मिलता कि कभी-कभी हर्षातिरेक में रो पड़ते। आनन्द विभोर हो भोजनपान भूल जाते। इसी सम्प्रदाय में रहते हुए भी आप सब समयसार का प्रवचन करने लगे। श्रोताओं को भी बड़ा आनन्द आता किन्तु कोई पंथ-मोह वश उससे बाहर निकलने को तैयार नहीं था। किन्तु आपके हृदय में तो सत्य की लगन लगी थी इसलिए सवा तीन वर्ष तक आप सोनगढ़ की एक कोठरी में अकेले रहे। कोई साथ देने को तैयार नहीं था। बल्कि अन्ध श्रद्धालु जन आपके कट्टर दुश्मन बन गये किन्तु किसी की परवाह किये बिना आपने पंथ-मोह छोड़कर दिगम्बर धर्म स्वीकार कर लिया। यद्यपि प्रभावशाली होने से आपकी श्वेताम्बर समाज में बड़ी प्रतिष्ठा थी। आपकी देवता की तरह पूजा होती थी किन्तु यह सब व्यामोह तोड़कर आप सत्य की खोज करने अकेले चल पड़े। समयसार की अनोखी बात सुनकर यहाँ दिगम्बर समाज भी आपको शंकित दृष्टि से देखती, तिरस्कार करती और धर्म डूबा के नारे लगाती। अब दोनों समाज आपसे दुश्मन जैसा व्यवहार करती किन्तु आपने किसी की कोई परवाह नहीं की और अचल संकल्प लेकर आगे बढ़ते गये। इस सत्य की खोज में आपने अपने प्राणों का भी मोह छोड़ दिया। इस महापुरुष की संक्षिप्त जीवन गाथा सुनिये।

पूज्य श्री कानजीस्वामी का जन्म सौराष्ट्र के उमराला, गाँव में सं० १९४६ की वैशाख शुक्ला द्वितीया को हुआ था। आपके पिता का नाम सेठ मोतीलाल और माता का ऊजमबा था। उस समय सौराष्ट्र में सिर्फ श्वेताम्बर सम्प्रदाय की ही प्रसिद्धि थी, दिगम्बर जैनधर्म का नाम भी सौराष्ट्र में में प्रसिद्ध नहीं था। पूज्य कानजीस्वामी को बालवय से ही आत्मिक साधना की लगन थी।

स्थानकवासी दीक्षा

सिर्फ २४ वर्ष की वय में कुमारपन में ही आपने दीक्षा ले ली। चूँकि आपका जन्म स्थानकवासी सम्प्रदाय में हुआ था, इसलिए आपने दीक्षा भी उसी में ली थी, दीक्षा के बाद बहुत अल्प काल में ही सम्पूर्ण श्वेताम्बर साहित्य का सूक्ष्मदृष्टिपूर्वक गहरा अभ्यास आपने कर लिया। श्वेताम्बर धर्म का प्रसिद्ध 'भगवती सूत्र' आपने १७ बार पढ़ा। श्वेताम्बर आगमों के अभ्यास में आपकी कुशाग्र बुद्धि को देखकर सभी श्वेताम्बर साधु आश्चर्य में पड़ गये। श्वेताम्बर समाज में उत्तम प्रवक्ता और प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण आपकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। आपका श्वेताम्बर साधु समाज में भी महत्वपूर्ण सन्मान था। लेकिन आप तो बड़े पुरुषार्थी थे, आपने प्रयत्न नहीं छोड़ा... आत्मप्राप्ति के लिये अन्तर्मंथन करते ही रहे।

वह शुभ घड़ी

संवत् १९७८ में किसी धन्यपल में दिगम्बर जैन सन्त भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव का समयसारजी परमागम आपके हाथ में आया। उसका गहरा अभ्यास और मनन करते ही आपश्री के आत्मिक संस्कार एकदम झनझना उठे; तब आप समयसार को लेकर एकान्त कहीं जंगल में जाकर अध्ययन मनन करते रहे। अनेक वर्षों तक आपने इस प्रकार एकान्त में सैकड़ों बार समयसार का स्वाध्याय किया और अंतर के परमपुरुषार्थ के द्वारा जिस अपूर्व वस्तु की शोध में आप थे, उसकी प्राप्ति कर ली। आपकी आत्मा नि:शंक हो आत्मसाधना का पंथ पाकर पुलकित हो उठी।

पंथ मोह छूटा

स्थानकवासी सम्प्रदाय में आप सर्वोत्कृष्ट प्रवचनकार माने जाते थे और लाखों श्रावक आपको माननेवाले थे। लेकिन आपके चित्त में तो सीमंधरनाथ भगवान और कुन्दकुन्दाचार्यदेव का कहा हुआ दिगम्बर जैनधर्म ही बस चुका था। आपकी प्रवचन शैली भी आत्मलक्ष्मी बन गयी थी। आपके अन्तरंग में सम्प्रदाय का परिवर्तन हो चुका था। अन्त में सं० १९९१ के चैत्र शुक्ला १३ को सोनगढ़ में दि० जिन प्रतिमाजी के चित्रपट को सन्मुख रख करके आपने व्यक्तरूप से स्थानकवासी सम्प्रदाय को छोड़ दिया और प्रगट में दि० जैनधर्म की मान्यता स्वीकार कर ली।

सनातन सत्य की प्रभावना

आपके इस परिवर्तन से सौराष्ट्र की श्वेताम्बर समाज में हाहाकार मच गया, विरोधियों ने विवेक छोड़ करके भी विरोध करने में कुछ कमी नहीं रखी। लेकिन अन्त में तो सत्य की ही विजय

हुई। उपदेश के द्वारा परम सत्य धर्म का वास्तविक स्वरूप आपने प्रदर्शित किया। आपश्री के उपदेश का रहस्य समझ करके हजारों आपके भक्त बन गये। इस तरह आपके द्वारा हजारों जिज्ञासु मानव दिगम्बर जैन धर्म में दीक्षित हो चुके हैं। सौराष्ट्र में जगह-जगह पर दिगम्बर जैन संघ और दिगम्बर जिनमन्दिरों की स्थापना हुई है और अब भी हो रही हैं। वर्तमान में सिर्फ सौराष्ट्र में ही नहीं बल्कि सारे भारतवर्ष में आपश्री के द्वारा दिगम्बर जैनधर्म की महान् प्रभावना हो रही है। सौराष्ट्र में तो दिगम्बर जैनधर्म की प्रभावना करने के लिए आपकी इतनी भारी प्रसिद्धि हो चुकी है कि दिगम्बर जैनधर्म को 'कानजीस्वामी के धर्म' के रूप में ही पहिचानते हैं। और दिगम्बर सम्प्रदाय में जन्म लेनेवाले अनेक लोग भी पूज्य गुरुदेव के साक्षात् परिचय के बाद ऐसा कहते हैं कि :- 'हजारा जन्म दिगम्बर सम्प्रदाय में हुआ था, लेकिन जैनधर्म का वास्तविक स्वरूप हम नहीं जानते थे, आपने ही इसकी पहिचान कराई, इसलिए आपने ही वास्तव में हमको जैन बनाया है।' परिवर्तन के बाद आप एकान्त में बहुत निवृत्ति से रहने लगे, जिसके फलस्वरूप ज्ञान की विशिष्ट निर्मलता के साथ विशुद्ध संस्कार भी प्रगट हो गये।

स्वाध्याय मन्दिर में समयसार की प्रतिष्ठा

पूज्य कानजीस्वामी मुख्यत: सोनगढ़ में ही रहते हें। भक्तजनों ने सोनगढ़ में 'श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट' नामक संस्था की स्थापना की है। इसके द्वारा 'श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर' बनाया गया है, जिसमें आपका निवास है और आपका प्रवचन भी इसी में होता है। संवत् १९९४ में इस स्वाध्यायमिन्दर के उद्घाटन प्रसंग पर इसके एक गोख में ग्रन्थाधिराजश्री रजतपट समयसारजी की पुनीत स्थापना श्रद्धेया बहिनश्री चम्पाबहिन के सुहस्त से की गई है।

सौराष्ट्र में विहार और गिरनार यात्रा

संवत् १९९५-९६ में सौराष्ट्र में विहार करके और राजकोट शहर में चातुर्मास करके पूज्य स्वामीजी ने सौराष्ट्र भर में दिगम्बर जैनधर्म की भारी प्रभावना आरम्भ कर दी। और साथ-साथ श्री नेमिनाथ भगवान के त्रिकल्याणकधाम गिरिनारजी तीर्थ की संघ सहित यात्रा की।

जिन मन्दिर प्रतिष्ठा महोत्सव

संवत् १९९७ में सोनगढ़ में दिगम्बर जिन मन्दिर का निर्माण हुआ, जिसमें बड़े भारी पंचकल्याणक महोत्सव के साथ श्री सीमंधर भगवान, नेमिनाथ भगवान आदि जिनेन्द्र भगवन्तों की प्रतिष्ठा की गई। इस प्रतिष्ठा महोत्सव में करीब २००० भक्त जन आये थे और सौराष्ट्र के अनेक राजे भी आये थे।

समवसरण मन्दिर

संवत् १९९८ में श्री समवसरण मन्दिर की रचना हुई, जिसमें भगवानश्री सीमन्धरस्वामी के समवसरण में कुन्दकुन्दाचार्यदेव उपस्थित हैं और दिव्यध्वनि श्रवण कर रहे हैं। इस प्रसंग का अद्‌भुत दृश्य दिखाया गया है। अनेक प्रमाणों के द्वारा पूज्य गुरुदेव इस बात में पूर्ण रूप से नि:शंक हैं कि श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव महाविदेह क्षेत्र में सीमन्धर भगवान के समवसरण में पधारे थे और वहाँ एक सप्ताह तक ठहरे थे। आप अनेक बार अत्यन्त भक्ति से कहते हैं कि – भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव के हम दासानुदास हैं, आपका हमारे ऊपर बहुत उपकार है।

जैनदर्शन शिक्षण वर्ग

संवत् १९९८ से शुरु करके हरेक वर्ष ग्रीष्मावकाश में 'जैनदर्शन शिक्षण वर्ग' चलाया जाता है, जिसमें भिन्न-भिन्न गाँवों के सैकड़ों विद्यार्थी लाभ लेते हैं। यह धार्मिक वर्ग तीन सप्ताह तक चलता है। इसके बाद परीक्षा ली जाती है और सभी विद्यार्थियों को सैकड़ों रुपयों की पुस्तकों का इनाम दिया जाता है।

इसके उपरान्तु प्रौढ़ गृहस्थों के लिये भी शिक्षण-वर्ग श्रावण मास में खोला जाता है। इसमें भी डॉक्टर, प्रोफेसर, वकील, व्यापारी आदि बहुत गृहस्थ लाभ लेते हैं।

सौराष्ट्र में विहार और प्रभावना

संवत् १९९९-२००० में पूज्य स्वामीजी ने फिर से सौराष्ट्र में पादविहार करके राजकोट में चातुर्मास किया। इस विहार के बीच अनेक श्वेताम्बरों ने बहुत विरोध किया, लेकिन आपने अपने पूर्ण आत्मविश्वास और शान्ति के द्वारा दिगम्बर जैनधर्म का बड़ा प्रभाव बढ़ा दिया। और आपकी आत्मस्पर्शी वाणी के प्रभाव से बीस हजार से अधिक विवेकी जिज्ञासुओं ने अपने श्वेताम्बर सम्प्रदाय को छोड़ करके दिगम्बर जैनधर्म को स्वीकार कर लिया और पूज्य कानजीस्वामी के पक्के अनुयायी बन गये।

आत्मधर्म का प्रकाशन

संवत् २००० के मगसिर मास से 'आत्मधर्म' मासिक का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। मुख्यत: इसमें पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों का सार प्रसिद्ध किया जाता है। दूर-दूर के अनेक लोग रुचिपूर्वक आत्मधर्म का स्वाध्याय करने लगे और सोनगढ़ की तरफ आकर्षित होने लगे। डेढ़ साल के बाद हिन्दी संस्करण भी निकलने लगा। आज भारत में और विदेशों में भी बहुत से जिज्ञासु लोग आत्मधर्म का पठन-पाठन करते हैं।

इसके उपरांत संवत् २००७ से २०१३ तक 'सद्गुरु प्रवचन प्रसाद' नामक दैनिक पत्रिका का भी प्रकाशन होता था और बहुत लोग प्रेम से इसका स्वाध्याय करते थे। लेकिन, लिखते हुए दु:ख होता है कि इस पत्रिका के तंत्री श्री अमृतलाल नरसीभाई सेठ का आकस्मिक स्वर्गवास हो जाने से उसको बन्द कर देने की परिस्थिति आ गयी। अब सुवर्ण संदेश नामक साप्ताहिक पत्र वीर नि०सं० २४८७ से शुरु हुआ है।

सर सेठ हुकमचन्दजी का आगमन

'आत्मधर्म' के द्वारा पूज्य गुरुदेव की महान् प्रभावना का संदेश जानकर दूर-दूर से भी बहुत लोग सोनगढ़ आने लगे। संवत् २००१ में सर सेठ हुकमचन्दजी सोनगढ़ आये। आपने अपनी इस यात्रा को 'सोनगढ़ यात्रा' नाम दिया। सोनगढ़ में पूज्य गुरुदेव के समागम से, प्रवचन सुनने से और आध्यात्मिक वातावरण देखने से आप बहुत प्रभावित एवं प्रसन्न हुए और आपने रु० २५,००१) जैन स्वाध्यायमन्दिर को अर्पण किए।

इसके बाद, दूसरी बार संवत् २००२ में भगवान श्री कुन्दकुन्द प्रवचनमण्डप का शिलान्यास करने के लिए आप सोनगढ़ पधारे, तब आपने रु० ११,००१) प्रदान किया था। और फिर तीसरी बार संवत् २००३ में उस प्रवचनमण्डप का उद्घाटन करने के लिए आप सकुटुम्ब पधारे थे, इस बार आपने रु० ३५,०००) अर्पण किये थे। सर सेठजी हमेशा सोनगढ़ का साहित्य पढ़ते रहते थे और जब पूज्य गुरुदेव की सम्मेदशिखरजी की यात्रा का कार्यक्रम आपने सुना, तुरन्त ही आपने बहुत उल्लास दिखला करके लिखा था कि पूज्य महाराजजी सम्मेदशिखरजी की यात्रा का समाचार जानकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। यदि मेरी शारीरिक हालत अच्छी होती तो मैं भी पूज्य स्वामीजी के साथ-साथ ही शिखरजी की यात्रा को चलता।

इसके उपरान्त दिगम्बर जैन समाज के अनेक त्यागीगण, विद्वानगण और प्रतिष्ठित गृहस्थगण सोनगढ़ में पूज्य स्वामीजी के परिचय में आ चुके हैं और उन सभी ने मुक्तकण्ठ से आपकी प्रशंसा की है।

श्री कुन्दकुन्द प्रवचनमण्डप

पूज्य गुरुदेव का प्रभाव दिन पर दिन बहुत बढ़ता चला गया और उत्सव प्रसंग में श्रोताजन की संख्या इतनी बढ़ने लगी कि ५०X२५ का स्वाध्यायमन्दिर इनको पर्याप्त नहीं होता था; इसलिए इससे चौगुने ५०X१००' का प्रवचन मंडप रुपये १,३५,०००) की लागत से संवत् २००३ में बनाया गया, जिसमें हजारों पुस्तकों का भण्डार भी रहता है। पौराणिक चित्रों और सैद्धान्तिक सूत्रों से इस मण्डप के दीवारों की अच्छी सजावट बनी हुई है।

दिगम्बर जैन विद्वद् परिषद का अधिवेशन

संवत् २००३ में श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषपद का तृतीय वार्षिक अधिवेशन सोनगढ़ में हुआ, जिसमें ३२ विद्वान् बन्धुओं ने और दूसरे हजारों लोगों ने भाग लिया। पूज्य गुरुदेव का परिचय करने के मुख्य उद्देश्य से ही परिषद के अधिवेशन के लिये सोनगढ़ की पसंदगी की गई थी। इस बारे में विद्वत्परिषद के अध्यक्ष श्री पंडित कैलाशचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री ने अपने प्रवचन में कहा था कि 'यहाँ पर परिषद का अधिवेशन करने से हम सबको महाराजश्री के पास से अध्यात्म का बहुत लाभ मिला है। परिषद अपना अधिवेशन का कार्य तो किसी भी स्थान पर कर सकती थी, किन्तु महाराजश्री के आध्यात्मिक उपदेश का लाभ लेने के मुख्य हेतु से इस स्थान को प्रमुखता दी गई। तीन दिन महाराजश्री का आध्यात्मिक व्याख्यान सुनकर मुझे ऐसा आत्मवेदन हुआ है कि अभी मैंने आत्मा का कुछ नहीं किया। हम भगवान से प्रार्थना करते हैं कि हम फिर इधर आवें.... और महाराजश्रीजी का उपदेश सुनकर अपना आत्मकल्याण करें।'

विद्वत्परिषद् के सभी विद्वद्बंधु पूज्य स्वामीजी के साक्षात् परिचय से प्रसन्न हुए थे और पूज्य गुरुदेव को अभिनन्दन देते हुए परिषद् ने एक प्रस्ताव भी पास किया था, जो निम्न प्रकार है –

आत्मार्थी श्री कानजीमहाराज द्वारा जो दिगम्बर जैनधर्म का संरक्षण और संवर्द्धन हो रहा है, विद्वद्परिषद् उसका श्रद्धापूर्वक अभिनन्दन करती है तथा अपने सौराष्ट्री साधर्मी बहिनों–भाईयों के सद्धर्मप्रेम से प्रमुदित होती हुई, उनका हृदय से स्वागत करती है। वह इसे परम सौभाग्य और गौरव का विषय मानती है कि आज दो हजार वर्ष बाद भी महाराज ने श्री १००८ वीर प्रभु के शासन के मूर्तिमान प्रतिनिधि भगवान कुन्दकुन्द की वाणी को समझ कर अपने को ही नहीं पहिचाना है अपितु हजारों और लाखों मनुष्यों को जीव उद्धार के सत्यमार्ग पर चलने की सुविधाएँ जुटा दी हैं। परिषद का दृढ़ विश्वास है कि महाराज के प्रवचन–चिन्तन तथा मनन द्वारा होनेवाला दिगम्बर जैनधर्म की मान्यताओं का विश्लेषण तथा विवेचन न केवल साधर्मियों की दृष्टि को अन्तर्मुख करेगा अथवा सतत ज्ञानाराधकों को अप्रमत्तता के साक्षात् परिणाम आचरण के प्रति तथैव प्रयत्नशील बनायेगा, अपितु मनुष्यमात्र को अन्तर तथा बाह्य पराधीनता से छुड़ानेवाले रत्नत्रय की प्राप्ति करानेवाले वातावरण को सहज ही उत्पन्न कर देगा। अतएव इस अवसर पर अभिनन्दन और स्वागत के साथ–साथ परिषद् यह भी घोषित करती है कि चूँकि आपका कर्तव्य हमारा है, इस प्रवृत्ति में हम आपके साथ हैं। (प्रस्तावक प्रो० खुशालचंद्र जैन एम.ए. और पंडित महेन्द्रकुमारजी, पंडित परमेष्ठीदासजी व पंडित राजेन्द्रकुमारजी इसके समर्थक थे।)

बालब्रह्मचारी भाई–बहनें

पूज्य गुरुदेव के सत्समागम से प्रभावित होकर आत्महित की भावना से अनेक युवक बन्धुओं ने कुमारावस्था में ही आजीवन ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा ली है और अपना सारा जीवन पूज्य गुरुदेव के चरणों में ही बिता रहे हैं तथा अनेक कुमारिका बहिनों ने भी आजीवन ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा ली है और वे अपना जीवन सत्समागम में, धर्ममाता पूज्य बेनश्री बेनजी (चम्पाबहन व शांताबहन) की छत्रछाया में बिता रही हैं।

पूज्य बेनश्री बहिनजी

पूज्य बहिनश्री–बहिनजी ये दोनों पवित्र बहिनें करीब २५ वर्ष से पूज्य गुरुदेव के सत्समागम में रहती हैं और गुरुदेव के पावन उपदेश को अपनी आत्मा में झेलकर अपने जीवन में अलौकिक अध्यात्मरस का पान कर रही हैं। आप दोनों का धर्मरंग से रंगा हुआ प्रशान्त जीवन बहुत प्रशंसनीय है। इन दोनों बहिनों के जीवन का संक्षिप्त परिचय आगे दिया गया है।

जिज्ञासु बहिनों को स्वाध्यायादि के लिये एक बड़ा हाल करीब ४०,००० की लागत से बनाया गया है।

खुशाल अतिथिगृह और बस्ती

बाहर गाँव से आनेवाले जिज्ञासुओं के ठहरने का व भोजनादि का प्रबन्ध खुशाल अतिथिगृह (जैन अतिथि सेवा समिति) में होता है। इसके उपरान्तु अनेक मुमुक्षुओं ने बाहर गाँव से आकर अपने १५० से अधिक स्वतन्त्र मकान बनाये हैं और स्थायीरूप से वहीं पर रहकर सत्समागम कर लाभ लेते हैं। पहले जहाँ जैनों की बस्ती सिर्फ १ धर थी, वहाँ आज आज पूज्य स्वामीजी के सत्समागम के हेतु सैकड़ों घर बस गये हैं।

जिनमंदिर व पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव

पूज्य गुरुदेव के उपदेश से प्रभावित होकर सच्चे देव–गुरु–धर्म के प्रति लोगों में भक्तिभाव बहुत बढ़ने लगा और जगह–जगह वीतरागी जिनेन्द्र देव के दिगम्बर जैन मन्दिर बनने लगे, जिनका विवरण निम्न प्रकार है –

वींछिया में जिन मंदिर २००५ में बना, इसके साथ स्वाध्याय मन्दिर व पाठशाला आदि भी बने। करीब १,००,००० रु. की उपरान्त लागत हुई और पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में कुल ४२ जिनबिम्बों का पंचकल्याणक हुआ। वींछिया में मूलनायक श्रीचन्द्रप्रभ भगवान हैं।

लाठी शहर में संवत् २०१३ में करीब ५०,००० की लागत से दिगम्बर जिनमन्दिर बनकर

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ, जिसमें ५ जिनबिम्बों का पंचकल्याणक हुआ। यहाँ मूलनायक श्री सीमंधर भगवान हैं।

राजकोट शहर में संवत् २००६ में करीब २,५०,००० की लागत से बड़ा दिगम्बर जिनमन्दिर बना, जो अजीव रमणीय है। और यहाँ पर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में ३९ जिनबिम्बों का पंचकल्याणक हुआ। वापस लौटते समय करीब ८०० भक्तों के संघसहित पूज्य गुरुदेव ने शत्रुंजय तीर्थ की यात्रा की।

संवत् २००९ में सोनगढ़ के मानस्तम्भ प्रतिष्ठा का पंचकल्याणक महोत्सव हुआ। इस मानस्तम्भ का निर्माण करीब १,२५,००० रु. की लागत से हुआ है, ६३ फीट उन्नत संगमरमर का यह मानस्तंभ सौराष्ट्र में प्रथम ही है। इसमें ऊपर नीचे चारों दिशाओं में सीमंधर भगवान विराजमान हैं। इस महोत्सव में कुल ३२ जिनबिम्बों का पंचकल्याणक हुआ और करीब ६००० भक्तों ने भाग लिया।

इसी प्रकार पोरबन्दर शहर में संवत् २०१० में करीब ४०,००० रु. की लागत से दिगम्बर जैन मन्दिर बना और पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ, जिसमें ११ जिनबिम्बों का पंचकल्याणक हुआ। यहाँ मूलनायक श्री पार्श्वनाथ भगवान हैं।

पोरबन्दर जाते हुए पूज्य गुरुदेव ने गिरनारजी तीर्थ की यात्रा करीब १ हजार भक्तों के संघ के साथ की।

संवत् २०१० में ही मोरबी शहर में भी करीब ५०,००० की लागत से दिगम्बर जिनमन्दिर बना और पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ, जिसमें १० जिनबिम्बों का पंचकल्याणक हुआ। यहाँ मूलनायक श्री महावीर भगवान हैं।

इसी साल बांकानेर में भी करीब ५०,००० की लागत से दिगम्बर जिनमन्दिर बना और पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ, जिसमें १० जिनबिम्बों का यहाँ पंचकल्याणक हुआ। मूलनायक श्री वर्द्धमान भगवान हैं।

संवत् २०१५ में भारत देश की सुप्रसिद्ध बड़ी नगरी बम्बई में झवेरी बाजार-मुम्बादेवी रोड में करीब ४ लाख की लागत से श्री दिगम्बर जिनमन्दिर बना और बम्बई नगरी में अभूतपूर्व बड़ा प्रभावक पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ जिसमें अनेक वीतरागी जिनबिम्बों का विधिपूर्वक पंचकल्याणक हुआ। यहाँ मूलनायक श्री सीमन्धर भगवान हैं। संवत् २०१६ में सौराष्ट्र के लींबड़ी शहर में भी दिगम्बर जिनमन्दिर बना और पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ, जिसमें अनेक जिनबिम्बों का पंचकल्याणक हुआ। यहाँ मूलनायक श्री पार्श्वनाथ भगवान हैं।

अध्यात्ममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिन तथा पूज्य बहिनजी श्री शान्ताबहिन

संवत् २०१७ में सौराष्ट्र के जामनगर शहर में भी बड़ा भव्य दिगम्बर जिनमन्दिर बना.... यहाँ मूलनायक श्री महावीर भगवान हैं।

इसके उपरान्त वढवाण सिटी, सुरेन्द्रनगर, राणपुर, बोटाद, उमराला, खैरागढ़राज (म.प्र.), जेतपुर, गोण्डल, पडीआ, सावरकुण्डला और पालेज में भी दिगम्बर जिनमन्दिर बड़ी-बड़ी लागत से बन चुके हैं और सब जगह जिनेन्द्र भगवान की वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव बड़ी धूमधाम से हो चुके हैं। जोरावर नगर, आंकड़िया-मोटा आदि गाँवों में भी जिनेन्द्र भगवान विराजमान किये गये हैं। दादर (बम्बई), दहेगाम, जोरावरनगर आदि दूसरे अनेक गाँवों में भी दिगम्बर जिनमन्दिर बनने की तैयारियाँ हो रही हैं।

सोनगढ़ के जिनमन्दिर का जीर्णोद्धार करके नूतनरूप से बाँधा गया, जिसमें करीब १,६५,००० रु. लगे हैं, यह जिनमन्दिर करीब ७० फीट ऊँचा बहुत भव्य और सुशोभित है। इसकी वेदी प्रतिष्ठा भी हो चुकी है।

इस तरह अब तक पूज्य गुरुदेव के महान प्रभाव से सौराष्ट्र में १२ बार पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव हो चुके हैं और १२ जगह पर वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव भी हो चुके हैं। आपके द्वारा अब तक १६७ वीतरागी जिनबिम्बों की प्रतिष्ठा हो चुकी है।

श्री गोगीदेवी दिगम्बर जैन श्राविका ब्रह्मचर्याश्रम

संवत् २००७ में कलकत्ता से श्री सेठ वच्छराजजी गंगवाल अपनी धर्मपत्नी के साथ सोनगढ़ पहली बार आये और यहाँ का धार्मिक वातावरण देखकर आप इतने प्रभावित हुए कि आपकी धर्मपत्नी मनफूलादेवी की ओर से करीब १,२५,००० की लागत से बहिनों के लिये एक आश्रम बनवा दिया है। इसमें पूज्य बेनश्री बेनजी की मंगल छाया में मुख्यतया बालब्रह्मचारिणी बहिनों सहित करीब ३० बहिनें रहती हैं। आश्रम का वातावरण उपशान्त व आह्लादकारी है।

श्री जैन विद्यार्थीगृह

संवत् २००८ से सोनगढ़ में जैन विद्यार्थीगृह (बोर्डिंग) चलता है, जिसमें ३५-४० विद्यार्थी रहते हैं और हाल में इसके लिये एक स्वतंत्र मकान करीब १,००,००० की लागत से बन गया है।

पुस्तक प्रकाशन

पूज्य गुरुदेव की प्रेरणा से सबसे पहले संवत् १९९७ में इस संस्था की ओर से ग्रन्थाधिराज श्री समयसार का गुजराती भाषा में प्रकाशन हुआ। इसके बाद प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय संग्रह आदि बड़े-बड़े शास्त्रों का भी गुजराती भाषा में प्रकाशन हुआ। और पूज्य गुरुदेव के प्रवचन

भी पुस्तकरूप से प्रसिद्ध होते रहते हैं। आजतक भिन्न-भिन्न ८१ तरह की पुस्तकों की करीब ४ लाख प्रतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। समयसार एवं नियमसार शास्त्रों को चाँदी के पत्ते पर लिखाया गया है।

फिल्म रिकार्डिंग

तीर्थधाम सोनगढ़ की, मानस्तम्भ-पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव की, गिरनारयात्रा की और राजकोट-मोरबी के पंचकल्याणकों की फिल्म ली गई हैं। सम्मेदशिखरजी आदि तथा दक्षिण भारत के जैनतीर्थ के साथ मध्यभारत के तीर्थयात्रा की फिल्म भी ली गई है, जिसका योग्य प्रसंगों पर प्रदर्शन किया जाता है। और मद्रास के पास भी कुन्दकुन्दाचार्य की तपोभूमि पौन्नूरहिल तथा कुन्दाद्रि-कुन्दगिरी तीर्थक्षेत्र के जीर्णोद्धार में अच्छी सहायता सोनगढ़ दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट द्वारा तथा समाज द्वारा दी गई है। इस प्रकार श्री बाहुबलीजी श्रवणबेलगोला तथा मूडबिद्री आदि अनेक तीर्थक्षेत्रों पर दान दिया गया है।

पूज्य गुरुदेव के खास-खास प्रवचनों का मशीन से टेप में रिकार्डिंग किया जाता है। अब तक करीब एक हजार प्रवचनों का रिकार्डिंग हो चुका है, जो फिर से मशीन के द्वारा वैसे के वैसे ही सुने जा सकते हैं। अफ्रीका, रंगून, मध्यप्रदेश, दिल्ली, बम्बई, अहमदाबाद, राजकोट आदि बड़े-बड़े शहरों के अनेक भक्तजन इस रिकार्डिंग रील के द्वारा गुरुदेव के प्रवचन सुनने का लाभ उठाते हैं।

अफ्रीका और बर्मा में भी आपके अनेक भक्त हैं और वहाँ पर भी मुमुक्षु मण्डल चल रहा है। उनकी ओर से पू० गुरुदेव को रंगून और अफ्रीका पधारने की विनती भी की गई है। यूरोप में विश्वधर्म सम्मेलन में जैनधर्म की ओर से प्रवचन करने के लिए भी आपको कई बार निमन्त्रण दिया जा चुका है।

तीर्थयात्रा

पूज्य गुरुदेव ने बड़े-बड़े संघ के साथ गिरनारजी तीर्थ की तीन बार एवं शत्रुंजय तीर्थ की दो बार यात्रा की है। शाश्वत तीर्थराज सम्मेदशिखरजी धाम की यात्रा पूज्य गुरुदेव के साथ-साथ करने की बहुत से भक्तजनों की तीव्र भावना थी। गिरनार यात्रा के प्रसंग पर शिखरजी धाम की यात्रा कराने के लिए बड़ी भारी धूम के साथ विनती की गई थी। इसके बाद भी बारबार भक्तजनों की आपसे विनती होती ही रही। पूज्य गुरुदेव का दिल भी अनन्त तीर्थंकर सन्तों की मोक्षभूमि शाश्वत सम्मेदशिखरजी धाम का दर्शन-वंदन करने को उत्कण्ठित हो उठा, और संवत् २०१२ के श्रावण शुक्ला एकम के दिन, आपने सम्मेदशिखरजी तीर्थधाम की यात्रा करने का निर्णय स्पष्ट कर दिया। गुरुदेव का यह निर्णय सुनते ही भक्तों में आनन्द की लहर दौड़ गई। मध्यभारत,

पूर्वभारत व उत्तर भारत की जैन जनता भी अपने देश में गुरुदेव का आगमन सुनकर बड़ी प्रसन्न हुई और गुरुदेव का प्रत्यक्ष दर्शन करने को व आध्यात्मिक प्रवचन सुनने को बहुत उत्कण्ठित हो उठी। और जनता को अपनी उत्कण्ठा पूरी होने का धन्य अवसर मिल गया।

आप संवत् २०१३ में बम्बई में १७ दिन ठहरे तब ८-१० हजार की संख्या में बम्बई की जैन जनता ने बड़ी जिज्ञासा और शान्ति से आपका धार्मिक प्रवचन सुना और सब लोग बहुत प्रभावत हुए।

जैनशासन के महान प्रभावक परमपूज्य गुरुदेव ने बम्बई से सम्मेदिशखरजी की ओर संघ सहित पुनीत प्रयाण किया और रास्ते में अनेक शहरों के हजारों लोगों को जैनधर्म का मंगल संदेश सुनाते-हुए जैनशासन की बड़ी भारी प्रभावना की।

दैनिक चर्या

सोनगढ़ में पूज्य गुरुदेव की दैनिक चर्या सामान्य रूप से इस प्रकार रहती है -

सुबह से उठकर एक घण्टा आत्मचिन्तन में बैठते हैं। पीछे एक घण्टा बाहर घूमकर बाद में श्री जिनेन्द्रदेव का दर्शनादि करते हैु। पश्चात् एक घण्टा प्रवचन होता है, जिसमें सभी मुमुक्षुगण उपस्थित रहते हैं। प्रवचन के बाद नये-नये साहित्य की स्वाध्याय या मुमुक्षुओं के साथ चर्चा होती है। भोजन के बाद पौन घण्टा आराम करके फिर एकान्त में स्वाध्याय-मनन करते हैं। फिर दोपहर का प्रवचन एक घण्टा होता है। प्रवचन के बाद तुरन्त ही जिनमन्दिर में पौन घण्टा भक्ति (सामूहिक स्तुति) होती है। भक्ति के बाद मुमुक्षुओं के साथ चर्चा-वार्ता और स्वाध्याय होता है। सायं एक घण्टा तक मुमुक्षुओं के समक्ष में विराजते हैं, इसके बाद एक घण्टा तक एकान्त में बैठकर आत्मचिन्तन करते हैं और बाद में रात्रि को एक घण्टा तक प्रश्नोत्तररूप से तत्त्व-चर्चा होती है, जिसमें जिज्ञासु अपनी शंका का समाधान कर सकता है। और बिहनों के लिये इसी समय पर अलग शास्त्रसभा पूज्य बेनजी के पास होती है, इस तरह दैनिकचर्या पूर्ण होती है।

पूज्य कानजीस्वामी के प्रभाव से

२५० वीतरागी जिनबिम्बों की प्रतिष्ठा हुई।

२० नये दिगम्बर जिनमन्दिर बने।

१२ बार पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ।

१२ जगह वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ।

४,००,००० पुस्तकें दिगम्बर जैन सिद्धान्त क्की प्रकाशित हुईं।

३० से अधिक कुमार भाई-बहिनों ने आजीवन ब्रह्मचर्य की दीक्षा ली।

हजारों बन्धु दिगम्बर जैनधर्म में दीक्षित हुए।

तीन बार गिरनारयात्रा संघ के साथ की।

सम्मेदशिखर की यात्रा संघ के साथ में की।

संवत् २०१५ में गोम्मटेश्वर और दक्षिण भारत तथा मध्यप्रदेश के प्राचीन तीर्थस्थानों की संघ सहित यात्रा की।

श्रावक ब्रह्मचर्याश्रम की स्थापना हुई।

श्री कानजीस्वामी ने प्रवचन में जो शास्त्र पढ़े हैं, उनका विवरण

श्री समयसार (१३ बार) श्री तत्त्वार्थसार (अमृतचन्द्राचार्य कृत)

श्री नियमसार (५ बार) श्री आत्मानुशासन

श्री प्रवचनसार (५ बार) श्री बृहद्द्रव्यसंग्रह (दो बार)

श्री पंचास्तिकाय (४ बार) श्री अमितगति-योगसार

श्री अष्टप्राभृत (३ बार) श्री भक्तामर स्तोत्र

श्री परमात्मप्रकाश (२ बार) श्री कल्याणमंदिर स्तोत्र

श्री षट्खण्डागम (भाग १) श्री नाटक-समयसार (२ बार)

श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा (२ बार) श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक (अनेक बार)

श्री पद्मनन्दिपच्चीसी श्री तत्त्वज्ञानतरंगिणी

श्री समाधिशतक (२ बार)

श्री सम्यगज्ञानदीपिका

श्री इष्टोपदेश (२ बार) श्री सत्तास्वरूप

श्री उपादान-निमित्त दोहा

श्री अनुभवप्रकाश (२ बार)

इत्यादि अनेक शास्त्रों के ऊपर आपका प्रवचन हो चुका है। इसके उपरान्त आत्मसार, गोमट्टसार, षट्खण्डागम, कषायप्राभृत, महाबन्ध, त्रिलोक-प्रज्ञप्ति, आदिपुराण आदि सभी पुराण, तत्त्वार्थसूत्र, सर्वार्थसिद्धि, तत्त्वार्थराजवार्तिक, श्लोकवार्तिक अर्थप्रकाशिका, प्रमेयकमलमार्तण्ड,

आप्तमीमांसा, अष्टसहस्री, न्यायदीपिका, प्रमेयरत्नमाला, परीक्षामुख, आप्तमीमांसा, आप्तपरीक्षा नयचक्र, आलापपद्धति, चरित्रसार-आचारसार-मूलाचार आदि भगवती आराधना, वसुबिन्दु, प्रतिष्ठापाठ, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, अनागारधर्मामृत, स्वयंभूस्तोत्र, इत्यादि सिद्धांता और पंचाध्यायी आदि अनेक शास्त्रों के महत्व पूर्ण भाग के ऊपर भी आपने विवेचन किया है। वर्तमान उपलब्ध प्राय: सभी जैन साहित्य का आपने स्वाध्याय किया है।

कितने लोगों में यह भ्रम फैला हुआ है कि पूज्य श्री कानजीस्वामी एक समयसार को ही पढ़ते हैं, दूसरे शास्त्रों को वे नहीं मानते; लेकिन उनकी यह धारणा कितनी गलत है, यह उपरोक्त कथन से मालूम हो जायेगा।

धार्मिक उत्सव

सोनगढ़ में धार्मिक उत्सव अपनी अनोखी शैली से धूमधाम पूर्वक मनाया जाता है। श्री वीरनिर्वाण-कल्याणक, कुन्दकुन्दाचार्य का आचार्य पदारोहण दिन, सीमन्धर भगवान की प्रतिष्ठा का वार्षिकोत्सव, महावीर जन्म कल्याणक महोत्सव, अक्षय तृतीया, श्रुतपंचमी, वीरशासन जयंती (दिव्यध्वनि) दिन, वात्सल्य दिन, तीनों अष्टाह्निका, दशलक्षणी धर्म, पर्यूषणपर्व आदि सभी पर्व अत्यन्त उल्लास के साथ मनाये जाते हैं। उत्सवों के दिन बड़ी धूमधाम से पूजन-भक्ति, रथयात्रा आदि कार्यक्रम होता है। हर रोज जिनेन्द्रपूजन भी होता है। दशलक्षणी पर्व में दशलक्षण मण्डल विधान व रत्नत्रय पूजन आदि होता है। हररोज की सामूहिक भक्ति जो कि पूज्य बेनश्री बहनजी कराती हैं और पूज्य गुरुदेव भी जिसमें उपस्थित रहते हैं, इसको देखकर भक्तजन भक्ति से गद्‌गद् हो जाते हैं। भक्ति का ऐसा वातावरण सारे भारत में शायद ही कहीं पर देखने को मिले।

सोनगढ़ परिचय

परम पूज्य गुरुदेव के महान् प्रभाव से छोटा सा सोनगढ़ गाँव सारे भारत में एक तीर्थधाम के रूप से प्रसिद्ध हो चुका है। सोनगढ़ यह पश्चिम रेल्वे का भावनगर लाइन में स्टेशन है, जो धोला जंक्शन के बाद और शिहोर जंक्शन के पहले आता है। शत्रुंजयतीर्थ वहाँ से १४ मील पर है। गिरनारजी तीर्थ भी निकट में है। सोनगढ़ का वातावरण बहुत शान्त व आध्यात्मिकता से ओतप्रोत है, जिसमें प्रवेश करते ही मुमुक्षुगण संसार की झंझटों को भूल जाता है।

ऐसे सोनगढ़ धाम में सीमन्धर भगवान का भव्य जिन मन्दिर व समवसरण मन्दिर, उन्नत मानस्तम्भ, स्वाध्याय मन्दिर, कुन्दकुन्द-प्रवचनमण्डप, गोगीदेवी दिगम्बर जैन श्राविका ब्रह्मचर्याश्रम, कुन्दकुन्द श्राविकाशाला, खुशाल जैन अतिथि भवन आदि स्थान दर्शनीय हैं।

तदुपरान्त पूज्य स्वामीजी का समागम एवं आपके प्रवचनों का लाभ लेने के हेतु आये हुए अनेक मुमुक्षुओं ने निवास के लिये अपने अपने मकान बँगले बनाये हैं। यहाँ दिगम्बर जैन का एक भी घर नहीं था। अब करीब १५० घर बस चुके हैं।

पूज्य श्री कानजीस्वामी के द्वारा दिगम्बर जैनधर्म की जो प्रभावना हो रही है, उसका संक्षिप्त परिचय कराया। अब पूज्य गुरुदेव के उपदेश के बारे में जानना बहुत आवश्यक है, इसलिए यहाँ पर इनका कुछ दिग्दर्शन कराया जाता है। लेकिन यह ध्यान में रखना चाहिए कि गुरुदेव का उपदेश अच्छी तरह समझने के लिए तो प्रत्यक्ष श्रवण ही करना चाहिए।

सर्वज्ञ की श्रद्धा व सम्यग्दर्शन

आप निश्चयपूर्वक कहते हैं कि जिसको धर्म करना हो, उसको सर्वज्ञदेव की श्रद्धा अवश्य होनी चाहिए। सर्वज्ञ की श्रद्धा के बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता, और सम्यग्दर्शन के बिना सर्वज्ञ की सच्ची पहिचान भी नहीं होती। इस तरह दोनों एक-दूसरे के सहभावी हैं; इसलिए 'धर्म का मूल सर्वज्ञ है' ऐसा कहो या 'धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है' ऐसा कहो, ये दोनों एक ही हैं। इस बारे में श्री प्रवचनसार की गाथा ८०-८२ आपको बहुत प्रिय है, जिसमें कहा है कि जो जीव द्रव्य-गुण-पर्याय से अरहन्तदेव को पहचानता है, वह जीव अपनी आत्मा को भी अवश्य पहचानता है और उसका दर्शनमोह अवश्य क्षय हो करके उसको सम्यग्दर्शन होता है। पीछे शुद्धोपयोग के बल से राग-द्वेष का क्षय करने पर चारित्रमोह का भी क्षय हो जाता है। सभी तीर्थंकर भगवन्तों ने इस उपाय से कर्मों का क्षय किया और इसी तरह का उपदेश देकर के निर्वाण पाया; उन अरहन्त भगवन्तों को नमस्कार हो!

सम्यक् पुरुषार्थ

इस जगत में 'सर्वज्ञ' है, सर्वज्ञ ने सभी पदार्थों को तीनों काल की पर्यायों को प्रत्यक्ष जान लिया है, और वैसा ही होने का पदार्थ का स्वरूप है। इसमें कुछ फेरफार करने की जिसकी बुद्धि है, उसे सर्वज्ञ की श्रद्धा में और वस्तुस्वरूप के निर्णय का पुरुषार्थ नहीं है। सर्वज्ञ की श्रद्धा में और वस्तुस्वरूप के निर्णय करने में स्वसन्मुख अपूर्व पुरुषार्थ है। ऐसे पुरुषार्थ के बिना सर्वज्ञ का या क्रमबद्धपर्याय का सच्चा निर्णय कभी नहीं हो सकता।

सर्वज्ञ की श्रद्धा में क्रमबद्ध पर्याय का निर्णय भी आ ही जाता है और इसमें मोक्षमार्ग का सम्यक् पुरुषार्थ भी आ ही जाता है - यह विषय पूज्य गुरुदेव के श्रीमुख से अवश्य सुनकर समझने योग्य है 'सर्वज्ञ ने जो देखा है वही होगा, उसमें फेरफार नहीं होगा - इस तरह सर्वज्ञ की ओट लेने

में पुरुषार्थ उड़ जाता है।' – ऐसी मान्यता में बड़ी गम्भीर भूल है। पूज्य गुरुदेव कहते हैं कि – 'हे भाई तूने सर्वज्ञ का निर्णय किया है क्या? इस जगत में सर्वज्ञ है – जिसको भव नहीं, राग नहीं, द्वेष नहीं, ऐसे सर्वज्ञ का निर्णय करने में, रागादि से भिन्न ज्ञानस्वभाव के निर्णय का पुरुषार्थ भी आ ही जाता है; इसलिए पहले तू सर्वज्ञ का निर्णय कर; सर्वज्ञ का निर्णय करने से (जिसमें क्रमबद्धपर्याय का निर्णय भी आ ही जाता है) तुझे मालूम हो जायेगा कि इसमें सम्यक् पुरुषार्थ आता है या नहीं!'

देशनालब्धि

पूज्य गुरुदेव कहते हैं कि एक बार भी ज्ञानी गुरु के उपदेश का साक्षात् श्रवण किए बिना किसी भी जीव को देशनालब्धि नहीं हो सकती, यह जिन सिद्धांत का नियम है। अज्ञानी के उपदेश से कभी देशनालब्धि नहीं हो सकती। सम्यक्त्व-प्राप्ति के लिए देशनालब्धि में अज्ञानी को निमित्त मानना या अकेले शास्त्र को निमित्त मानना, यह एक बहुत बड़ी भूल है।

मुनिदशा की अचिन्त्य महिमा

आपके प्रवचन में अनेक बार दिगम्बर सन्त मुनिवरों के प्रति भक्तिपूर्ण उद्गार निकलते हैं। 'णमो लोए सव्वसाहूणं' पद का जब आप विवेचन करते हैं, तब श्रोतागण मुनिवरों की भक्ति से गद्गद् हो रोमांचित हो उठते हैं। भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव, नेमिचन्द्राचार्यदेव, धरसेनाचार्यदेव, वीरसेनाचार्यदेव, समन्तभद्राचार्यदेव, नेमिचन्द्राचार्यदेव इत्यादि दिगम्बर सन्तों का स्मरण करके जब आप भक्ति से कहते हैं कि अहो! छट्ठे-सातवें गुणस्थान में आत्मा के आनन्द में झूलनेवाले और वन-जंगल में बसनेवाले उन वीतरागी संत मुनिश्वरों की क्या बात करें!! हम तो उनके दासानुदास हैं। अभी हमारी मुनिदशा नहीं, अभी तो, उसकी भावना भाते हैं। उन मुनिदशा की क्या बात लेकिन उसका दर्शन होना भी बड़ा धन्य भाग है।

आप स्पष्ट कहते हैं कि जिनशासन में वस्त्र सहित मुनिदशा कभी नहीं हो सकती। अन्तर में आत्मज्ञान के बिना अकेले दिगम्बरपन से भी मुनिपद नहीं हो सकता। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के उपरान्त अन्तर में लीनतारूप चरित्र के द्वारा ही मुनिपद होता है और जब ऐसा मुनिपद होता है, तब वस्त्रादिक का त्याग भी सहजरूप से हो ही जाता है।

उपादान निमित्त

किसी भी वस्तु में अपनी योग्यता की सामर्थ्य से कार्य होते समय दूसरे निमित्त की उपस्थिति नियमरूप से होते हुए भी, कार्य में उसका अकिंचित्करपना है; उपादान और निमित्त दोनों का परिणमन एक-दूसरे से स्वतन्त्र है, यह बात आप अनेक दृष्टान्त, युक्ति और शास्त्रीय प्रमाणों से

अच्छी तरह समझाते हैं। आप कहते हैं कि जीव निमित्ताधीन-पराश्रित बुद्धि से ही संसार में भटक रहा है; निमित्ताधीन दृष्टि का परिणमन छोड़कर के अपने स्वाधीन स्वभाव के सन्मुख परिणमन करना यही मुक्ति का मार्ग है।

निश्चय-व्यवहार

निश्चय-व्यवहार के बारे में भी आपकी विवेचन शैली अजोड़ है। निश्चय-व्यवहार का रहस्य आप जिस ढंग से समझाते हैं, यह समझते ही सारे जिन-सिद्धान्त का रहस्य खोलने की चाबी मिल जाती है। आप कहते हैं कि निश्चय स्वभाव के आश्रय से ही मुक्तिमार्ग है। व्यवहार के-शुभराग के-आश्रय से कदापि मुक्ति नहीं हो सकती। और ऐसा भी नहीं कि मुक्तिमार्ग में पहले व्यवहार और पीछे निश्चय। बिना निश्चय के सचचा व्यवहार हो नहीं सकता। व्यवहार करते-करते उसके अवलम्बन से निश्चय हो जायेगा ऐसी जिसकी मान्यता है, उसको दिगम्बर जैनसिद्धान्त में व्यवहारमूढ़ कहा गया है। निश्चय-व्यवहार के इस महत्वपूर्ण सिद्धान्त को आप बहुत विवेचना से समझाते हैं और आप जोरपूर्वक कहते हैं कि यह जैनधर्म की मूल चीज है; इसमें जिसकी भूल है, वह जैनधर्म के रहस्य को समझ नहीं सकता। निश्चय के आश्रय के बिना कभी धर्म की शुरुआत भी नहीं हो सकती।

देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति

जिस जीव को, धर्म की प्रीति है, उसको सम्यग्दर्शन के पहले एवं सम्यग्दर्शन के बाद में भी जब तक, 'राग यह धर्म नहीं है, ऐसा जानते हुए भी, वीतरागी देव-गुरु-शास्त्र के प्रति अतिशय भक्ति-बहुमान-पूजनादि का राग आये बिना नहीं रहता, यदि देव-गुरु-शास्त्र के दर्शन पूजनादि का भाव न आवे तो वह स्वच्छन्दी है और यदि इतने राग में ही धर्म मान कर रुक जाये और सम्यग्दर्शनादि का प्रयत्न न करे तो वह भी अज्ञानी है। इसलिए किस भूमिका में कैसा राग होता है, और धर्म का क्या स्वरूप है। इन दोनों का भिन्न-भिन्न स्वरूप पहचानना चाहिए। आप चरणानुयोग के द्वारा जब गृहस्थों का कर्तव्य समझाते हैं और इसमें भी पुराणों की कथा के द्वारा जब सन्त-पुरुषों का दृष्टान्त देते हैं, तब पुराणपुरुषों का चरित्र मानो अपनी नजरों के समक्ष ही आ रहा हो, ऐसा लगता है।

पुण्य-पाप और धर्म

मिथ्यात्व हिंसादि भाव पाप; दया-पूजा आदि शुभराग पुण्यबन्ध का कारण है; और धर्म तो आत्मा का वीतराग भाव है। इस तरह तीनों का भिन्न-भिन्न स्वरूप आप अच्छी तरह समझाते हैं।

वैसे ही नवतत्त्वों में जीव अजीव की भिन्नता इत्यादि का भी आप बहुत स्पष्ट विवेचन करते हैं। राग के द्वारा संवर होने की मान्यता यह तत्त्व की भूल है।

क्रिया

क्रिया कितने प्रकार की है और इसमें कौन सी क्रिया के द्वारा धर्म होता है। इसके बारे में आप समझाते हैं कि चेतन और जड़ पदार्थ की क्रिया भिन्न-भिन्न है, चेतन की क्रिया चेतन में होती है, और जड़ की क्रिया जड़ में होती है। चेतन की क्रिया जड़ नहीं करता, और जड़ की क्रिया चेतन नहीं करता। क्रिया के तीन प्रकार है।

(१) धर्म क्रिया, (२) विकार की क्रिया और (३) जड़ की क्रिया।

(१) आत्मा का ज्ञान-आनन्दस्वभाव है; जो जड़ से रागादि से पृथक् है - ऐसे स्वभाव में अन्तर्मुख होकर जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप क्रिया होती है, वह धर्म की क्रिया है; यही क्रिया मोक्ष का कारण है।

(२) आत्मा अपने स्वभाव से बहिर्मुख होकर के राग-द्वेष-मोहरूप जो भाव करता है, वह विकार की क्रिया है और यह क्रिया संसार का कारण है।

(३) आत्मा से भिन्न देहादि की जो क्रिया है, वह सब जड़ की क्रिया है, उस जड़ की क्रिया से आत्मा को न तो धर्म होता है न अधर्म, क्योंकि उसका कर्ता आत्मा नहीं।

इस तरह तीनों क्रियाओं का भिन्न-भिन्न रूप समझना चाहिए।

सम्यग्दर्शन

पूज्य गुरुदेव के सर्व उपदेश का मुख्य वजन 'सम्यग्दर्शन' पर है। आप कहते हैं कि - सम्यग्दर्शन अलौकिक और अपूर्व वस्तु है। सिद्ध भगवान जैसे अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद सम्यग्दृष्टि ने अपने आत्मा में चख लिया है। सेकेण्ड के सम्यग्दर्शन में अनन्त भव को नाश कर देने की ताकत है। सम्यग्दर्शन होते ही जीव निशंक हो जाता है कि अब मेरे अनन्त भव का अभाव हो गया। अब मैं साधक हो गया, अल्पकाल में ही मेरी मुक्ति होगी। सम्यक्त्वी को अपने आप अपना निर्णय होता है - दूसरे को पूछना नहीं पड़ता। जीव ने संसार परिभ्रमण में शुभरागरूप व्रत-तप-त्याग अनन्त बार किये लेकिन सम्यग्दर्शन कभी प्रगट नहीं किया और सम्यग्दर्शन के बिना कभी सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र नहीं हो सकता। सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान और चारित्र भी मिथ्या ही होता है। इसलिए सम्यग्दर्शन ही धर्म का मूल है, ऐसा जानकर पहले सम्यग्दर्शन का प्रयत्न करना चाहिए।

इस तरह पूज्य गुरुदेव के उपदेश का संक्षिप्त परिचय कराया। पूज्य गुरुदेव की सानुभव प्रवचन शैली श्रोताजनों को मुग्ध कर देती है। प्रवचनों में आप युक्तियों, दृष्टान्तों और सैकड़ों शास्त्रों के आधार देते हैं। हजारों श्रोताजनों की सभा में भी शान्त वातावरण रहता है और समय की पूरी नियमितता रहती है। आपकी वाणी आत्मस्पर्शी होने से नि:शंकरूप से धाराप्रवाह चली जाती है।

धर्ममाता बहिन श्री बहिनजी

पूज्य गुरुदेव के प्रभाव से जिनशासन की जो बड़ी भारी प्रभावना हुई है, इसका कुछ परिचय कराया। इसी के अन्तर्गत पूज्य बेनश्री बहनजी (भगवती चम्पाबहिन व शान्ताबहिन) इन दोनों बहिनों ने भी अपने पवित्र जीवन के द्वारा जिनशासन की शोभा बढ़ाई है। इसलिए शासनप्रभावना का यह भी एक मुख्य और जीवन्त अंग होने से, यहाँ पर इन दोनों बहिनों के जीवन का संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक है।

पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिन

आपका जन्म संवत् १९७० के गुजराती श्रावण बदी २ के दिन वढवाण शहर में हुआ, उस वक्त किसी को ख्याल नहीं था कि यह लड़की आगे चलकर हजारों भक्त बालकों की धर्ममाता होनेवाली हैं। आप कुछ समय कराची में रहीं; बाद में सिर्फ १६ वर्ष की वय में पूज्य गुरुदेव के समागम में आईं। पूज्य गुरुदेव की आत्मस्पर्शी वाणी सुनते ही इस वैरागी आत्मा के संस्कार झनझना उठे। पूज्य गुरुदेव की वाणी में आत्मा के आनन्द स्वभाव की अद्‌भुत महिमा सुनते ही आपको ऐसी लगन हुई कि 'अहो! ऐसा स्वभाव मुझे प्राप्त करना ही है, मैं अवश्य इसे प्राप्त कर सकूँगी।' और सचमुच में उस दृढ़निश्चयी आत्मा ने, आत्ममंथन की सतत धुन जगाकर अल्पकाल में ही अपने मनोरथ पूर्ण किये। सिर्फ १९ वर्ष की वय में ही आपने अपूर्व आत्मदशा प्राप्त कर ली।

पूज्य बहिनजी शान्ताबहिन

आपका जन्म संवत् १९६७ के फाल्गुन सुदी ११ के दिन डसा (सौराष्ट्र) में हुआ। बालवय से ही कहती थीं कि मैं जीवन में कुछ नवीन करूँगी। आप संवत् १९८३ से पूज्य गुरुदेव के परिचय में आयीं। आत्मा की प्राप्ति के लिए यह वैराग्यवन्त आत्मा रात-दिन तड़पती थी।

संवत् १९८९ में पूज्य गुरुदेव के चातुर्मास के समय आपका पूज्य बेन श्री चम्पाबहन से मिलना हुआ, और आपने महान् आत्म-अर्पणता पूर्वक पूज्य चम्पाबहिन का परिचय किया।

पूज्य बहिनश्री ने अपने हृदय के अन्तर के भावों को खोल दिया और बार-बार आत्मिक उल्लास देकर के उनको 'आप समान' बनाया, इस तरह आत्म-प्राप्ति के लिए झरते हुए इस आत्मा ने भी आत्म-प्राप्ति कर ली।

बस, दोनों साधक सखियों का मिलन हो चुका। पूज्य गुरुदेव की छत्रछाया में दोनों बहिनें एक-दूसरे के जीवन में इतनी हिल-मिल गई हैं मानो श्रद्धा और क्षमा का मिलन हुआ.... मानो वैराग्य और भक्ति का मिलन हुआ.... मानो आनन्द और शान्ति का मिलन हुआ।

उस १९८९ की साल से आज तक दोनों बहिनें साथ-साथ ही रहती हैं। मानों दो शरीर के बीच एक ही आत्मा हो - ऐसी आप दोनों के हृदय की एकता है।

पूज्य गुरुदेव को इन दोनों बहिनों के प्रति पुत्रीवत् अपार वात्सल्य है और इन दोनों बहिनों के रोम-रोम में पूज्य गुरुदेव के प्रति अपार उपकार की भक्ति भरी हुई है। पूज्य गुरुदेव के आत्मस्पर्शी अध्यात्मोपदेश को अपनी आत्मा में यथार्थ रूप से झेल करके पवित्र ज्ञान और वैराग्य से, भक्ति और प्रभावना से सभी तरह आपने पूज्य गुरुदेव व जिनशासन की शोभा बढ़ाई है। इस काल में ऐसी बहिनों का होना यह महिला-मण्डल का महाभाग्य है। आप दोनों बहिनों का धर्म से रंगा हुआ सहज जीवन तो प्रत्यक्ष देखने से ही मालूम हो सकता है इन दोनों बहिनों की पवित्रता, अनुभव, गहरा-संस्कार, वैराग्य, देव-गुरु-धर्म के प्रति अर्पणता, वात्सल्य आदि का विस्तृत वर्णन यहाँ नहीं हो सकता। सोनगढ़ में 'श्री गोगीदेवी दिगम्बर जैन श्राविका ब्रह्मचर्याश्रम' चलता है, जिसकी आप ही अध्यक्षा हैं और आपकी शीतलछाया में अनेक बाल-ब्रह्मचारिणी बहिनें रहती हैं। बहिनों के जीवन में अपार वात्सल्यपूर्वक आप ज्ञान वैराग्य का सिंचन करती हैं। और देव-गुरु-धर्म की भक्ति के बारे में तो वर्तमान युग में आपकी अतृतीयता है।

ऐसी पवित्र युगल धर्ममाता पूज्य बेनश्री बेनजी भी संघ के साथ तीर्थयात्रा को पधारी थीं। सम्मेदशिखरजी तीर्थधाम की आपने अब तक तीन यात्रायें की हैं। हजारों भक्त बालक आपको धर्ममाता समझकर के आपकी आज्ञा शिरोधार्य करते हैं और उनके ऊपर आपका बहुत उपकार है। आपने शासन का प्रभाव बहुत बढ़ाया है। ●

मेरी श्रद्धा

(श्री सेठ जे० लालचन्द जैन, इन्दौर)

आत्मार्थी सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी वर्षों से श्री आचार्य कुन्दकुन्द आदि के समयसार आदि आध्यात्मिक ग्रन्थों का प्रवचन कर अध्यात्म की पवित्र गंगा बहा रहे हैं। उसमें अवगाहन कर अगणित भव्य प्राणियों ने अपना मानव जीवन सफल बनाया है। मुझे भी स्वामीजी के प्रत्यक्ष दर्शन और उनके प्रवचनों के सुनने और स्वाध्याय करने का अवसर मिला है। मैं अपना जीवन धन्य मानता हूँ। आज सर्वत्र आध्यात्मिक रुचि के प्रसार का प्रमुख श्रेय श्री स्वामीजी को है।

स्वामीजी का निश्चयव्यवहार आदि का समन्वयात्मक विवेचन और प्रमुख भाई बहनों के ज्ञान, श्रद्धा और भक्ति आदि से मैं बड़ा प्रभावित हूँ।

श्री पूज्य स्वामीजी की ७३वीं वर्षगाँठ पर मैं चिरायु की कामना करता हुआ आपके प्रति हार्दिक श्रद्धा प्रकट करता हूँ। ●

चिरजीवी जयवंत हों

श्री पण्डित शान्तिलाल शास्त्री, सनावद

दर्शन ज्ञान चारित्रमय, आत्मशक्ति पहिचान,
शक्ति प्रगट कर आत्मा, बन जाता भगवान।

ध्यान ध्येय ध्याता सभी, निज आतम के रूप,
तीनों होते एक जब, पाते मोक्ष स्वरूप।।

अपना कर्ता भोक्ता, परद्रव्यों से भिन्न,
पर कर्ता और भोक्ता, बनकर होते खिन्न।

धर्मतत्व को समझ कर, दर्शाया सद्ज्ञान,
चिरजीवी जयवंत हों, 'सद्गुरु श्री कहान'।।

अभियान

(श्री युगल, एम.ए., कोटा)

लो रोको तूफान चला रे।
पाखंडों के महल ढहाता, लो रोको तूफान चला रे।

●

सह न सका जो मिथ्यामत की सीमा के जीवन में बन्धन,
रह न सका अवरुद्ध वहाँ जो बढ़ने लगा हृदय स्पन्दन।
एक दिवस अन्तर-रुचि जागा, पुण्य जागरण बेला आई,
जिसकी ज्ञान चेतना ने रे! चिर निद्रा से ही अंगड़ाई।
जिसकी करवट से संशय का चिर-सिंहासन डोल चला रे,
पाखंडों के महल ढहाता, लो रोको तूफान चला रे।।

●

'निखिल-विश्व पथ पाये' हिय में करुणा का संसार समेटे,
अपनी एक श्वास में रे जो संशय तम का मरण लपेटे।
जिसकी प्रज्ञा के प्रताप से कर्त्तृवाद को थी हैरानी,
अरे मृतक को मिली चेतना सुन जिसकी कल्याणी वाणी।
रे! अणु अणु की आजादी का शंखनाद वह फूंक चला रे,
पाखंडों के महल ढहाता, लो रोको तूफान चला रे।।

●

बोली दुनिया अरे! अरे!! रे!!! मात पिता का धर्म न छोड़ो,
जिसमें तुमने जन्म लिया है उस पथ से अब मुँह मत मोड़ो।
हरी-भरी सी कीर्त्ति लता है दिग्दिगंत में व्याप्त तुम्हारी,
यह लो यह लो, सिंहासन लो लेकिन रक्खो लाज हमारी।
अरे तुम्हारे इस निश्चय से भूतल पर भूचाल मचा रे,
पाखंडों के महल ढहाता, लो रोको तूफान चला रे।।

●

उत्तर मिला 'धर्म शिशु जननी के अंचल में नहीं पलता है,
और पिता की परंपरा से बंधकर धर्म नहीं चलता है।
अरे लोक की सीमाओं को छोड़ धर्म का स्यंदन चलता,
ज्ञान चेतना के अंचल में प्यारा धर्म निरन्तर पलता।

सिंहासन क्या, धर्म देह की समता तक तो छोड़ चला रे',
पाखंडों के महल ढहाता, लो रोको तूफान चला रे।।

●

प्राणों का भीषण संकट भी उसका पथ नहीं मोड़ सका रे।
कोटि कोटि आंसू का वर्षण उसका व्रत नहीं तोड़ सका रे।
रे! उत्तुंग हिमाचल-सा बेरोक बढ़ा वह अपने पथ पर,
जिसने उसके पथ को रोका, झुका उसी का मस्तक भूपर।
पर्वत ने भी उसे राह दी, खण्ड खण्ड हो वज्र गिरा रे,
पाखंडों के महल ढहाता, लो रोको तूफान चला रे।।

●

जिसको राह मिली, उसको अब चाह रही क्या शेष बताओ,
जिसको थाह मिली, उसको पर्वाह रही क्या शेष बताओ?
उसने युग की धारा पलटी, वह अध्यात्म क्रान्ति का सृष्टा,
एक दिव्य संदेश 'विश्व का चेतन केवल ज्ञाता दृष्टा।'
अरे! मुक्ति के सुंदर पथ का करता वह जय घोष चला रे,
पाखंडों के महल ढहाता, लो रोको तूफान चला रे।।

●

अरे वीर के जन्म दिवस पर भूतल का अभिशाप मिट गया,
अरे वीर के जन्म दिवस से एक नया इतिहास जुड़ गया।
अंधकार में युग सोता था, घुटती थीं जीवन की श्वासें,
पानी में भी पड़े हुए थे, अरे मीन युग युग के प्यासे।
तेरा पावन पुनर्जन्म यह वसुधा का वरदान बना रे,
पाखंडों के महल ढहाता, लो रोको तूफान चला रे।।

●

उद्‌गार

श्री मानमल योगेन्द्रकुमार खाव्या, इंदौर

गुरुदेव के चरण कमल में, अपना शीश नवाते हैं।
भक्तिभाव से प्रेरित हो, श्रद्धा के सुमन चढ़ाते हैं।
सद् गुरुदेव कानजी स्वामी, रहें चिरायु कोटि वर्ष,
उनका धर्म प्रचार देखकर होवे नित जनजन-को को हर्ष।।

श्री पूज्य कानजीस्वामी की प्रभावना के फलस्वरूप –

नवनिर्मित प्रमुख दिगम्बर जैन मन्दिर और संस्थाएँ

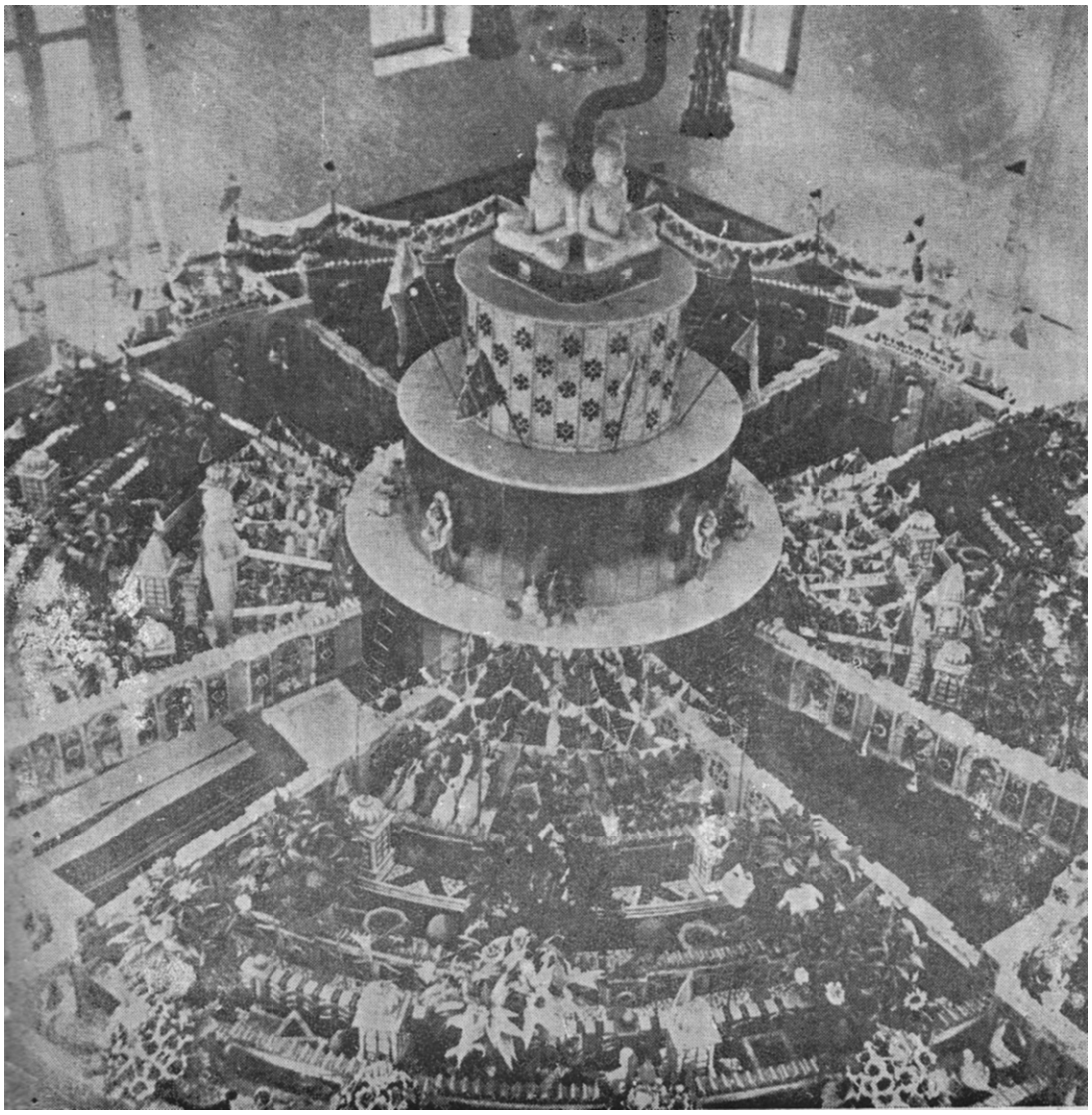

समोसरण मन्दिर (धर्मसभा) सोनगढ़ का भीतरी दृश्य

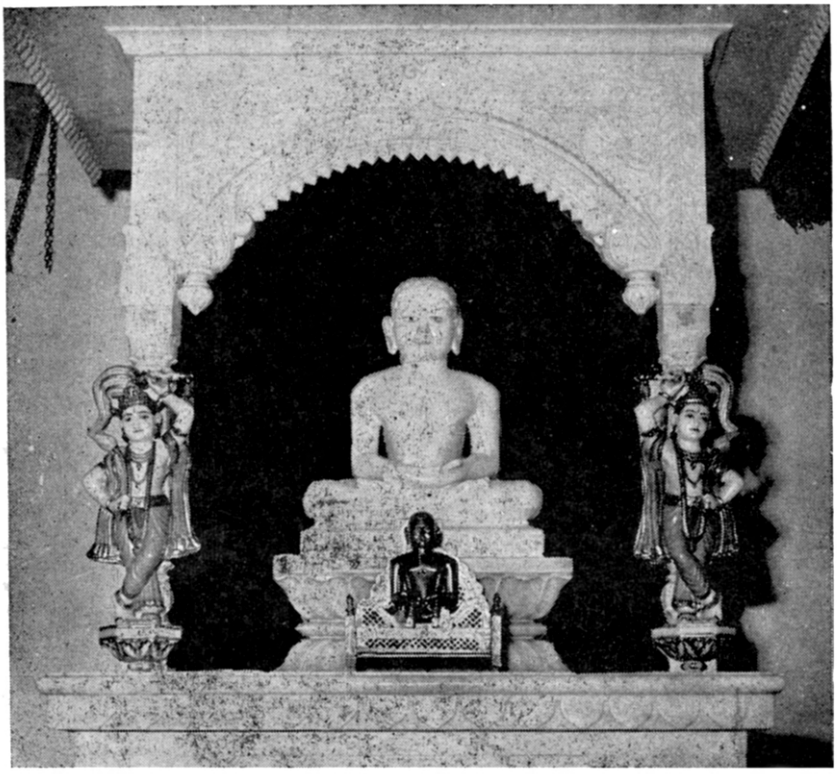

गुरुदेव के जन्मस्थान 'उमराला' के मन्दिर में भगवान सीमन्धरस्वामी

श्री दि० जैन स्वाध्यायमन्दिर
बढवाण

एलोरा की जैन गुफा में ससंघ गुरुदेव की वंदना

दिगम्बर जैन समाज की प्रगति में नया मोड़

श्री पण्डित जगन्मोहनलाल शास्त्री, कटनी

जबसे सौराष्ट्र प्रान्त में भू.पू. श्वेताम्बर जैन मुनि श्री कानजीस्वामी ने भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के समयसार आदि अध्यात्म ग्रन्थों का परिशीलन कर जैनधर्म का यथार्थ मर्म समझा और अपने अनुयायी हजारों भाई-बहिनों को समझाया, तब से दिगम्बर जैन समाज की प्रगति में एक नया मोड़ आया है।

स्वर्गीय गुरुवर्य पण्डित गोपालदासजी बरैया के सत्प्रयत्न से दिगम्बर जैन समाज में धर्म और न्याय के पठन-पाठन का प्रसार हुआ। श्री १०८ मुनि गणेश कीर्ति महाराज के प्रयत्न से संस्कृत व्याकरण दर्शन साहित्य के पठन-पाठन की रुचि जागी। इसी प्रकार इस युग में श्री कानजीस्वामी के निमित्त से दिगम्बर जैन समाज के अध्यात्मशास्त्रों के पठन पाठन की ओर रुचि हो रही है।

वर्तमान काल में धर्म की बात उस धर्म के अनुयायियों के गले उतारना भी कठिनतर कार्य है फिर अपनी पुरानी मान्यताओं को छोड़कर पक्षपात रहित हो सत्य को स्वीकार करने की बात तो अत्यन्त कठिन है। श्री कानजीस्वामी ने इस दिशा में जो प्रयत्न किया है, उसका बहुत बड़ा मूल्य है।

हमारा, आज से १४-१५ वर्ष पूर्व जब विद्वत्परिषद का अधिवेशन सोनगढ़ हुआ था, सर्वप्रथम स्वामीजी से साक्षात्कार हुआ था। उस समय उनकी चर्चायें कुछ अजनबी सी लगती थीं, हमारी समाज के अनेक भाईयों को आज भी लगती हैं। कुछ बातें लोगों को आगम के प्रतिकूल भी लगती हैं। और इसी से उनका कुछ सज्जनों द्वारा विरोध भी होता है। इसके साथ ही कुछ सज्जनों को उनका यह प्रभावना कार्य तथा नवीन शैली से यह आध्यात्मिक प्रवचन श्रेष्ठतम मालूम होता है। उन्हें उनके प्रवचन में कोई आगमविरुद्धता प्रतीत नहीं होती। समाज के इन दोनों बुद्धिजीवी वर्ग में इस विषय पर काफी मतभेद है। तथापि स्थानाभाव से इस लेख में हम उन मतभेदों के तथ्यातथ्य का निर्णय नहीं करेंगे। हमने स्वामीजी को नजदीक से देखा है, परखा है और उनके अनुभवों तथा प्रवचनों को सुना है। हमें ऐसा विश्वास है कि वे दिगम्बर जैनागम के कट्टर श्रद्धानी हैं। उन्हें अपनी मान्यता में यदि आगम विरुद्धता प्रतीत हो तो वे उसे बिना हिचकिचाहट के संशोधन कर लेंगे। इस बात का प्रयत्न भी किया गया पर दोनों ओर पारस्परिक अविश्वास की शंका ने अब तक वह प्रसंग उपस्थित नहीं होने दिया।

मैं प्रथम बार जब सोनगढ़ गया, तब वहाँ मन्दिरजी में श्री जिनबिम्ब के दर्शन किये। प्रतिमाजी

के ओंठ लाल थे। नेत्र में काला व सफेद भाग था। मुझे देखते ही ऐसा लगा कि यह एक नया पंथ खड़ा हो रहा है। मैंने साहस कर एक दिन एकान्त में स्वामीजी से प्रश्न किया कि स्वामीजी सर्व मिथ्यात्व को छोड़कर थोड़ा-सा शेष क्यों रहने दिया, वे मेरी बात नहीं समझ पाये, मैंने खुलासा किया कि दिगम्बर जैनामृमत में नेत्र का बनाना, होठ रंगना आदि विधान नहीं है। स्वामीजी ने जयसेन प्रतिष्ठा पाठ का एक श्लोक मेरे सामने रखा और बताया कि इसमें ऐसा विधान है। मैंने देखकर निवेदन किया कि इस श्लोक का ऐसा अर्थ नहीं है। यह श्लोक प्रतिमा निर्माण का माप बतानेवाला है, इसमें यह बताया है कि प्रतिमा यदि हस्त प्रमाण ऊँची बनाना हो तो हाथ कितने लम्बे बनाना, पैर कितने, मस्तक कितना, मस्तक में नेत्र कितने अंश और नेत्र में कालेवाला हिस्सा कितने अंश, सफेदवाला हिस्सा कितने अंश बनाना चाहिए। इसी प्रकार ओष्ठ में जो लाल भाग होता है, वह कितने भाग बनाना चाहिए। यह अर्थ नहीं है कि नेत्र काले सफेद और होंठ लाल बनाना चाहिए।

पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि स्वामीजी ने मेरी बात को ध्यान से सुना और यह वादा किया कि यदि आपका अर्थ सही होगा तो प्रतिमाओं में आगमानुकूल सुधार अवश्य किया जायेगा। कालान्तर में श्लोक का अर्थ उन्होंने विद्वानों से विवेचन कराया तथा मेरे द्वारा बताया हुआ अर्थ उन्हें सत्य प्रतीत होने पर समस्त प्रतिमाओं में सुधार कराया। आज एक भी प्रतिमा ऐसी नहीं है, जिसके होंठ रंगे हों या नेत्र सफेद काले बनाए गए हों।

उक्त घटना इस बात का प्रबल प्रमाण है कि स्वामीजी सरल परिणामी हैं, उन्हें वचन पक्ष, या अभिमान नहीं है बल्कि आगमानुकूल बात को वे तत्काल स्वीकार कर लेते हैं। निश्चय और व्यवहार, उपादान और निमित्त आदि विषयों पर वर्तमान में विवाद चल रहे हैं और उन पर निश्चय या उपादान का एकान्तवादी होने का आरोप किया है, जबकि मेरा ऐसा अपना ख्याल है कि आरोपकर्ता सज्जन भी व्यवहार या निमित्त की एकान्त खींच करते हैं। अनेकान्तवाद में दोनों की उपयोगिता अपने स्थान पर है। अत: विद्वानों को अनेकान्तवाद की छाया में ही उक्त विषयों पर चर्चा करना आवश्यक है। तब ही वे अपनी बात स्वामीजी को समझा सकेंगे।

स्वामीजी व्यवहार चारित्र के लोपक हैं, स्वयं चारित्र पालन नहीं करते, इसी से चारित्र का उपदेश न करके मात्र सम्यक्त्व की महिमा गाते हैं, मुनियों पर श्रद्धा नहीं रखते, ये भी उन पर आरोप हैं।

मैंने उनसे प्रार्थना कर उन विषयों पर भी चर्चाएँ की हैं, भाषण कराए हैं। जिनके सम्बन्ध में उक्त आरोप है, मेरी धारणा है कि न वे चारित्र के लोपक हैं और न मुनियों पर अश्रद्धा रखनेवाले हैं।

भगवान कुन्दकुन्द को वे अपना आराध्य मानते हैं, तब चारित्र के विरोधी कैसे हो सकते हैं। मन्दिर बनवाते, प्रतिष्ठा कराते हैं, तीर्थवन्दना को जाते हैं, तब व्यवहार धर्म के लोपक कैसे?

हाँ, बाह्यचारित्र क्रियाकांड जो भावशून्य हो, उसका विरोध अवश्य करते हैं। वर्तमान काल में अनेक मुनिराजों में जो शिथिलाचार पाया जाता है, वह वे स्वीकार नहीं कर सकते। हमारी समाज उस शिथिलाचार को सहन कर रही है। चूँकि हमारा एक दिगम्बर सम्प्रदाय है, अत: सम्प्रदाय का पक्ष भी हमें मजबूर करता है कि यदि थोड़ी त्रुटि भी हो तो 'हमसे तो अच्छे हैं' यह तर्क हमें शिथिलाचारी होने पर भी उनको मान्य करने को बाध्य करता है। पर कानजीस्वामी दिगम्बर सम्प्रदाय के पोषण को नहीं आये, वे दिगम्बर जैनधर्म को अंगीकार करने आये हैं। अत: जैसे आपने पूर्व सम्प्रदाय की शिथिलताओं के विरुद्ध उनमें कट्टरता है, वैसे ही दिगम्बर जैन सम्प्रदाय की शिथिलता को भी वे स्वीकार नहीं कर सकते।

कुछ मुनिराजों को छोड़कर वर्तमान में कुछ मुनिराज अब रुपया रखते हैं, चंदा करते हैं, श्रावकों का वेतन देकर साथ चौका लगाने को मजबूर करते हैं। ये पद्धति मुनिराजों की शास्त्रों में नहीं है। तिल, तृण मात्र परिग्रह को भी परिग्रह कहा है, फिर लंगोटी न लगाकर नग्न रहकर भी यदि रुपया पैसा इकट्ठा कर उसका अपने या अपने परिवार के लिए उपयोग करता है तो यह मार्ग विरुद्ध कार्य है। भला ऐसी बात को दिगम्बर सम्प्रदाय के व्यक्ति भी यदि विवेकी हैं तो सहन नहीं कर सकते, फिर जो व्यक्ति अपने शिथिलाचार को तिलांजलि देकर आया है, वह दूसरे के शिथिलाचार को कैसे सहन कर सकता है?

जो सच्चे देव-शास्त्र-गुरु को मानता है, वह मिथ्याधर्मी नहीं हो सकता, फिर भी हमारे सम्प्रदाय के कुछ बन्धु उन्हें मिथ्याधर्मी कहने से नहीं चूकते।

विवादस्थ बातों को छोड़कर हमें यह प्रसन्नता है कि स्वामीजी ने दिगम्बर जैनधर्म और दिगम्बर जैन वाणी का काफी प्रचार किया है। 'उनके प्रवचनों को एक बार सुन लेनेवाला उनका हो जाता है।' ऐसा उनके सम्बन्ध में कहा जाता है।

हम यह भी मानते हैं कि उनका आध्यात्मिक उपदेश जहाँ अजैनों को धर्म के मार्ग में लगाता है, वहाँ अनेक पुजारी उसकी आड़ में शिथिलाचारी भी हो गए हैं। पर इससे मार्ग बन्द नहीं किया

जा सकता। भगवान के उपदेश होने पर भी ३६३ कुवादी चारों तरफ फिरते थे, पर उससे सद्धर्म का उपदेश उन्होंने बन्द नहीं किया। इसी प्रकार कुछ प्रमादी उस उपदेश का दुरुपयोग करें तो इससे धर्मोपदेश के मार्ग को बन्द कर देने की सम्मति देना गलत है, भयंकर भूल है। स्वामीजी प्रतिज्ञारूप प्रतिमा आदि नहीं पालते, न उनके अनुयायी पालते तथापि उनके आचरण खान-पान आदि किसी प्रतिमाधारी से कम नहीं हैं। उत्तम आचरण मर्यादित खान-पान आजीवन ब्रह्मचर्य-मन्द कषाय आदि अनेक गुण उनमें और उनके अनेक शिष्यों में पाए जाते हैं, उससे उक्त सभी आरोप मिथ्या सिद्ध हो जाते हैं।

समाज के विवेकशील वर्ग से हमारा निवेदन है कि आगम के प्रकाश में उनके प्रवचनों को देखें। मिथ्या, बुरी धारणा बनाकर न चलें और न अन्ध-श्रद्धा के रूप से उनकी बातों को स्वीकार करें। वे एक महापुरुष हैं, अपना सर्वस्व पूर्वरूप त्यागकर धर्मरत्न की खोज में चले हैं। उनके साथ धर्म-वत्सलता का बर्ताव करना आवश्यक है। तभी दिगम्बर जैनधर्म की प्रभावना होगी। ●●

卐

जब मुझे सही दिशा मिली

श्री पूज्य क्षुल्लक चिदानन्दजी महाराज

जब मैं लगभग ८-९ वर्ष पूर्व पैदल यात्रा द्वारा देहली से जैनबद्री मूलबद्री आदि दक्षिण की यात्रा को गया था, तब गिरनारजी की यात्रा करने के पश्चात् चिर अभिलषित अभिलाषा को पूर्ण करने के लिये सोनगढ़ गया और ठीक चातुर्मास के समय पहुँचा व १४ माह वहाँ रहा।

इस पैदल यात्रा में मुझे यह अनुभव तो पहले ही हो चुका था कि जो सोनगढ़ के सन्त के सम्पर्क में रह चुके थे, वह कितने विनयी सात्विक और अटल श्रद्धावाले होते हैं। जब वहाँ मैंने स्वामीजी की धर्मदेशना श्रवण की और वहाँ का अपूर्व शान्त वातावरण देखा तो जो आनन्द आया, उसको मैं प्रकट करने में असमर्थ हूँ। और यही कारण है कि वहाँ की प्राकृतिक छटा को तो एक दफे अवलोकन कर लेता है, वह दूसरे वक्त जाये बिना नहीं रह सकता।

मैंने इसके पूर्व अपने जीवन के क्षण जिनवाणी के रहस्य को समझे बिना बिताये, धर्म क्या वस्तु है? इसका कोई पता नहीं था और जो ऊपरी बातों की मान्यता थी, उसी में सन्तुष्ट रहता था।

जब स्वामीजी से निश्चय व्यवहार, निमित्त उपादान, कर्ताकर्म, निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध के विषय में सुना व १४ माह की अवधि में जो अनुभव किया तो उक्त विषयों की गलत धारणा निकल गई और जीवन की दिशा बदल गई, तब वास्तविकता की ओर उत्सुकता होने लगी।

वहाँ रहनेवाले मुमुक्षुजन निश्चयात्मक धर्म पर तो अटूट श्रद्धा रखते ही हैं, क्योंकि वास्तव में धर्म तो वही है परन्तु साथ ही मन्दकषाय, धर्मोपदेश सुनने की संलग्नता, जिनेन्द्र पूजन भक्ति के विषय में बहुमान्यता, उपकारी के प्रति विनय आदि भी वहाँ के रहनेवालों में देखी जाती है और यह सब स्वामीजी के निश्चय व्यवहार की संधि पूर्वक उपदेश करने की शैली का प्रतीक है क्योंकि निश्चय के साथ जो व्यवहार होता है, उसका निषेध कैसे हो सकता है?

सोनगढ़ में सतत बहनेवाली आध्यात्मिक सरिता में गोते लगाने से आमूलचूल परिवर्तन हुए बिना नहीं रह सकता और यही कारण है कि सोनगढ़ के शान्तवातावरण के अनुभव के बाद ही मैं यथार्थता की ओर जा सका और मेरी जीवन की दिशा बदली। ●

उच्च कोटि के साधक

श्री मिश्रीलाल गंगवाल, वित्तमंत्री,
म०प्र० सरकार, भोपाल

यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता है कि आप परम श्रद्धेय सन्त कानजीस्वामी की ७३वीं जन्मग्रन्थी के उपलक्ष्य में सन्मतिसन्देश का श्री कानजीस्वामी जयन्ती विशेषांक प्रकाशित कर रहे हैं। परम श्रद्धेय सन्त कानजीस्वामी भारत के इने गिने सन्तों में से हैं, जिनको एक बार उनके दर्शन का सौभाग्य मिला अथवा उनके प्रवचनों को श्रवण करने का शुभ-अवसर मिला वह उनका हो गया। उनकी कृतियों में जीवन दर्शन का पूर्ण समावेश है। उनकी रचनाएँ और कृतियाँ केवल जैन समुदाय की धरोहर नहीं वरन् वे सभी साधकों और विचारकों के लिय एक विशिष्ट सन्देश देती हैं। वे उच्च कोटि के साधक ही नहीं, वरन् एक महान सन्त भी हैं; जिनके सान्निध्य में बैठकर सबको तत्त्वचिन्तन और ज्ञान उपार्जन करना है। वे दीर्घायु होकर मानव समाज का मार्ग-दर्शन करते रहें, यही प्रभु से प्रार्थना है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि सन्मति सन्देश का यह विशेषांक सबका मार्ग प्रशस्त कर ज्ञानवर्धन करेगा। ●

शाश्वत्सुख के पथ प्रदर्शक

श्रीमंत सेठ रा.ब. राजकुमारसिंह,
एम.ए., एल.एल.बी. इन्दौर

मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता है कि 'सन्मति सन्देश' देहली, श्री कानजीस्वामी की ७३वीं वर्षगांठ पर श्रद्धांजलिरूप में अपना विशेषांक प्रकाशित कर रहा है।

श्री कानजीस्वामी भारत के महान आध्यात्मिक सन्त हैं। आपने अपने विशाल अध्ययन, मनन और प्रभावक प्रवचनों द्वारा श्री आचार्य कुन्दकुन्दस्वामी के समयसार आदि आध्यात्मिक ग्रन्थों का रहस्य जनता के समक्ष रखकर अपूर्व क्रान्ति उत्पन्न कर दी है।

वर्तमान विलासिता पूर्ण भौतिक वातावरण में, जहाँ विज्ञान अपनी चरम सीमा में पहुँचकर विश्व में भय और आतंक उत्पन्न कर रहा है, स्वामीजी आत्मा की अनन्त शक्ति और शुद्ध चैतन्यस्वभाव का प्रतिपादन कर संसार दु:ख से संतप्त प्राणियों को शाश्वत सुख और आत्मिक शान्ति का मार्ग बतला रहे हैं।

स्वामीजी के असाधारण व्यक्तित्व और जैन शासन की महान प्रभावना आदि का मेरे पूज्य पिताजी, मेरे परिवार और मुझ पर बड़ा प्रभाव पड़ा है।

स्वामीजी चिरायु हों और चिरकाल तक मुमुक्षु जनों को अध्यात्म रस का पान कराते हुए जिन शासन का उद्योत करते रहें, यही मेरी हार्दिक भावना है। ●

अभिनन्दन से अधिक आवश्यक पद–वन्दन

श्री इन्दौरीलाल बड़जात्या, एडवोकेट, इन्दौर

श्री इन्दौर मुमुक्षु मण्डल के कुछ स्नेही मित्रों ने विशेषकर मण्डल के मन्त्री श्री प्रकाशचन्दजी ने मुझसे आग्रह किया कि पूज्य श्री कानजीस्वामी की आगामी वर्ष ग्रन्थी के अवसर पर उनके अभिनन्दनार्थ कुछ पंक्तियाँ लिखूं। अवसर जितना गौरवप्रद लगा उतना ही अन्त:परीक्षक भी।

दृढ़ विश्वासों पर, युगों से हम अपने जीवन को आधारित कर यह समझे हुए थे कि हमें सच्चे धर्म की खरी समझ हाथ लग चुकी है और हमारी मान्यता रही कि यथाशक्ति हम मुक्ति–पंथ के राही हैं। परन्तु जिसको पूज्य कानजीस्वामी से यथार्थ सम्पर्क, चाहे फिर वह अप्रत्यक्ष ही क्यों न हो, साधने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वह यह अनुभव किये बिना नहीं रह सकता कि वह अब तक

कितना भटका हुआ था–भूला हुआ था। और, ज्यों ज्यों वह सम्पर्क अधिकाधिक सामीप्य ग्रहण करता है त्यों त्यों उसे अपने दीर्घकालीन भ्रम–पूर्ण अन्ध–विश्वासों की गहराई का अनुभव होने लगता है। उसे आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता कि कैसे वह और पूर्वगामी पीढ़ियाँ ऐसी तात्विक भूलों से अपने को न बचा सके! उन्हें पहिचान भी न सके!!

जिसको धर्म समझे हुए थे और जिसका पालन कर मोक्ष के नजदीक होने का गर्व किया करते थे, उसको श्री कानजीस्वामी ने आँखों में सुरमा डाल कर दिखाया तो वह सब संसार का ही कारण लगा। सच्चे धर्म की समझ और अनुभूति से अपने को कोसों दूर, बीहड़ में भटकते हुए ही पाया।

सम्यग्दर्शन का स्वरूप, आत्मस्वरूप के निर्णय एवं स्वसन्मुखता के अपूर्व पुरुषार्थ के लिये अरिहन्त–श्रद्धा क्यों, कैसे और कितनी आवश्यक है, निश्चय और व्यवहार, उपादान और निमित्त, धर्म की क्रिया, विकार की क्रिया तथा जड़ की क्रिया का निरूपण एवं पारस्परिक सम्बन्ध आदि आदि गूढ़ और गहन विषयों की खरी समझ को ऐसी सरलता, विशदता तथा मार्मिकता के साथ पूज्य कानजीस्वामी वर्णन करते हैं कि मस्तिष्क और हृदय, दोनों ही, बरबस उनके चरणों में भक्ति पूर्वक झुक जाते हैं।

श्री पूज्य कानजीस्वामी का माहात्म्य इससे नहीं कि उन्होंने कोई नया धर्म अथवा नवीन मार्ग हमें दिया हो। उनकी महत्ता तो इस बात से है कि वे सही मार्ग से भटके और बीहड़ में फँसे हुए पथिकों को स्वयं मशाल जलाकर, अन्धकार में प्रकाश फैलाकर, सही मार्ग का दिग्दर्शन कराते हैं और उसके अनुसरण का आग्रह करते हैं।

एक जलता हुआ दीपक ही अन्य करोड़ों दीपकों को जला सकता है। श्री पूज्य कानजीस्वामी हम में, एक ऐसे ही जलते हुए दीपक हैं।

ऐसे महान चिन्तक–आराधक एवं सन्त पुरुष की वर्षग्रन्थी जितनी मनाई जाय, थोड़ी ही होंगी। मुझे विश्वास है कि युग–युगान्तर में आनेवाली आभारी पीढ़ियाँ ऐसी जयन्तियाँ मनाती ही रहेंगे।

मेरे जैसे शुद्ध व्यक्ति का हृदय तो ऐसे पुनीत अवसर पर श्री पूज्य कानजीस्वामी के अभिनन्दन से अधिक उनके पद–वन्दन में अपने आपको धन्य मानता है।

हम सबके लिये श्री पूज्य कानजीस्वामी जुग–जुग जियें, यही हमारी भावना। ●

सोनगढ़ के सन्त

श्री विमलचन्द जैन, B.Sc. Engg. (अ०व०) राँची

श्रीमद् की वीतरागता का माप तो उनके सामने जाने पर ही किया जा सकता है। आपके चेहरे पर सदैव एक आध्यात्मिक मंजुल मुस्कान रहती है, एक आध्यात्मिक खुशी रहती है, जो आपकी अन्तरलीन वीतरागता की अभिव्यक्ति का वास्तविक दिग्दर्शन कराती है। आध्यात्मिक मंजुल मुस्कान का बहुत बड़ा कारण है, वह है सम्यग्ज्ञान की प्राप्तिरूपी सन्तोष। वास्तव में सच्चा सुख भी यही है। सम्यग्दृष्टि को ही सम्यग्ज्ञान की प्राप्तिरूप चित्तप्रकाशमयी अन्तर सन्तोष परिणती उत्पन्न होती है। इस प्रकार की अन्तर्मुखी चित्तप्रकाशमय सुख परिणति का श्रीमद् में होना अवश्यंभावी ही है।

इस भारत तल की रमणीय भूमि में अतीतकाल में बड़े-बड़े तीर्थंकरादि महापुरुषों ने अवतार लिया है। भारत का एक स्वर्णकाल था, जबकि छटवें-सातवें गुणस्थान की भूमिका में परम पुनीत अक्षय सुशाश्वत आत्मानन्द की शोभा पर लोटपेट करनेवाले महान अतिशयकारी प्रशान्त मूर्ति विज्ञानघन भावलिंगी सन्तों का एक स्थान से दूसरे स्थान पर बहुतायत से विचरण होता था, जबकि वीतराग सर्वज्ञ तीर्थंकरदेवों के मुख कमल से खिरनेवाली दिव्यध्वनि आत्मार्थीजनों के कल्याणार्थ विस्तरित होती थी, जबकि भावलिंगी सन्तों की शान्तदशा को पहिचानकर अपनी परम पुनीत अपूर्व ज्ञायकभावमयी शान्तदशा का आस्वादन करनेवाले सम्यग्दृष्टि जन यत्र तत्र सर्वत्र पाये जाते थे। उसी भारत तल पर इस दु:खम पंचम काल में आज से लगभग २००० वर्ष पूर्व एक महान आध्यात्मिक प्रशम मूर्ति सन्त अवतीर्ण हुए थे, जिन्होंने मुझ पामर पर अनन्तों उपकार किए हैं। वे हैं, प्रात: स्मरण करनेयोग्य, श्रद्धेय भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव जिन्होंने भव्यजीवों के कल्याणार्थ वस्तुस्वरूप के प्रतिपादनार्थ अध्यात्मरस से लबालब भरी हुई अनुपम रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। जिन्होंने निज वैभव से निजरस से परिपूर्ण, विज्ञानघन चैतन्य चमत्कारमयी शुद्ध अन्त:तत्त्वस्वरूप स्वयं कारणपरमात्मारूप भगवान् आत्मा का वास्तविक स्वरूप दर्शाया है। नमस्कार करता हूँ मैं उन भगवान श्री कुन्दकुन्द को अपने हृदय से..., जिनकी अमर कृतियों के द्वारा मुझे वस्तुस्वरूप को सम्यक्रूप में समझने में सहायता मिली है। अगर ऐसे सन्त आज होते तो मैं यहाँ से चलकर उन्हें हजारों बार साष्टांग नमस्कार करता...। इस महान विभूति के ठीक १००० वर्ष बाद प्रशममूर्ति भगवान श्री अमृतचन्द्राचार्य का शुभागमन हुआ। आपके द्वारा लिखी हुई

टीकाएँ मुमुक्षुओं के हृदयों में चैतन्य चमत्कार निष्पन्न कर देती हैं। आपने भगवान् श्री कुन्दकुन्दाचार्य का सूक्ष्म अन्तरलीन अभिप्राय ज्यों का त्यों दर्शाया है। मानों कलिकाल सर्वज्ञ कुन्दकुन्द के हृदयकमल में मकरन्द की भाँति स्थित थे। जैसे सूत्रकार थे, वैसे ही उनके टीकाकार थे। इसके ठीक एक हजार वर्ष बाद उसी भारत तल पर एक ऐसे महानतम आत्माभिमुख सन्त ने अवतार लिया है, जिन्होंने कुन्दकुन्दकालीन अध्यात्मरूपी जलधारा को भव्यजनों के मनरूपी खेतों में बहाया है एवं आज भी बहा रहे हैं। जो आज भी मोक्षमार्ग में अठखेलियाँ कर रहे हैं। वे हैं सोनगढ़ के सन्त 'श्रीमद् कानजीस्वामी' जिस प्रकार भावलिंगी सन्त कुन्दकुन्द, वीरसेनादि आचार्यों ने वीतरागी सर्वज्ञों के वियोग को अखरने नहीं दिया है, ठीक उसी प्रकार से श्रीमद् कानजीस्वामी ने अपने परम अमृतमयी अध्यात्म प्रवचनों से कुन्दकुन्दादि आचार्यों के वियोग के दु:ख को उपशमन किया है। आप एक महान युगप्रवर्तक आध्यात्मिक सन्त हैं, जिन्होंने बच्चे से बूढ़े तक जन जन के हृदयों में आध्यात्मिक क्रान्ति की है। आप आज दिगम्बर जैनधर्म के मूलतत्त्वों को उसी प्रकार से सम्यक् रूप में प्ररूपण कर रहे हैं जैसे कि वे देवाधिदेव तीन लोक के नाथ वीतरागी सर्वज्ञ परमात्मा के ज्ञान में झलक रहे हैं। आज आपके कारण से मुझ जैसे मन्द बुद्धि पुरुष के हृदय में भी विज्ञान तरंगें जागृत हो उठी हैं। मैं कहाँ तक कहूँ, मेरे शब्द आपकी प्रशंसा करने में अत्यन्त असमर्थ हूँ। मेरा तो पक्का से पक्का विश्वास है कि पूज्य श्री कानजीस्वामी एक अखण्ड सम्यक्दृष्टि पुरुष हैं। मेरी जीवन की दिशा में सोनगढ़ के साहित्य को पढ़कर एक ऐसा अपूर्व परिवर्तन आया है जो मुझ में अनादि भूतकाल में कभी आया ही नहीं था। उनके प्रवचनों से मैंने एक ऐसी विज्ञानघन वस्तु के बारे में सुना है जो कि मैं स्वयं ही हूँ। जिसको मैंने पहले कभी सुना ही नहीं था, न अनुभव ही किया था एवं न परिचय भी प्राप्त किया था। इस समय मुझे भगवान श्री कुन्दकुन्द विरचित एक गाथा याद आती है –

है सबश्रुत परिचीत अनुभुत भोग बन्धन की कथा।
पर से जुदा एकत्व की उपलब्धि केवल सुलभता।।

इस भगवान–आत्मा ने अनादि काल से काम, भोग एवं बन्ध की कथा ही सुनी है, अनुभव की है एवं उसका परिचय किया है लेकिन पर से जुदी अर्थात् परद्रव्यों व उनके भावों एवं स्वकृत विभाव भावों से अत्यन्त अलग परमपारिणामिक ज्ञायक भावमयी आत्मस्वरूप के बारे में न सुना है, न परिचय किया है एवं न अनुभव ही किया है।

अहो! मैं नमस्कार करता हूँ श्रीमद् कानजीस्वामी की शान्त दशा को। अध्यात्मकवि कुल कमल दिवाकर श्री बनारसीदासजी के शब्दों को एक बार फिर से दोहराता हूँ।

भेदविज्ञान जग्यो जिनके घट,
शीतल चित्त भए जिमि चन्दन।
केलि करे शिवमारग में जग–
माहिं, जिनेश्वर के लघुनन्दन।
सत्य स्वरूप सदा जिनके,
प्रगट्यो अवदात मिथ्यातनिकंदन।
शान्त दशा तिनकी पहिचानि,
करै करजोरि बनारसी बन्दन।

जब यह भगवान आत्मा प्रज्ञा छैनी को ज्ञानस्वभाव एवं राग–द्वेषादि विभाव भावों की सूक्ष्म अन्त:सन्धि में सावधानी पूर्वक डालता है, तब उसे भेदविज्ञान की प्राप्ति होती है एवं उसे आत्मदर्शन ज्ञानमयी शान्तदशा का अनुभव होता है, तब उसे इस प्रकार की महिमा का विकल्प उठता है कि अहो! मैं उनकी शान्तदशा को नमस्कार करता हूँ।

श्रीमद् एक आत्मानुभवी मेधावी जन हैं। आपने अपने रत्नत्रय के तेज से जिनशासन की ऐसी प्रभावना की है जो कि भूतकालीन १००० वर्षों में भी नहीं हुई है। जैसे प्रकाश के सद्भाव में अन्य पदार्थ स्वयं प्रकाशित हो उठते हैं, ठीक उसी प्रकार से अपने अन्तरंग में ज्ञायकभावमयी रत्नत्रय की प्रदीप्ति फैलाने से ही सकल जिनशासन का प्रकाश करना है। आज इस दु:षम पंचमकालीन भारत भू पर श्रीमद् भी ऐसी ही जगतप्रकाशी प्रभावना कर रहे हैं। विज्ञानरस के पिपासुजनों की प्यास को ज्ञानरूपी अमृत वर्षा से सहज ही बुझा रहे हैं, धन्य है ऐसे महन्त पुरुषों को, एवं धन्य है, उनकी ज्ञायकभावमयी दशा को।

समयसार, नियमसार, प्रवचनसार एवं पंचास्तिकाय आदि ग्रन्थों पर अनेक सरस व सुहावने परम आध्यात्मिक प्रवचन हुए हैं। श्रीमद् की प्रवचन शैली बड़ी सरल एवं सुन्दर है। श्रीमद् जब बोलते हैं, तब वे आत्मानन्द में झूमना शुरु कर देते हैं, जो कि श्रोताजनों के लिए अत्यन्त ही प्रियकर है। मुझे भी चार दिन तक आपके विज्ञानरस से भरे हुए अमृतमयी प्रवचनों को सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वे सोनगढ़ के चार दिन मेरे लिए सबसे अधिक सुखकर व्यतीत हुए थे। मानों मैं मोक्षपुरी की सैर करने गया हूँ। आपके प्रवचनों से लाभ उठाकर मन्दतम बुद्धि के पुरुष भी आध्यात्मिक गूढ़ रहस्यों को समझने के योग्य हो गये हैं एवं वृद्धिंगत रूप से होते जा रहे हैं। वास्तव

में सच पूछा जाये तो आज श्रीमद् ने भूले-भटके संसारीजनों को वस्तु का सम्यक् स्वरूप दर्शाया है। मुझे अच्छी तरह से याद है, जब श्रीमद् आत्मानन्द में झूमते हुए प्रवचन करते थे, तब मुझे उनके कर्णप्रिय तलस्पर्शी शब्द अत्यन्त ही रुचिकर प्रतीत होते थे। बात यह है जैसा भीतरी अनुभव होता है, वैसे ही शब्द भी मुख से निकलते हैं। जब यह भगवान आत्मा अपने परम पारिणामिक निश्चल ज्ञायकभावमयी शान्त रस का निरन्तर अनुभव करता है, तब मुख कमल से ध्वनि भी अनुभवमयी खिलती है, इस प्रकार सहज निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है। ठीक यही हालत आज श्रीमद् में मौजूद है।

अगर मुझे कोई पूछे कि वर्तमान में उत्कृष्ट श्रुतज्ञानी कौन है तो मैं तो सीधा उत्तर यही दूँगा कि श्रीमद् उत्कृष्ट श्रुतज्ञानी हैं। श्रीमद् में भगवान श्री कुन्दकुन्दादि आचार्यों के प्रति कितनी महान् एवं आश्चर्यकारी अलौकिक श्रद्धा है, इसका माप तो वास्तव में सम्यग्दृष्टिजन ही कर सकता है। क्योंकि ज्ञानी की क्रिया को ज्ञानी ही जानता है, अज्ञानी नहीं। कारण स्पष्ट है जो स्वयं को नहीं जानता, वह पर को क्या जानेगा? सम्यग्दृष्टि का माप करने के लिए पहले स्वयं को सम्यग्दृष्टि बनाना पड़ेगा। जब लोग प्राय: यह मुझसे प्रश्न पूछा करते हैं कि आपके कानजीस्वामी के विषय में क्या विचार हैं, तब मैं उनको तड़ाक से उत्तर दे दिया करता हूँ कि मैं श्रीमद् कानजीस्वामी को एक अखण्ड सम्यग्दृष्टि पुरुष मानता हूँ। भले ही मेरी यह बात कई एक पुरुषों को बुरी लगे। लेकिन वस्तुस्थिति को न नहीं किया जा सकता। जो है सो कहना ही पड़ता है, एवं कहना ही चाहिए।

श्रीमद् ने सिंहवृत्ति से डंके की चोट, वस्तु का निरूपण किया।

अज्ञानीजनों के द्वारा घोर विरोध किए जाने पर श्रीमद् मोक्षमार्ग में कमर कस के डटे रहे। बात ठीक भी है सम्यग्दृष्टि को तीन लोक की आपदाएँ एकत्रित होकर भी सम्यग्दृष्टि पन से डिगा नहीं सकती हैं एवं सम्यग्दृष्टि पुरुष ही अखण्ड सिंह वृत्ति से काम कर सकते हैं। श्रीमद् की यह एक मौलिक विशेषता है।

मैं, श्रीमद् की जितनी प्रशंसा करूा, उतनी थोड़ी ही है। लेकिन मुझे सबसे बड़ा खेद तो यह है कि मैं श्रीमद् की जयंती के सुअवसर पर उनके प्रवचनों का लाभ नहीं ले सकता। कारण यह है कि ये बी.एम.सी. इंजीनियरिंग फाइनल की परीक्षाएं भी इसी मौके पर आन पड़ी हैं। खैर होनेवाली पर्याय को रोका नहीं जा सकता। होता वही है जो सर्वज्ञ देव के ज्ञान में झलकता है। वस्तु स्वभाव भी ऐसा ही है कि प्रत्येक पर्याय अपने स्वव्यतिरेक व्यक्ति के काल में ही प्रकट होती है, अन्य कालों में नहीं। ●

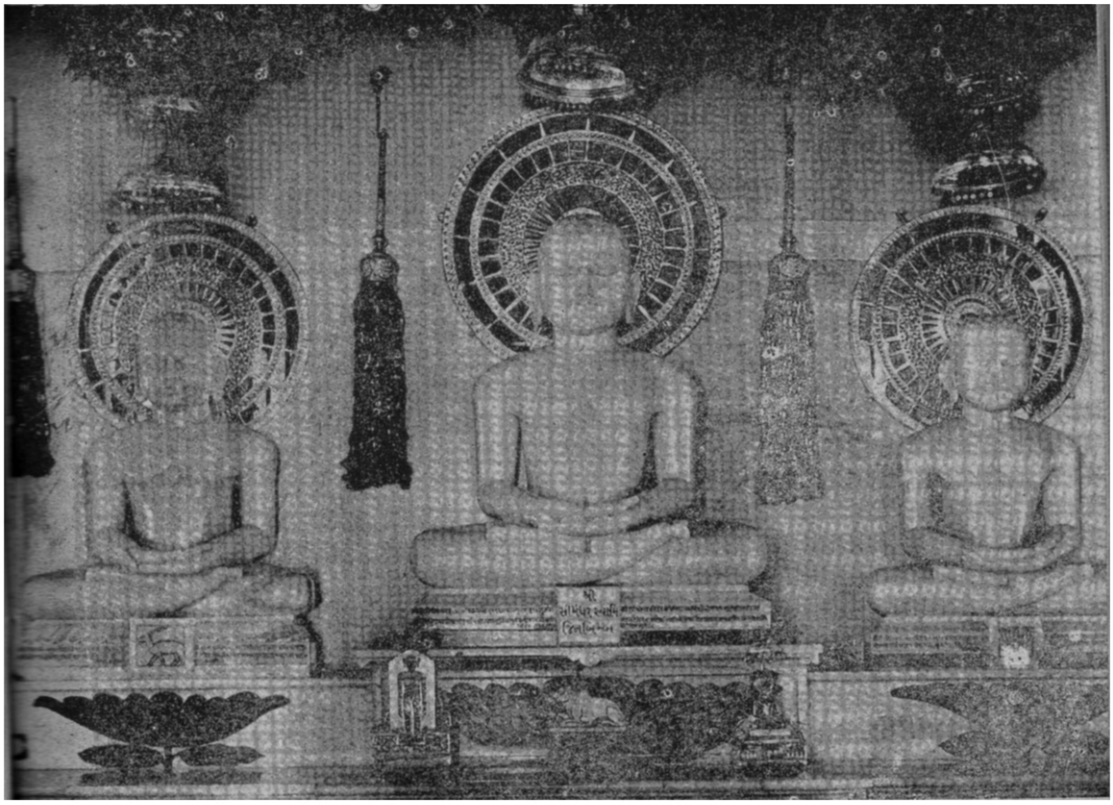

श्री दि० जैन मन्दिर सोनगढ़ की मनोज्ञ प्रतिमाएँ
भगवान शान्तिनाथ, भगवान सीमंधरस्वामी, और पद्मप्रभु भगवान

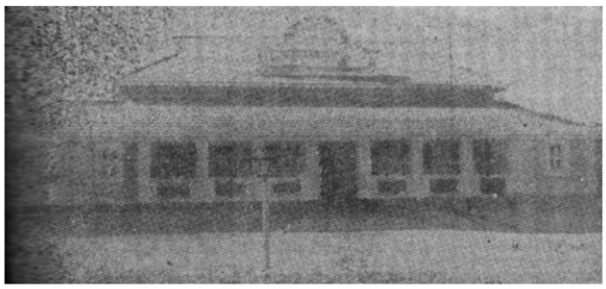

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर, सोनगढ़

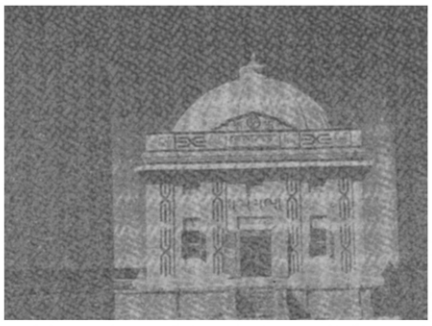

भगवान सीमन्धरस्वामी का समवसरण मन्दिर

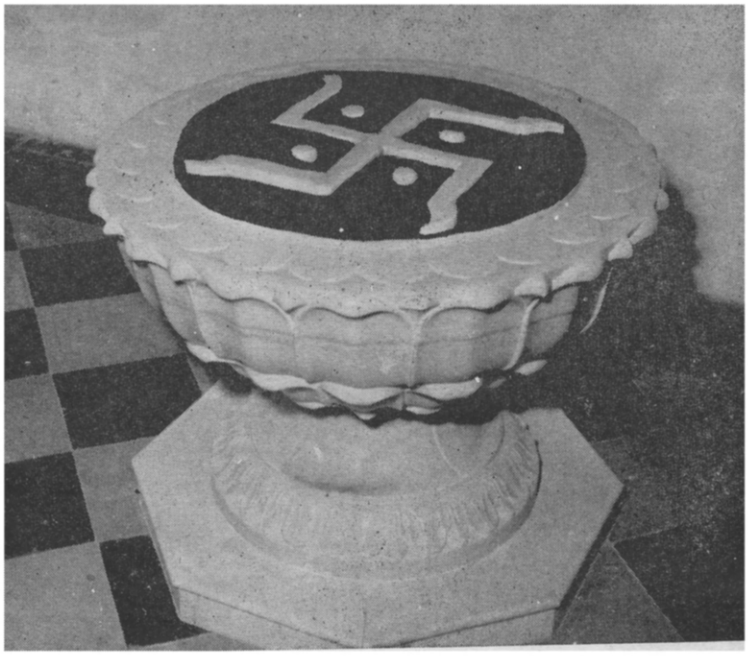

उमराला में जहाँ पर श्री कानजीस्वामी का जन्म हुआ था, उस स्थान पर स्वस्तिक स्थापित किया गया

ऐलोरा की गुफा में दि० जैन प्रतिमाएँ

श्री दि० जैन मन्दिर, बढ़वाण शहर

सत्य दर्शन के उपदेष्टा

संवत् २०१३ में श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा से लौटते हुए पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी संघसहित भारत की राजधानी दिल्ली में पधारे थे, उस समय भारतीय कांग्रेस प्रमुख श्री ढेबरभाई राजधानी की नाना प्रवृत्तियों में व्यस्त होते हुए भी प्राय: प्रतिदिन पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों का लाभ लेते थे। दिनांक ६-४-१९५७ के दिन उन्होंने एक स्वागत भाषण दिया था, उसी का मुख्य सार यहाँ दिया जा रहा है।

भारत की इस राजधानी में आप सबकी और मेरी ओर से मैं महाराजश्री का सन्मान करने के लिए खड़ा हुआ हूँ।

पूज्यश्री के प्रमुख शिष्य श्री रामजीभाई कुछ नरम तबियत होने के कारण इस समय यहाँ नहीं आ सके हैं। वे मेरे एक बुलन्द साथी हैं; मैं जब से सौराष्ट्र में गया तब से। करीब तीस साल से रामजीभाई को मैं अपना बड़ा भाई समझता हूँ। हालांकि उनका मार्ग अलग रहा, फिर भी हमारे दोनों के बीच में प्रेम आदर की कमी नहीं हुई। उनके हृदय में महाराजश्री के लिए जो प्रेम व आदर है, उतना ही मेरे हृदय में है। आप सबकी तरह, महाराजश्री के परिवार का मैं भी एक अंगभूत हूँ। महाराजश्री के अन्य शिष्य (नानालालभाई वगैरह) हैं, वे भी मेरे बड़े भाई हैं।

महाराजश्री की दुनिया एक अलग दुनिया है और महाराजश्री मेरे साथियों को एक के बाद एक अलग दुनिया में ले जा रहे हैं। हमारा कार्य क्षेत्र भिन्न-भिन्न होते हुए भी हमारे बीच कोई अन्तरभेद नहीं है।

महाराजश्री के जीवन के बारे में आप लोगों ने बहुत सुना होगा। उनके बारे में मैं इतना ही कहूँगा कि – उनका जीवन एक सत्यदृष्टा का जीवन है और वे निर्भीक हैं। जिस चीज१ में उनका विश्वास है, उसको वे निडरता से कह रहे हैं। अगर गुरु में ऐसी निर्भीकता न हो तो वह शिष्यों को बीच में ही रुला दे–निर्भीकता के बिना सत्यमार्ग पर कैसे ले जा सकते हैं?

महाराजश्री का चरित्र सत्य का भान करनेवाला है, वे अपना जो सन्देश सुना रहे हैं, वह एक अनुभव सन्देश है और उनकी बात तर्क शुद्ध है। उनके उपकार का बदला हम कैसे देवें? उनके लिए तो एक ही बदला है कि – हम कोशिश करें उनके मार्ग पर चलने की! कोरी तारीफ से उन्हें सन्तोष नहीं होगा, परन्तु वे अपने को जो सन्देश दे रहे हैं, उसे समझने से उन्हें सन्तोष होगा। इसलिए प्रवचन में आप बारंबार कहते हैं कि 'समझे!' 'समझ में आता है?' जिस प्रकार गुरु, प्रेम से शिष्य को पढ़ाते हुए कहता है कि – बेटा! समझा?? समझा??? वैसे ही आप भी प्रवचन में बारबार श्रोताजनों से पूछते हैं कि – 'समझ में आ रहा है न!'

महाराजश्री जो तत्त्व समझा रहे हैं, वह भारतवर्ष की मूल चीज है और आज भारतवर्ष की इस चीज की सारे विश्व को जरूरत है। बड़े–बड़े लोगों का हृदय सेवाभाव से भरा हुआ है, उसमें महाराजश्री का सन्देश ऐसा नहीं कि तुम सेवक मिट जाओ, लेकिन महाराजश्री यह कहते हैं कि – तुम समझो कि – दुनिया का शत्रु अणुबम नहीं है, उसको उत्पन्न करनेवाला व्यक्ति भी नहीं परन्तु जो राग–द्वेष की भावना युक्त है, वही दुनिया का शत्रु है। राग–द्वेष की प्रबल भावना ने ही ऐसे हथियारों की उत्पत्ति की है। इसलिए हथियार शत्रु नहीं किन्तु राग–द्वेष ही शत्रु है। जिस विकारात्मक भूमि के ऊपर हम एक दूसरे को शत्रु समझ रहे हैं, उसका नाश कैसे हो, यह महाराजश्री बतला रहे हैं।

अपना भारतवर्ष अध्यात्म प्रधान है। महाराजश्री का संदेश भारतवर्ष की सभ्यता और संस्कृति की नींव–जड़ है। अगर भारतवर्ष को सारे विश्व में दैदीप्यमान बनना है तो इसी नींव (पाया) के ऊपरी ही बन सकता है। अपनी इस नींव के द्वारा आज भारतवर्ष दुनिया को ऊँचा उठाने का प्रयत्न कर सकता है। 'पंचशील' के द्वारा भारत आज निर्बैर बुद्धि का फैलाव करना चाहता है; महाराजश्री कहते हैं कि – राग–द्वेष ही बैर बुद्धि का मूल है। निर्बैर बुद्धि कैसे हो? यह आप समझाते हैं, महाराजश्री की नकारात्मक भूमिका नहीं है, लेकिन अनुभवात्मक भूमिका के ऊपर आप मार्ग दिखला रहे हैं।

मुझे २० साल से महाराजश्री के सन्देश सुनने का सौभाग्य मिला है। मेरे साथीगण उनका

सन्देश निरन्तर सुन रहे हैं और रात-दिन उनकी यह भावना रही कि मुझे भी महाराजश्री की ओर खींचा जाये।

महाराज अपने सन्देश से एक सत्यदर्शन समझाने की कोशिश कर रहे हैं। महाराजश्री अपनी शिष्य मण्डली के साथ यात्रा के लिए निकले और यहाँ की जनता को भी उनका सन्देश सुनने का लाभ मिला। इस नगरी में आप सबकी ओर से महाराजश्री का सम्मान करता हूँ। सत्य का सन्देश सुनाकर वे हमको जागृत कर रहे हैं और हम महाराजश्री को विश्राम देते हैं कि - हम भी इसके लिए कोशिश करेंगे।

अन्त में एक बार फिर मैं सबकी ओर से और अपनी ओर से महाराजश्री का स्वागत करता हूँ।●

श्रद्धांजलि

श्री हीराचन्द बोहरा, बी.ए., एल.एल.बी., कलकत्ता

भारत के विशिष्ट आध्यात्मिक सन्त श्री आत्मार्थी कानजीस्वामी की ७३वीं जन्म जयन्ती के शुभ प्रसंग पर मैं उनके निरोगतापूर्वक दीर्घायु होने की श्री जिनेन्द्र भगवान से प्रार्थना करता हुआ, यही भावना करता है कि शीघ्र ही वह शुभ घड़ी प्राप्त हो, जबकि समाज, अध्यात्मरस से रंजित इस महान आत्मा को समस्त बाह्य अभ्यन्तर परिग्रह से रहित वीतरागी निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनिराज के रूप में देख कर रत्नत्रय की साक्षात् प्रतिमूर्ति के पुनीत चरणों की रज से अपने आपको पवित्र कर सके तथा अनादिनिधन पवित्र णमोकार मन्त्र के अन्तिम चरण 'णमो लोए सव्वसाहूणं' में उन्हें समाविष्ट पाकर प्रतिदिन उनके स्मरण तथा आराधन द्वारा आत्मकल्याण की प्रेरणा प्राप्त कर सकें।

श्री गुरु की सेवा का प्रसाद

गुणों में महान ऐसे श्रीगुरु के चरणकमल की सेवा के प्रसाद से निर्मल चित्तवाले पुरुष अपने अन्तर में चैतन्य परमतत्त्व का अनुभव करते हैं। देखो! यह गुरु और उनकी सेवा का प्रसाद! गुरु गुणों में महान होते हैं, इसलिए सम्यग्दर्शन ज्ञानादि गुणों से जो महान हैं, ऐसे गुरु, शिष्य से कहते हैं कि - 'शरीर में रहते हुए भी जो शरीर से भिन्न है, ऐसे अपने परम चैतन्यतत्त्व का अन्तर में अवलोकन कर! शरीर में स्थित होने पर भी चैतन्य का अनुभव होता है।' गुरु के ऐसे वचन सुनकर निर्मल चित्तवाला शिष्य अन्तर में तद्रूप परिणमित हो जाता है... गुणों में महान् गुरु जैसा कहते हैं, तद्नुसार शिष्य परिणमित हो जाता है, यही गुरु के चरणों की परम सेवा है... और ऐसी सेवा के प्रसाद से वह शिष्य अन्तर में अपने आत्मा का अनुभव करता है।

अध्यात्म प्रेम

श्री ब्र० जिनेन्द्र, पानीपत

कौन कर सकता है वर्णन उस परम 'ज्ञ' तत्त्व की महिमा का, जिसके श्रवणमात्र से हृदय का भार हलका हो जाता है, जिसके मनन से संचेतनाओं में जागृति आ जाती है, जिसके निधिध्यासन से भव-भव की अभिलाषायें शान्त हो जाती हैं, व्यग्रतायें विराम पाती हैं, और जीवन का अन्धकारमय चंचल रूप ज्ञानानन्दस्वरूप परम प्रकाश में खोकर अद्वैतता धारण करता है, जिसकी श्रद्धामात्र से भव की शंका समाप्त हो जाती है और लौकिक आकांक्षायें परमानन्द की छटा से ढंककर विलीन हो जाती है; जिसमें रमणता करने से बुद्धि व अहंकार तत्त्व खण्ड-खण्ड होकर अव्यक्त में जा मिलते हैं, और परम पुरुष उसी निधिध्यासित 'ज्ञ' तत्त्व में विलुप्त होकर सदा के लिये मुक्त हो जाता है।

शब्द के अगोचर, बुद्धि के अगोचर, अनुमान के अगोचर, इन्द्रिय प्रत्यक्ष के अगोचर और इस समस्त बाह्य नामरूप कर्मों के अगोचर यह परम तत्त्व एक है, व्यापक है, अखण्ड है, नित्य है, तथा मात्र ज्ञान प्रकाश व आनन्दस्वरूप है। वह भावात्मक है, द्रव्य गुण कर्म या पर्याय आदि की भेदाभेदात्मक कल्पनाओं से परे वह किसी अद्वैत लोक में वास करता है, जहाँ उसे न बन्धत्व स्पर्श करता है और न मुक्तत्व, जहाँ उसे न पाप स्पर्श करता है और न पुण्य जहाँ वह लोक की तथा आगम की समस्त विडम्बनाओं से अस्पृष्ट त्रिकाल शुद्ध ही रहता है। अन्य सर्व से विविक्त वह तत्त्व ही न्याय वैशेषिकों की भाषा में संसारी जीवात्मा का समवायी कारण है, सांख्य की भाषा में त्रिगुणातीत 'पुरुष' तत्त्व है, और जैन परिभाषा में पंचम पारिणामिकभावस्वरूप कारणपरमात्मा या कारणसमयसार है, जो त्रिकाल अपने अन्तर तेज के साथ धधकता रहता है, तथा अन्तर आनन्द के साथ सन्नाता रहता है।

अत्यन्त परोक्ष उस तत्त्व का परिचय पाने के लिये जिनवाणी की शरण अथवा ज्ञानीजनों की संगति ही मात्र निमित्त कारण है। अत्यन्त दुर्लभ उस सार की प्राप्ति में निमित्तरूप से सहायक होनेवाले, उस ज्ञानी पुरुष के प्रति क्यों स्वाभाविक बहुमान स्वत: उत्पन्न न हो जायेगा। भले ही वह ज्ञानी पुरुष विशेष साक्षात् वीतरागी भगवान अर्हंत हो या वीतराग दिगम्बर गुरु हों, या कोई श्रावक हो अथवा गृहस्थ हो; तत्त्व की प्राप्ति में निमित्तपने की अपेक्षा सब समान है। यद्यपि वैराग्य व चारित्र की भूमिकाओं की अपेक्षा उनमें आकाश पाताल का अंतर है, और इसलिए अक्षर शून्य

भी दिगम्बर साधु गुरु है, परन्तु शिक्षा दान की अपेक्षा किसी भी भूमिका में स्थित व्यक्तिविशेष को गुरुपने का निर्देश किया जाने का व्यवहार है।

हमारे इस विशेषांक के मूल नायक, काठियावाड़ देशस्थ सोनगढ़ ग्राम के सुप्रसिद्ध अध्यात्मयोगी श्री कानजीस्वामी भी उन्हीं में से एक हैं। अध्यात्म जगत के वासी उनके उस महान् उपकार को कदापि भुला नहीं सकते, जो कि उन्होंने अपनी अद्वितीय प्रतिभा द्वारा, भौतिक युग की अन्धकारमय जगतीपर, विलुप्त प्राय: हो जानेवाली अध्यात्मधारा को पुन: नवजीवन प्रदान किया है। यह अध्यात्म धारा अनादि काल से तीर्थंकरों के द्वारा प्रवाहित की जाती रही है और अन्य ज्ञानी पुरुषों द्वारा प्रेरित की जाती रही है। इस प्रकार उसका अक्षुण्ण प्रवाह इस पृथ्वी मण्डल पर बराबर बना हुआ है। उनमें से एक के प्रति एक की याद ही वास्तव में सर्व के प्रति की याद है।

प्रत्येक पदार्थ की भाँति जीव पदार्थ के भी दो प्रमुख अंग हैं – एक उसका अन्तरंग अंग और दूसरा उसका बाह्य अंग। अन्तरंग अंग उपयोगात्मक है और बहिरंग अंग योगात्मक। उपयोग का सम्बन्ध विचारणाओं व अनुभव से है तथा योग का सम्बन्ध मन–वचन–काय की बाह्य प्रवृत्तियों से। उपयोगात्मक अंग का नाम अध्यात्म है, और बाह्य प्रवृत्ति का नाम चारित्र है। मुमुक्षु को इन दोनों अंगों का ज्ञान होना आवश्यक है। बद्ध जीव के ये दोनों ही अंग विकृत हैं। मोक्षमार्ग का रहस्य इन दोनों अंगों की शुद्धि में निहित है। दर्शन इन दोनों ही अंगों की शुद्धि में निहित है। जैनदर्शन इन दोनों ही अंगों का प्ररूपण करता है। अध्यात्म पद्धति का नाम निश्चय है और बाह्य प्रवृत्ति की प्ररूपणावाली पद्धति का नाम व्यवहार है।

यही कारण है कि अध्यात्म केवल उपयोगात्मक विशुद्धि पर जोर देता है, जबकि चरणानुयोग केवल प्रवृत्तियों की संशुद्धि पर जोर देता है। अध्यात्म पद्धति में प्रवृत्तियाँ अत्यन्त गौण हैं और चरणानुयोग में उपयोग अत्यन्त गौण है। पर इसका यह अर्थ नहीं कि दोनों ही परस्पर निरपेक्ष कोई स्वतन्त्र प्ररूपणायें हों। उपयोग को योग का और योग को उपयोग का अनुसरण करना ही चाहिए, तभी परमार्थ कल्याण सम्भव है। केवल अध्यात्म चर्चा से कोई लाभ नहीं और इसी प्रकार केवल व्रतादिक की योगात्मक प्रवृत्तियों से भी कोई लाभ नहीं। जीवन संशोधन में दोनों ही अंगों का बराबर स्थान है।

इन दोनों अंगों में से श्री कानजीस्वामी को केवल अध्यात्म का प्ररूपण करना ही अधिक रुचता है, जबकि दिगम्बर समाज के अन्य कुछ विद्वानों व त्यागीगण को केवल प्रवृत्तियों अर्थात् व्रतादि का प्ररूपण करना ही अधिक रुचता है। परन्तु पाठकों या श्रोताओं को स्वयं इतना विवेक

होना चाहिए कि श्री कानजीस्वामी यद्यपि प्रवृत्ति वाले बाह्य अंग का प्ररूपण अपने प्रवचनों में इतने जोर से नहीं करते, जितने जोर से कि किया जाना चाहिए, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उनके अभिप्राय में इसका कोई स्थान ही न हो। इसी प्रकार अन्य विद्वान यद्यपि अध्यात्म का प्ररूपण अपने प्रवचनों में उतनी जोर से नहीं करते, जितनी जोर से कि किया जाना चाहिए, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उनके अभिप्राय में इसका कोई स्थान ही न हो। यह ठीक है कि श्रद्धा, ज्ञान व चारित्र तीनों में ही केवल एक अध्यात्म ही उपादेय है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि चर्या रूप प्रवृत्ति में सर्वथा त्याज्य हैं। उपादेय समझना और बात है, और उपादेयरूप हो जाना और बात है। उपादेय समझने में देर नहीं लगती, पर तन्मय होने में बहुत समय लगता है, जिसके अन्तर्गत उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त अनेकों चारित्रात्मक श्रेणियों में से गुजरना आवश्यक है। उन श्रेणियों में भी निचली श्रेणियों में प्रवृत्तिवाला ही अंग प्रमुख है और ऊपर वाली श्रेणियों में उपयोगवाला अंग ही प्रमुख है। समझने की प्रमुखता और तन्मय होने के लिये की गई साधना की प्रमुखता में आकाश पाताल का अन्तर है। उपरोक्त अन्तर साधना की अपेक्षा ही समझना, श्रद्धा या लक्ष्य की अपेक्षा नहीं।

जिनशासन के इन दोनों अंगों को यथायोग्यरूप में दृष्टि में रखते हुए, परस्पर में एक-दूसरे के साथ विरोध करना योग्य नहीं। स्याद्वाद की व्यापकता में विरोध या पक्षपात को अवकाश नहीं। जिनशासन का अक्षुण्ण प्रवाह पृथ्वी पर बना रहे, इसके लिये आवश्यक है कि दोनों ही पक्ष परस्पर का वैमनस्य छोड़कर सहिष्णु बनें और समन्वय दृष्टि से एक-दूसरे के पक्ष का सम्मान करना सीखें, क्योंकि वे पक्ष उनके घर के या व्यक्तिगत नहीं हैं, जिनवाणी के सत्ताभूत अंग हैं। दिगम्बर समाज में दो सम्प्रदायों की उत्पत्ति का जो भय आज हो रहा है, उसे दूर करने का एकमात्र यही उपाय है। विद्वज्जनों को चाहिए कि परस्पर के विरोध से उत्पन्न हुई इस गहरी खाई को स्वामीजी के जीवनकाल में ही भरकर, स्याद्वाद के उदार आदर्श का परिचय दें। स्याद्वाद या अध्यात्म की महिमा विरोध में नहीं प्रेम में है। ●

वर्तमान युग के अनुपम उदार चैतन्यरत्न जौहरी

श्री पण्डित रतनलाल शास्त्री, इन्द्रभवन, इन्दौर

चैतन्यरत्न जौहरीश्री की महिमा तो जो सच्चिदानन्दघन के अनुभव से सहजानन्द पीयूष का पान कर चुका है, वही जान सकता है। कहने में तो वह भी असमर्थ है तो इस अबोध निज शुद्धात्मानुभूति से रहित मुमुक्षु बालक से कैसे लिपिबद्ध हो सकेगी? परन्तु पूज्य जौहरीश्रीजी के मुखारविन्द से प्रसारित सत्पथप्रदर्शक-आत्मशुद्धि की हेतुभूत कर्ण को अतिप्रिय लगनेवाली पवित्र वाणी के श्रवण से जो वचनातीत आनन्द हुआ (उल्लास उमड़ा) जिस आनन्द के लिये इस जिज्ञासु का अन्तरंग सदैव ही लालायित रहता है, उसी प्रमोद तरंग के कारण ही आत्मज्ञानियों अनुभवियों के करनेयोग्य कर्तव्य में इस अल्पा मुमुक्षु की लेखनी हस्तक्षेप करने में अग्रसर हो रही है।

विज्ञान के इस युग में पारखीश्री ने (जौहरीश्री ने) जो चमत्कार दिखाया है, वह महान् से महान् है क्योंकि वह चमत्कार किसी भौतिकपदार्थ का नहीं, किन्तु आत्मानुभूति का है। स्वात्मानुभूति के उस पवित्र आदर्श से प्रेरित होकर शत या सहस्र नहीं किन्तु कोटि-कोटि आत्माएँ पूज्यश्री से प्रकाश और सम्यक्पथ-प्रदर्शन प्राप्त कर अपना जीवन धन्य मान रही हैं। सभी प्रकार के अज्ञान और मिथ्यात्व के विरुद्ध पूज्यश्री ने अपने जीवन के प्रारम्भ से ही अभियान किया है। पूज्यश्री प्राणीमात्र को सहज स्वाभाविक ज्ञान-दर्शन से चमत्कृत और सदाचार व सुख सम्पन्न देखना चाहते हैं तथा प्रयत्न करते हैं - यह आपश्री की लोकोपकारिणी अनुपमवृत्ति का ही स्वाभाविक परिणाम है।

मंगलमय तीर्थंकर - गणधर और निर्ग्रन्थ महर्षियों की वाणी का आजीवन रसपान करते कराते हुए पारखीश्री ने भौतिक पदार्थों की मोह-ममता से अपने आपको सदैव दूर कर रखा है और आत्मस्वरूप में सहायक भव्योपकारी रचनात्मक कार्यों में ही अपने समय का सदुपयोग किया है। जिसके फलस्वरूप पूज्यश्री के तत्वावधान में तीन लाख से ऊपर पुस्तकों का सुन्दर, स्वच्छ शुद्ध प्रकाशन, दस से भी ऊपर परमावश्यक स्थानों पर पंच कल्याणक प्रतिष्ठायें सम्यक्विधि से सुसम्पन्न हो चुकीं। बीस से भी ऊपर नवीन जिनमन्दिरों का निर्माण हुआ व हो रहा है। हजारों नवीन बन्धुओं को समीचीन (दिगम्बर) धर्म में दीक्षित किया है। सहस्रों नर-नारीयों ने आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत की आत्महितार्थ प्रतिज्ञा ली है। प्रशंसा या निन्दा से सदैव ऊपर रहकर आप श्री आत्मधर्म के प्रसार में ही अग्रसर रहते हैं। पूज्य श्री की छत्रछाया के आश्रय से ही सहस्रों भव्यात्माओं की परम तीर्थधामों की यात्राओं का होना, अलौकिक 'सुवर्णपुरी तीर्थधाम' का

निर्माण होना, उपर्युक्त आशातीत रचनाओं की ओर दृष्टिपात होते ही पूज्यश्री के पुनीत चरणकमलों में, मेरा मैं (स्वयं का) मस्तक स्वभावत: नम्रीभूत हो जाता है।

जौहरीश्री के मुखकमल से प्रसारित सुगन्धित समीर में निम्नांकित गुण विशिष्टरूप से पाये जाते हैं।

(१) निमित्ताधीन दृष्टिविष को सम्यक् प्रकार निवारण करना।

(२) पुण्यरूप कागज नौका से भवसागर तरने की भ्रान्ति का दूर होना।

(३) व्यवहारशक्ति सूक्ष्मरोग का भी पृथक होना।

(४) सम्यग्दर्शन अपूर्व रत्न की प्राप्ति का सरल उपाय प्रसारित होना।

(५) वस्तुस्वभाव की स्वतन्त्रता का घोषित होना।

(६) निमित्त-उपादान, निश्चय-व्यवहार-धर्म व पुण्य का आधार आदि-आदि अनेकानेक गुप्तरहस्यों का उद्घाटन होना।

(७) सर्वश्रेष्ठ गुण अनुभवजनित यह है कि भव्यात्माओं के अन्तरंग का झुकाव आत्महितार्थ, सम्यग्दर्शन प्राप्त्यर्थ, वस्तुस्वरूप निर्णय के लिये शीघ्र ही अग्रसर हो जाता है।

अस्तु - वस्तुस्वरूप के सम्यक्ज्ञाता, अन्तरंग चैतन्य रत्नों के पारखी, निजशुद्धात्म भवन के उद्घाटनकर्ता, (फिरंगीशासन कर्म-शाासन को हटाने में वस्तुस्वतन्त्र पक्षक के सच्चे सेनानी या सत्याग्राही) परमार्थ पंथ पर आरूढ़ अनेकानेक उपसर्ग-विजयी पूज्य जौहरीश्री के द्वारा युगयुगान्तर तक शान्तिपथ का प्रसार अधिकाधिकरूप से होता रहे, यही शुभेच्छा अहर्निश रहा करती है। ●

अपूर्व उल्लास

सीमन्धर भगवान के समवसरण में कुन्दकुन्दाचार्य चारों समय दिव्यध्वनि सुनते किन्तु समवसरण में रत्नों की चमक के आगे दिन-रात का कोई भेद ही मालूम नहीं पड़ता। अतएव साक्षात् भगवान के दर्शन का अपूर्व उल्लास और दिन-रात के अभेद के कारण ७ दिन तक अनशन ही करते रहे। भोजन का ध्यान ही नहीं रहा।

एकमात्र सत्पथ प्रदर्शक – पूज्य कानजीस्वामी

श्री पण्डित गेंदालाल शास्त्री, बूँदी (राजस्थान)

यों तो इस विश्व में वस्तु का वास्तविक स्वरूप बतलाकर स्व-पर का उपकार करनेवाले अवंचक उपदेष्टा अनादि काल से ही होते चले आ रहे हैं, और इसी तरह अनन्त काल तक होते ही रहेंगे।

जैसे जीवों को रोग अनादि काल से हो रहे हैं तो उन रोगों का इलाज भी अनादि काल से ही है, ऐसा नहीं हो सकता कि रोग तो हो और उनका उपचार विश्व में न हो। ठीक वैसे ही विश्व में संसारी जीवों को अनादि से मिथ्यात्व-कषाय का रोग लग रहा है तो उन रोगों को दूर करनेवाले सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूपी उपचार भी अनादि से प्रचलित हैं और उनका स्वयं प्रयोग करनेवाले तथा अन्य जीवों को प्रयोग का उपाय दिखलानेवाले सद्वैद्य के समान यथार्थ वक्ता भी होते ही हैं।

जिस प्रकार हुण्डावसर्पिणी काल में अठारह कोड़ाकोड़ी वर्षों के बाद में इस भरतक्षेत्र के जीवों को भगवान ऋषभदेव मोक्षमार्ग में लगाये थे, वैसे ही इस पंचम काल में भगवान पुष्पदन्त, भूतबली, कुन्दकुन्द, उमास्वामी, समन्तभद्र, अकलंकदेव, अमृतचन्द्र आदि धुरन्धर दिगम्बर जैन महर्षियों ने सत्यार्थ वस्तुस्वरूप बतलाकर जीवों को सन्मार्ग पर लगाया था, उसी प्रकार वर्तमान समय में न्याय, व्याकरण, सिद्धान्त आदि विषयों के किंचित् ज्ञान से मदोन्मत्त भोले जीवों को वस्तु का स्वतन्त्र स्वरूप जो कि सर्वज्ञ प्रभु का हार्द है तथा जैनशासन का प्राण है, बतलानेवाले एक मात्र सत्पथप्रदर्शक पूज्य श्री कानजीस्वामी हैं।

वास्तव में बिना स्व-पर भेदविज्ञान के यह ग्यारह अंग नवपूर्वों का ज्ञान और इसके अन्तर्गत आ जानेवाला न्याय व्याकरण आदि का ज्ञान थोथा नहीं तो क्या है?

सन् १९५३ ई० के पहले लोगों के मुँह से यह सुनकर कि कानजीस्वामी के प्रवचन एकान्त को लिए हुए होते हैं, ऐसी मेरी भी भ्रान्त धारणा हो गई थी कि जैनधर्म का कथन तो अनेकान्तरूप है। उसमें जितना महत्व निश्चय का है, उतना ही व्यवहार का भी है।

इस तरह मैं पूज्य स्वामीजी द्वारा प्ररूपित वास्तिवक अनेकान्त को न समझकर इस मनमानी कल्पना को ही अनेकान्त मान रहा था।

लेकिन जब श्रवणबेलगोला से मस्तकाभिषेक के बाद श्री गिरनार आदि तीर्थों की वन्दना करके सिर्फ कानजी महाराज के एकान्तवाद को जानने के लिए सोनगढ़ गया, और चार दिन तक स्वामीजी के प्रवचन सुने और उनकी दैनिकचर्या आदि देखी तो जैसे वीर प्रभु के सम्पर्क से इन्द्रभूति का मद खर्व हो गया था, वैसे ही मेरा अनेकांती बनने का मद चूर-चूर हो गया। वहाँ

सोनगढ़ में मैंने पूज्य स्वामीजी से निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध, शुभ-अशुभ, क्रमबद्ध, सर्वज्ञत्व आदि विषयों पर जो-जो आशंकाएँ कीं, उनका सर्वज्ञ परम्परा के अनुसार अद्वितीय समाधान वहाँ जैसा मुझे मिला, वैसा अन्यत्र नहीं।

मेरे लेख का शीर्षक जो 'एकमात्र सत्पथ प्रदर्शक' है, उसे देखकर बहुतों को सन्देह हो सकता है कि वर्तमान में भी बड़े-बड़े चारित्रधारी, न्याय, व्याकरण सिद्धान्तवेत्ता मौजूद हैं, फिर एकमात्र सत्पथ प्रदर्शक श्री कानजी महाराज ही कैसे हो सकते हैं, अन्य क्यों नहीं? तो कहना पड़ता है कि श्री कानजीस्वामी के प्रकट होने से पहले या अब भी ऐसे कौन चारित्रधारी, ज्ञानी हैं जो निर्भीकता के साथ इस सर्वज्ञ प्रणीत वीतरागी धर्म को साम्प्रदायिकता की बाड़ से निकाल कर केवल वस्तुस्वरूप के आधार पर ही घोषित कर रहे हों। 'कानजीस्वामी निमित्त को उड़ाते हैं' ऐसा किन्हीं भाईयों का कहना है, वह तभी बिना सोचे कोरी कल्पनामात्र ही है। वास्तव में स्वामीजी निमित्त को यथास्थान अवश्य स्वीकार करते हैं। हाँ, वे निमित्ताधीन दृष्टि का अवश्य भुक्का उड़ाते हैं। जब तक निमित्ताधीन दृष्टि रहेगी, तब तक यह जीव स्वतन्त्र भी नहीं हो सकता।

भगवान कुन्दकुन्द के अमृतमय इस मन्त्र का हार्द खोलनेवाले 'एकमात्र सत्पथ प्रदर्शक' ये ही अध्यात्मसन्त हैं, वह मन्त्र यह है -

अण्ण दवियेण अण्ण दव्वस्स ण कीरई गुणुप्पाओ।
तम्हा उ सव्व दव्वा उप्पज्जन्ते सहावेण।।३७२।।

(समयसार)

अर्थात् एक द्रव्य का दूसरा द्रव्य रंचमात्र भी उपकार व सहाय्य नहीं कर सकता है, इसलिए प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय दूसरों की सहायता बिना स्वयं अपने-अपने स्वकाल की योग्यता से ही उत्पन्न होती हैं।

स्वामी कुन्दकुन्द के इस महामन्त्र से निमित्त मिलाने से कार्य की उत्पत्ति होती है, और ५० प्रतिशत उपादान की शक्ति से कार्य होता है, इस मिथ्या मान्यतारूपी सर्प का विष क्षण भर में ही उतर जाता है। कुछ जीवों की ऐसी मान्यता है कि 'उपादान और निमित्त दोनों मिलकर एक कार्य करते हैं', जैसे हल्दी-चूना मिलकर लाल रंग पैदा कर देते हैं।

उनको इस बात का पता ही नहीं है कि सारे जैनसिद्धान्त का सार ही यही है कि दो द्रव्यों की एक पर्याय तीन काल में भी नहीं हो सकती है।

जो दो द्रव्यों की एक पर्याय मानते हैं, उन्हें प्रात: स्मरणीय स्वामी कुन्दकुन्द ने समयसार में द्विक्रियावादी और अर्हन्त के मत से बाह्य मिथ्यादृष्टि कहा है। भगवान कुन्दकुन्द के वचनों का

सार लेकर ही वर्तमान में पूज्य स्वामीजी ने वस्तु तत्त्व की स्वतन्त्रता की घोषणा की है कि उपादान प्रतिसमय अपना उत्पाद-व्यय करता है और निमित्त अपना, फिर निमित्त ने उपादान की पर्याय में रद्दोबदल किया, तब निमित्त की पर्याय का कार्य किसने किया? यदि अन्य निमित्त ने किया, तब तो अनवस्था नाम का दोष लग जायेगा, जिससे पिण्ड छुड़ाना कठिन पड़ जायेगा।

प्रवचनसार में बतलाया है कि प्रत्येक द्रव्य सत्, प्रत्येक गुण सत् और प्रत्येक समय में होनेवाली पर्याय भी सत् है। सारांश जो स्वयं सत् है, उसको पर निमित्त क्या सहाय्य कर सकता है? कुछ नहीं। लौकिकजनों की तरह बहुत से दिग्गज विद्वान भी प्राय: घड़े का निमित्त कुम्हार होने से उसे ही घड़े का कर्ता मान रहे हैं, परन्तु जरा सा अन्तर में विचार करने से वस्तु ही स्वयं समाधान कर देती है, कि कुम्हार ने घट पर्याय में अपना क्या मिलाया? जहाँ जायेगी, वहाँ घड़े के साथ तो मिट्टी ही जायेगी। बेचारा कुम्हार तो न जाने कहाँ बैठा रहेगा? वास्तव में कुम्हार ने घड़ा बनाने की इच्छारूप उपयोग के प्रयोग के सिवाय क्या किया?

अपने हस्तपादादि चालनरूप क्रिया का भी जब कुम्हार का आत्मा कर्ता नहीं है तो जड़ मिट्टी के घड़े का वह कैसे हो सकता है? इस निमित्ताधीन दृष्टि को निकालने का पूज्य स्वामीजी का महान उपकार है। भोले विद्वान् 'जड़ कर्मों के कारण आत्मा पुरुषार्थ नहीं कर सकता है' इत्यादि आगम के उपचार कथन के अभिप्राय को नहीं समझकर सांख्यों की तरह हो हल्ला मचा रहे हैं और वस्तु स्वातन्त्र्य का गला घोंट रहे हैं।

वास्तव में आगम के कौन से वाक्य का क्या अभिप्राय है? पूज्य स्वामीजी ने इसे ही समझाया है। जैसे कोई सौभाग्यवती स्त्री यह भावना करे कि 'मेरी चूड़ियाँ अमर रहें' तो वास्तव में चूड़ियाँ शब्द से उसका अभिप्राय काँच की रुपये दो रुपये की चूड़ियों से नहीं बल्कि उस स्त्री का लक्ष्य चूड़ियाँ शब्द द्वारा अपने पति को चिरंजीवी रखने का है। इस प्रकार आगम के हार्द को इस समय किसी चारित्रधारी या अन्य विद्वान ने स्पष्ट नहीं समझाया कि शारीरिक जड़ की क्रिया, द्रव्यों की उठाधरी, भूखों भरने रूप लंघन (उपवास) आदि तथा शुभभाव (मन्द कषाय) रूप विकारी क्रिया से कभी भी आत्मधर्म की प्राप्ति नहीं हो सकती है।

बन्ध के कार्य में जड़ की क्रियाएँ सर्वथा अनुपयोगी हैं। शारीरिक क्रियाओं से न तो शुभबन्ध हो सकता है और न अशुभबन्ध ही। इसी प्रकार शुभराग से धीरे-धीरे कर्म की प्राप्ति हो जायेगी यह भी असम्भव है।

राग चाहे शुभ हो, चाहे अशुभ, दोनों ही संसार के कारण हैं आदि-आदि। ज्ञानी कहलानेवालों ने धर्म के नाम पर जड़ की क्रियाओं से तथा अधिक से अधिक पुण्योत्पादक

शुभराग में ही भोले जीवों को फँसा रखा था। सो वर्तमान में इस वास्तविक वीतरागी मार्ग के एकमात्र प्रदर्शक पूज्य स्वामीजी ही हैं।

जिन बड़े-बड़े धर्म धुरंधर बननेवालों को अभी यह भी विवेक नहीं है कि वास्तव में आस्रव की और संवर की दिशा ही भिन्न है और पर के कर्तृत्व का अभिमान घोर मिथ्यात्व है, वे धर्म के ठेकेदार बन बैठें तो कहाँ तक उपयुक्त है?

यह तो प्रसिद्ध ही बात है कि धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है, (दंसणमूलोधम्मो) अष्टपाहुड़।

इस सम्यग्दर्शन पर्याय का एकमात्र आश्रय अनाद्यनंत परमपारिणामिकभावरूप अपना ज्ञायक स्वभाव है। ज्ञानस्वभाव में त्रिकाल त्रिलोक को एक समय में जानने की शक्ति है, उस शक्ति की पूर्ण व्यक्तता का नाम ही केवलज्ञान है।

प्रत्येक द्रव्य, गुण और उनकी त्रिकाली पर्यायें सब उस ज्ञान की ज्ञेय हैं। जब ज्ञान त्रिकाली पर्यायों को हस्तामलकवत् जान सकता है तो उन द्रव्यों की प्रत्येक पर्याय का समय भी नियत ही होना चाहिए। ऐसा नहीं हो सकता कि वस्तु के द्रव्य, क्षेत्र और भाव को तो ज्ञान यथावत् जान ले लेकिन काल की नियतता को नहीं जाने। चूँकि द्रव्य अपनी त्रिकाली पर्यायों का पिण्ड मात्र ही तो है, पर्यायों को छोड़कर द्रव्य कहीं अलग तो रहता नहीं है। जो ज्ञान 'पूरे द्रव्य को जान सकता है, वह उसकी अनागत पर्यायों को न जाने' ऐसा कहना ज्ञान स्वभाव का अवर्णवाद है।

निमित्ताधीन दृष्टिवाले कहते हैं कि जब सब ही पर्यायें सर्वज्ञ के ज्ञान में निर्णीत हैं, तब निमित्त मिलाने का और धर्म कर्म करने का पुरुषार्थ हम क्यों करें? तो पूज्य स्वामीजी समझाते हैं कि भाई प्रथम तो तूने सर्वज्ञ प्रभु की श्रद्धा कर ली, यही अनादि मिथ्यात्व को हटाने का महान पुरुषार्थ कर लिया है, यदि तुझे और भी पुरुषार्थ करना हो तो अपने सर्वज्ञ स्वभाव में ही स्थिरता कर जम जा। इससे बढ़कर और कौन सा धर्म कर्म और पुरुषार्थ बचा हुआ है, जिसे तू करना चाहता है। लेकिन भाई तेरी अनादि काल की आदत पड़ी हुई है, उसी से तू धर्म कर्म का बहाना लेकर पर में उलटा-पलटी करना चाहता है। लेकिन यह भव बन्धन काटने का सच्चा तरीका नहीं है। तुझे पर में से हटकर स्व में ही पुरुषार्थ करना पड़ेगा। यह मान्यता श्री कानजीस्वामी की ही हो ऐसी बात नहीं है। दो हजार वर्ष पहले आचार्यवर्य श्री कार्तिकेयस्वामी ने इस सिद्धान्त पर कितना जोर दिया है, जरा उनके शब्दों का मनन कीजिये।

''जं जस्स जम्मि देसे जेण विहाणेण जम्मि कालम्मि।
णादं जिणेण णियदं जम्मं वा अह व मरणं वा।।
तं तस्स तम्मि देसे तेण विहाणेण तम्मि कालम्मि।
को सक्कई चालेदुं इंदो वा अह जिणिंदो वा।।'' क्रमशः

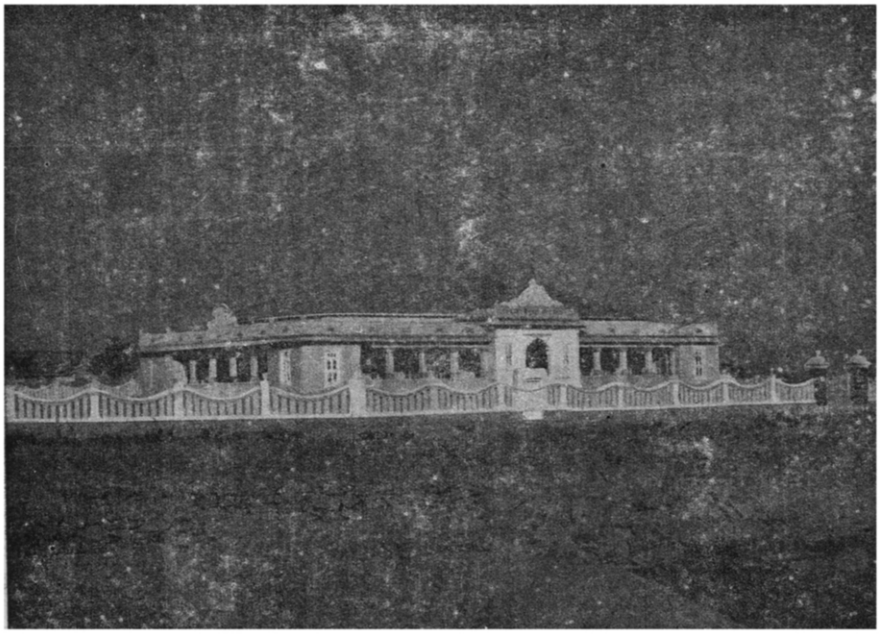

नया विशाल प्रवचन मण्डप, सोनगढ़

आत्मकल्याणर्थिनी ब्रह्मचारिणी बहिनें और पूज्य बहिनश्री बहिनजी

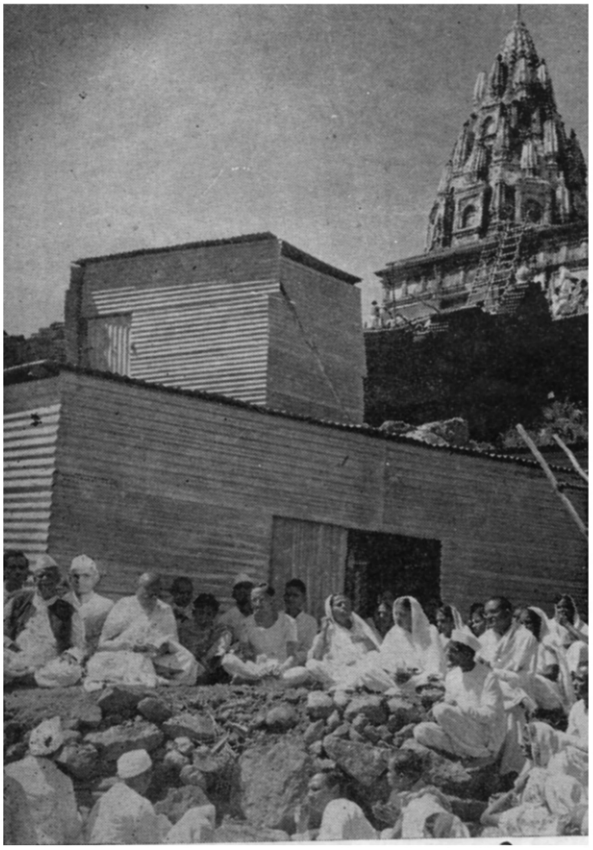

शिखरजी की पार्श्वनाथ टोंक पर ससंघ स्वामी जी

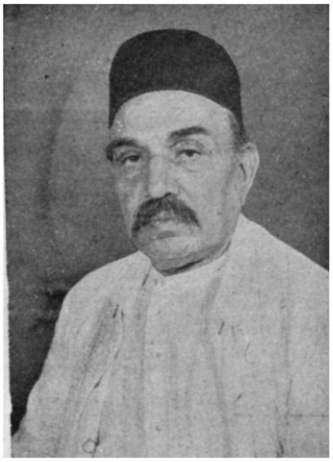

श्री हरगोविन्ददास देवचंदजी मोदी
सोनगढ़ (जिन्होंने पूज्य गुरुदेवश्री
को सोनगढ़ में ठहरने के लिए
आग्रह किया था)

अजन्ता की गुफा में ससंघ – स्वामीजी

सुयोग विद्वान एवं कुशल प्रवक्ता
सेठ ब्र० खेमचन्दजी सा० सोनगढ़

सोनगढ़ की विशेषताएँ

'हितैषी'

जिन बन्धुओं ने सोनगढ़ में प्रत्यक्ष जाकर वहाँ का वातावरण देखा है, वे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। वहाँ सूर्योदय के पूर्व से प्रारम्भ होकर रात को १० बजे तक का धर्मचर्चा का कार्यक्रम अत्यन्त आकर्षक और आदर्श है। इसलिए सोनगढ़ आत्मजिज्ञासुओं के लिए एक तीर्थस्थल बन गया है।

१– वहाँ का पूजन, प्रवचन, चर्चा, भक्ति आदि का कार्य बिलकुल नियमित समय पर होता है। न कभी एक मिनट पूर्व प्रारम्भ होता है और न एक मिनट पश्चात् समाप्त होता है। प्रवचन आदि में एक मिनट पश्चात् जानेवाला व्यक्ति स्वयं अपने को लज्जित सा अनुभव करता है। वहाँ पर सभी भाई निश्चित समय से पूर्व ही यथास्थान शान्तिपूर्वक बैठ जाते हैं। वातावरण बड़ा शान्त और सौहार्दपूर्ण रहता है।

२– वहाँ करीब १२५ जिज्ञासु सम्पन्न सज्जनों ने अपनी कोठियाँ बना ली हैं। ये सभी बन्धु श्वेताम्बर जैन थे, आज वे कट्टर दिगम्बर जैन हैं।

३– जिस सौराष्ट्र प्रान्त में दिगम्बर जैन का नाम कोई नहीं जानता था, वहाँ आज २० हजार से अधिक श्वेताम्बर बन्धु दिगम्बर जैनधर्म धारण कर अपने को भाग्यशाली मान रहे हैं। वहाँ आस पास के सभी गाँवों में दिगम्बर जैन मन्दिर भी गुरुदेव की कृपा से स्थापित हो चुके हैं।

४– रविवार को सैकड़ों धर्मबन्धु बम्बई, अहमदाबाद, राजकोट, भावनगर आदि से आकर प्रवचन, भक्ति और सत्संग का लाभ उठाते हैं।

५– वहाँ पर समृद्ध घराने की तीस बहिनें बालब्रह्मचारिणी रहती हैं। जिनकी पवित्र और शान्त मूर्तियों का दर्शन कर हृदय गद्‌गद् हो उठता है। ये बहिनें धर्ममाता श्री चम्पाबहिन और शान्ताबहिन की देखरेख में श्राविकाश्रम में रहती हैं। इनका विशाल ज्ञान और चरित्र देखकर मस्तक श्रद्धा से नत हो जाता है।

६– शान्ति और क्षमा की अवतार जैसी बहिनश्री बहिनजी – दोनों बहिनें जब भक्ति रस की वर्षा करती हैं, तब उस भक्ति गंगा में नहाने का सौभाग्य प्राप्त करनेवाला भक्त अपनी सुधबुध खोकर ऐसा पुलकित हो उठता है, जिसे लेखनी से लिखा जाना असम्भव है।

७– रात्रि को धर्मचर्चा के समय किसी भी बहिन का पुरुषों के मध्य प्रवेश नहीं होता। अत: दोनों बहिनों का शास्त्र रात्रि के समय महिलाश्रम में होता है, जिसमें बालब्रह्मचारिणी बहिनें एवं अन्य महिलाएँ भी उपस्थित रहती हैं।

८– वहाँ का बच्चा–बच्चा अध्यात्म चर्चा में निपुण और शिक्षित रहता है। वहाँ के निवासी गृहस्थों के बच्चे भी भक्ति और प्रवचनादि में सम्मिलित रहते हैं।

९– वहाँ कभी किसी से चन्दा नहीं माँगा जाता। स्वत: ही दानी बन्धुओं ने लाखों रुपया लगा कर विशाल मन्दिर, भव्य समवसरण मन्दिर, ६३ फुट ऊँचा संगमरमर का सुन्दर मानस्तम्भ, दो प्रवचन मण्डप, एक जैन छात्रावास, एक जैन महिलाश्रम अतिथिगृह, अतिथि भोजनालय, साप्ताहिक और मासिक पत्रों का प्रकाशन, विशाल ग्रन्थों के प्रकाशन विभाग की स्थापना की है। दानी बन्धुओं के सहयोग से वहाँ का प्रकाशन इतना सस्ता होता है, जितना सम्भवत: आजतक कोई जैन संस्था नहीं कर सकी।

१०– वहाँ के अधिकांश कार्यकर्ता नि:स्वार्थ भाव से अवैतनिक कार्य करते हैं। इन कार्यकर्ताओं की लगन और उत्साह समस्त जैन संस्थाओं के लिए आदर्श है।

११– गृहस्थों के घर पर भी वहाँ निरन्तर धर्म चर्चा होती मिलती है।

१२– वहाँ पर शंकाओं का समाधान एवं जिज्ञासुओं की जिज्ञासा को तृप्त करने के लिए अनेक सिद्धान्त ग्रन्थों का प्रमाण देकर समझाया जाता है। वहाँ सिद्धान्त ग्रन्थों का इतना आलोडन हो चुका है कि मुखाग्र ही अनेक ग्रन्थों का प्रमाण देने के लिए अध्याय और पृष्ठ बना दिया जाता है। जब तक जिज्ञासु का समाधान नहीं हो जाता, तब तक उसे अनेक प्रमाणों से समझाया जाता है। युक्तियाँ अकाट्य और तर्कपूर्ण दी जाती हैं।

१३– गुरुदेव का समय निरंतर स्वाध्याय, अध्ययन, मनन और प्रवचन, चर्चा आदि में ही जाता है।

१४– विरोधी बन्धुओं को कभी वहाँ बुरा–भला नहीं कहा जाता और न उनकी निन्दा की जाती है। और न व्यर्थ के विवाद में समय बिताया जाता है। यदि किसी को कुछ समझना है या कोई शंका है तो उसका समाधान वहीं पर सप्रमाण किया जायेगा।

१५– गुरुदेव कभी किसी के पत्र का न उत्तर देते हैं और न कुछ स्वयं लिखते हैं। तथा सांसारिक चर्चा हो, वहाँ समय भी नहीं दिया जाता।

१६– वहाँ पर आपस में ऐसा सौहार्द और सौजन्य है जो अन्यत्र देखने में नहीं आता। कभी किसी को क्रोध, घृणा और द्वेष करते नहीं देखा गया।

१७– जब सब ब्रह्मचारिणी बहिनें पूजन, भक्ति अपने मधुर राग में बोलती हैं तो ऐसा अनुमान होता है, जैसे कोई देवियाँ अपनी पूर्ण शक्ति से मधुर भक्तिरस की वर्षा कर रही हैं।

१८– वहाँ अनेक धर्मप्रेमी नि:स्वार्थ विद्वानों का सहयोग प्राप्त है, जो सिद्धान्त ग्रन्थों के

अच्छे अध्येता हैं। श्री रामजीभाई वकील, श्री पण्डित हिम्मतलालजी शाह, श्री खेमचन्दजीभाई आदि अच्छे तर्कशास्त्री एवं निष्णात विद्वान हैं।

१९- थोड़ा सा भी दिन को या रात्रि को समय मिलता है तो खेमचन्दजीभाई आदि विद्वानों की चर्चा और शास्त्र होता रहता है। एक मिनट लोग व्यर्थ नहीं खोते।

२०- वहाँ के निवासी धर्मबन्धु सभी अपना स्वयं का खर्च करते हैं।

२१- वहाँ गरीब अमीर का भेदभाव देखने को नहीं मिलता।

२२- सभी भाई-बहिनें सादे, स्वच्छ व श्वेत वस्त्र पहिनते हैं। शृंगार या चटक मटक वहाँ देखने को नहीं मिलती।

२३- वहाँ की आबहवा बड़ी स्वास्थ्यप्रद है। इसीलिए वहीं कुछ दूर पर सरकारी टी० बी० सेनोटोरियम बनाया गया है।

२४- देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति बहुमानपूर्वक होती है।

२५- मन्दिर और प्रवचन मण्डप में तीर्थंकरों के पूर्वभव की अनेक हृदयस्पर्शी घटनाओं तथा अचार्यों, मुनियों की महत्वपूर्ण घटनाओं का कलापूर्ण सुन्दर चित्रण किया गया है, जिससे धर्म और वैराग्य की पुष्टि होती है।

२६- गुरुदेव का प्रवचन अध्यात्म जैसे रूखे विषय पर भी इतना सरस और आकर्षक होता है, जिसे सुनकर श्रोता आत्मविभोर हो उठता है।

२७- जहाँ एक दिन सिर्फ जंगल था, वहाँ आज छोटी सी धर्मनगरी की सुन्दर बस्ती बस गई है और उसी जंगल में आज मंगल हो रहा है।

२८- सोनगढ़ की अध्यात्म चर्चा ने भारत के नगर नगर गाँव-गाँव ऐसा व्यापक प्रभाव फैलाया है कि लाखों बन्धु अपने गाँव में बैठे रहकर भी आत्मरस का आनन्द ले रहे हैं।

२९- जो भाई अपने गाँव, नगर में भी प्रवचन का लाभ उठाना चाहते हैं, उनको रिकार्डिंग मशीन मधुकरभाई के साथ भेज दी जाती है।

३०- प्रवचन में भाषा और भाव इतने सरलतम होते हैं कि जनसाधारण उन्हें अच्छी तरह समझ सकता है।

३१- वहाँ निवास और भोजनपान का इतना सुन्दर प्रबन्ध है कि कोई भी भाई वहाँ निराकुलता पूर्वक महीनों रह सकता है।

३२- प्रवचन, मन्दिर आदि में हजारों की उपस्थिति होने पर भी कभी पंखा और लाउडस्पीकर का प्रयोग नहीं किया जाता। ●

जब मेरी जीवन दिशा बदली

(श्री श्रद्धालाल जैन, बूँदी)

सर्वप्रथम विक्रम संवत् २०११ में पूज्यवर श्री पण्डित गेंदालालजी शास्त्री द्वारा मुझे पूज्य कानजीस्वामी द्वारा प्रकाशित सर्वज्ञ भगवान के हार्द स्वरूप वस्तुस्वभाव जानने की प्रेरणा मिली थी।

मैं सदा यही सोचता था कि आखिर परमार्थ सत्य क्या है? तभी से पूज्य स्वामीजी के साहित्य को देखने की रुचि बढ़ी और सोनगढ़ से प्रकाशित होनेवाले प्राय: सब ही साहित्य को मैंने कई बार जिज्ञासापूर्वक देखा। इसके पूर्व एक दिन मेरी भी यह दशा थी कि व्रत, उपवास, संयम, जप, तप करने से कायक्लेश होता है जो अनुभव से प्रत्यक्ष है। क्योंकि वर्तमान में ही इस तपश्चरण के मार्ग पर चलने से दु:ख का अनुभव होता है। दु:ख के मार्ग से परलोक में सुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है? साथ ही बहुत स्वाध्याय करने से तथा अपने आप को बहुत बड़ा पण्डित मानने से, कुछ एकाशन उपवास आदि करके अपने को व्रती, त्यागी, चारित्रधारी मान लेने से क्या आत्म कल्याण हो जाता होगा? क्या उपयुक्त क्रियाएँ कर लेनेमात्र से आस्रव रुककर संवर, निर्जरा हो जाती है?

कभी मैं ऐसा सोचता था कि द्रव्यकर्म और नोकर्म आत्मा को राग-द्वेष की प्रेरणा कैसे करते हैं? तथा कर्म आत्मा को मार्ग देवे, तब बेचारा आत्मा अपने कल्याण के सन्मुख हो सकता है। वास्तव में आत्मा इन द्रव्यकर्मों से इतना परतन्त्र हो गया कि जब तक इन जड़ कर्मों की महरबानी नहीं हो जावे, तब तक कुछ कर ही नहीं सकता है। जबकि संसारी जीवों के द्रव्यकर्मों का उदय सदैव ही रहता है तो बेचारे को मोक्षमार्ग की प्राप्ति अनन्त काल में भी नहीं हो सकेगी इत्यादि।

श्री गुरुदेव कानजीस्वामी के प्रवचनों का मैंने मनन चिन्तन किया तो ऊपर लिखित मेरी सब शंकाएँ कपूर की तरह उड़ गईं और तब मैंने यथार्थ रूप से समझा कि ये नग्नत्व, व्रत, उपवासादि जड़ तथा विकारी क्रियाएँ भी अपनी-अपनी भूमिकानुसार गृहस्थ तथा मुनि के मोक्षमार्ग को साधन करते समय बीच में आती अवश्य हैं और इन काय-क्लेशादि क्रियाओं के समय जब आत्मा संवर के मार्ग पर चलता है, तब उसे रंचमात्र दु:ख का अनुभव न होकर उल्टा आंशिक निराकुल आनन्द का वेदन होता है। वास्तव में जितने अंशों में उपवासादि में दु:ख का वेदन हो रहा है, वह संवर का मार्ग न होकर आस्रव का ही मार्ग है। साथ ही यह भी स्वामीजी के प्रवचनों से ज्ञात

हुआ कि ये बाहरी शारीरिक क्रियाएँ हठपूर्वक करनी नहीं पड़तीं, बल्कि अपनी-अपनी भूमिकानुसार स्वयं ही होती हैं। सम्यग्दृष्टि जीव को द्रव्य दृष्टि प्रकट हुई है, अत: जैसे त्रिकाली द्रव्य का स्वभाव रागादि रहित है, वैसे ही उसकी दृष्टि में रागादि का कर्तापन भी नहीं रहता। अस्थिरता के कारण पर्याय में जो राग-द्वेष रहते हैं, वास्तव में तो सम्यग्दृष्टि उनका भी ज्ञाता ही है, कर्ता नहीं।

रागादि की पर्यायें एक समय मात्र की होती हैं, ऐसा नहीं हो सकता कि अनादि काल के रागादि एक साथ इकट्ठे होकर आ जावें। अत: कथंचित् रागादि होते हुए भी सम्यग्दृश्टि का अपने स्वभाव पर ही भार है और वह उसे ही उपादेय मानता है। यदि ये रागादि आत्मा के स्वभाव में घुल मिल जायेंगे और शुद्धनय से भी आत्मा उनका कर्ता हो जायेगा तो फिर सिद्ध अवस्था में भी नित्य कर्ता बना ही रहेगा।

पूज्य कानजीस्वामी ने बतलाया कि बड़ बीज की तरह कर्मों का संयोग आत्मा को संसार अवस्था में सदैव ही है, तब फिर द्रव्यकर्म कब दूर होवेंगे? और आत्मा कब अपना कल्याण करेगा? अत: द्रव्यकर्म आत्मा को अपना कल्याण करने में कभी नहीं रोक सकता है। आत्मा जब चाहे, तब पुरुषार्थ करके अपना कल्याण कर सकता है।

द्रव्यकर्म जड़ है, आत्मा चेतन है, दोनों के स्वभाव, गुण पर्यायें भिन्न-भिन्न हैं-कार्य अलग-अलग हैं। यह सब बन्दर की घड़े में मुट्ठी बँधी होने से कहीं घड़े ने बन्दर को नहीं पकड़ रखा है, बल्कि बन्दर स्वयं चने की मुट्ठी के राग के कारण फँसा मान रहा है।

द्रव्यकर्म जड़रूप से अपनी पर्यायों को बदला करते हैं, वे चेतन पर्यायों से अत्यन्त भिन्न होने से उसे राग-द्वेषादि तो आत्मा के वैभाविक चारित्रगुण की अशुद्ध पर्याय हैं। यदि आत्मा स्वयं अपनी विपरीत मान्यता की भूलों को निकाल देवे तो कर्मों की क्या मजाल जो आत्मा को संसार में रोक देवे। हाँ, जब आत्मा अपनी विकारी पर्याय तत्तत्समय की योग्यता से स्वयं करता है, तब अनुकूल द्रव्यकर्मों पर आरोप अवश्य आता है। आरोप और घी का घड़ा कहने से कहीं घड़ा नहीं खाया जाता है, खाने में तो घी ही आयेगा, घड़ा नहीं। द्रव्यकर्म की उपस्थिति रहने पर भी यदि आत्मा उनके फल में तन्मय होकर नहीं जुड़े अर्थात् राग-द्वेष नहीं करे तो द्रव्यकर्म जब जबरदस्ती उसे राग-द्वेष नहीं करा सकेंगे। ग्यारहवें गुणस्थान में जबकि मोहकर्म का उदय रंचमात्र भी नहीं है, तब भी आत्मा अपनी कमजोरी से और योग्यता से ही वहाँ से गिर जाता है, द्रव्यकर्म उसको बलात् गिराते नहीं हैं।

आगम पंथी लोग गोम्मटसार आदि करणानुयोग के ग्रंथों का प्रमाण देकर हो-हल्ला मचाते हैं कि शास्त्रों के कथन का लोप हो जायेगा, लेकिन वास्तव में तो थर्मामीटर लगाने से शरीर के बुखार का ताप बतलाया जाता है, कहीं थर्मामीटर ने शरीर में बुखार नहीं भर दिया है।

चारों अनुयोगों के शास्त्रों का निचोड़ एकमात्र वीतरागता प्राप्त करना है और वीतरागता की प्राप्ति दो द्रव्यों के भेदविज्ञान बिना हो नहीं सकती। वास्तव में यह सब झगड़ा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध और कर्ताकर्म सम्बन्ध को एक मानने से हो रहा है। कर्ताकर्म सम्बन्ध तो एक ही द्रव्य में होता है और निमित्त-नैमित्तिक दो भिन्न द्रव्यों में होता है। जड़कर्म और आत्मा भी भिन्न द्रव्य हैं। अत: उनका कर्ताकर्म सम्बन्ध तीन काल में भी नहीं हो सकता है। हाँ निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध अज्ञान अवस्था में है। अत: आचार्यों की कथनशैली की भिन्नता से उनके अभिप्रायों को ही समझने का हमें प्रयत्न करना चाहिए। जो लोग यह कहते हैं कि द्रव्यानुयोग और करणानुयोग जो कहता है, वही सत्य है, प्रथमानुयोग और चरणानुयोग तो व्यर्थ हैं, ऐसा जीव तो जैनधर्म का मर्म समझने का पात्र ही नहीं है, वह तो जैनधर्म के आँगन में भी नहीं आया है। उसके लिए वास्तव में निश्चय-व्यवहार, अनेकान्त-एकान्त, निमित्त उपादान आदि का स्वयप जानना दु:साध्य है।

जो वास्तव में आत्मकल्याण के इच्छुक हैं, उन्हें अनादि काल से मानी हुई मान्यताएँ छोड़नी पड़ेंगी कि लोग मुझे क्या कहेंगे? मुझे किस दृष्टि से देखेंगे? आज तक सभी मुझे प्रतिष्ठित, ज्ञानी, त्यागी, विद्वान, मुनि आदि समझ रहे हैं सो इस वस्तु स्वातन्त्र्य के सिद्धान्त को मानने पर उनके दिल में तहलका मच जायेगा, आदि-आदि अनेक आपत्तियों का सामना करना पड़ेगा, तभी आत्मज्योति अन्तर में प्रकट हो सकती है। बाहरी लोगों के मेरी प्रशंसा करने से कहीं मेरा कल्याण नहीं हो जायेगा और निन्दा करने से अकल्याण नहीं। तब मैं इन लोगों की बातों से इस देव दुर्लभ मानव जन्म को क्यों व्यर्थ में खोऊँ। मैं निश्चितरूप से यह कहे बिना नहीं रह सकता कि यदि श्री कानजी महाराज वर्तमान में श्री कुन्दकुन्दस्वामी आदि आचार्यदेवों के वास्तविक वीतरागी अभिप्राय की नहीं बतलाते तो अवश्य ही हम इन क्रियाकाण्डी ब्राह्मणों के समान जैन नामधारियों के चक्कर में पड़कर मनुष्य जन्म व्यर्थ ही खो बैठते। अत: पूज्य स्वामीजी को कोटिश: आभार मानकर मैं ७३वीं जन्मतिथि पर उनको विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ और कामना करता हूँ कि पूज्य स्वामीजी शतजीवी होकर हम लोगों को मार्ग प्रदर्शित करते रहें।

यद्यपि बहुत से निन्दक लोग दीर्घ संसारी रहकर स्वामीजी की निन्दा करते हैं तो करो, जो

लोग सर्वज्ञ प्रभु की सर्वज्ञता उड़ाने में नहीं चूकते, वे यदि स्वामीजी की निन्दा करें तो कोई अनहोनी बात नहीं है।

निन्दक लोग स्वामीजी को मुनि त्यागी मानकर नुक्ताचीनी करते रहते हैं। ये सब इन लोगों की अज्ञानता है। श्री कानजी महाराज को तो मनुष्य भव पाकर आत्मकल्याण करना है, अत: वे तो इन निन्दकों पर उपेक्षाभाव किये हुए हैं। अब मुझे महाराजश्री द्वारा प्रदर्शित वीतराग पथ पर चलने की शक्ति प्राप्त हो, यही भावना करता हुआ, इस लेखनी को विराम देता हूँ। ●

संयोग तो संयोग ही है

एक बार एक अकेला निर्धन व्यक्ति बम्बई गया। वहाँ जाकर उसने व्यापार शुरु किया और धीरे-धीरे लाखों रुपये कमा लिये। फिर अपना विवाह किया, सन्तान हुई। लड़कों का भी विवाह कर दिया.... परिवार में कुल बारह आदमी हो गये; मकान बन गये.... लेकिन कुछ वर्षों में एक के बाद एक सब मर गये, मकान चले गये, सम्पत्ति नष्ट हो गई, और भाईसाहब ज्यों के त्यों अकेले लौट आये...! देखा यह संयोग! इन्द्रपद या चक्रवर्ती पद के संयोग की भी यही स्थिति है; इसलिए हे जीव! संयोग में से सुख प्राप्ति की आशा छोड़कर अपने निज स्वभाव की भावना कर! आत्मस्वभाव में सुख है और उस स्वभाव की भावना से प्रकट हुआ सुख सदैव आत्मा के साथ ही रहता है, किन्हीं भी संयोगों में उस सुख का वियोग नहीं होता, संयोग में माना हुआ सुख उस संयोग के वियोग में स्थिर नहीं रह सकता, किन्तु नित्य चित् स्वभाव में से आया हुआ सुख संयोग के बिना भी सदैव बना रहता है। ●

कुन्दकुन्दाचार्य के विदेह गमन के प्रमाण

श्री ब्रह्मचारी गुलाबचन्द जैन, सोनगढ़

(चारण ऋद्धिधारी भगवद् कुन्दकुन्दाचार्य ने विदेह में जाकर साक्षात् भगवान् सीमन्धरस्वामी के समवसरण में प्रत्यक्ष दिव्यध्वनि सुनी थी तथा ८ दिन वहाँ रहकर तत्त्व का निर्णय किया था। इसीलिए उनको सबसे अधिक प्रामाणिक आचार्य माना जाता है। आचार्यश्री ने पुन: भरतक्षेत्र में वापस आकर समयसार आदि १८ अध्यात्म ग्रन्थों की रचना की थी। इसीलिए उनके ग्रन्थ हितसाधन में मुख्य उपयोगी और महत्वपूर्ण माने जाते हैं। आचार्य परम्परा में 'मंगल कुन्दकुन्दाद्यो' के रूप में उनका सर्वप्रथम स्मरण किया गया है। श्री ब्रह्मचारीजी ने उनके विदेह गमन के प्रमाण संकलित कर प्रस्तुत किये हैं, जो ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्वपूर्ण हैं। – सं.)

भगवान श्री सीमन्धरस्वामी के पास श्री कुन्दकुन्दाचार्य गये थे, वे चार अंगुल आकाश–गमनशक्ति सम्पन्न चारण ऋद्धिधारी थे, इसके आधारभूत प्रमाण निम्नोक्त हैं।

१– दिगम्बर भावलिंगी पवित्र मुनि श्री देवसेनाचार्य कृत दर्शनसार (१०वीं सदी में) लिखते हैं–

जईपउमणंदिणाहो सीमंधरस्वामी दिव्वणाणेण।
णविवोहई तो समणा कहं सुमग्गं पयाणंति।।४३।।

संस्कृत दाया – यदि पद्मनंदीनाथ: सीमंधर स्वामी दिव्यज्ञानेन न विषधति तर्हि श्रमणा कथं सुमार्गं प्रजानंति ?

अर्थ :– विदेहक्षेत्र के वर्तमान तीर्थंकर सीमन्धर स्वामी के समवसरण में जाकर पद्मनन्दीनाथ या कुन्दकुन्दाचार्य स्वामी ने जो दिव्य ज्ञान प्राप्त किया था, उसके द्वारा यदि ये बोध न देते, तो मुनिजन सच्चे मार्ग को कैसे जानते ? (पृष्ठ १८)

२– पंचास्तिकाय में श्री जयसेनाचार्य भावलिंगी मुनि ग्रन्थ के आदि मंगलाचरण में लिखते हैं (जो ११वीं सदी में हुये हैं)–

अथ श्री कुमारनन्दी सिद्धांतदेव शिष्यै: प्रसिद्ध कथा न्यायेन पूर्वविदेहंगत्वा वीतरागसर्वज्ञसीमंधर स्वामी तीर्थंकरपरमदेवें दृष्ट्वा तन्मुखकमल विनिर्गतदिव्यवाणी श्रुत्वा अवधारीत् पदार्थात् शुद्धात्मतत्वादिसारार्थं गृहीत्वा पुनरायागतै: श्रीमत् कुंदकुंदाचार्य देवै: पद्मनन्द्याद्यपरनामधेयैरन्तस्तत्व बहिस्तत्व गौणमुख्य प्रतिपत्यर्थं अथवा शिवकुमार महाराजादि संक्षेपरुचिशिष्य प्रतिबोधनार्थं विरचिते पंचास्तिकाय प्राभृतशास्त्रे।

३– ऐसा ही उल्लेख षट्प्राभृत में श्री श्रुतसागर सूरि महाराज ने किया है।

४– जैन शिलालेख संग्रह (प्रथम भाग) नामक ग्रन्थ (प्रकाशक – नाथूराम प्रेमी। संग्रहकार – श्री डॉ० हीरालालजी, एम.ए., पी.एचडी. डी.लिट.)

जैन शिलालेख संग्रह, विंध्यगिरि, चन्द्रगिरि वगैरह, पृष्ठ २४ में भी उल्लेख है।

५– तस्यान्वये भू–विदिते वभूव
य: पद्मनन्दि प्रथमाभिधान:।
श्री कोण्डकुंदादि–मुनिश्वराख्य
स्सस्संगमादुग्दत–चारणर्द्धि:।।६।।

– स्तम्भ का दक्षिण मुख – शिलालेख नं० ४० (६४) (जैन शिलालेख संग्रह, पृष्ठ ३४)

६– चन्द्रगिरि पर्वत पर शिलालेख, ४२ (६६) तथा महानवमी मण्डप के उत्तर में एक स्तम्भ पर–

श्री पद्मनन्दित्यनवद्य नामा
ह्याचार्य शब्दोत्तर कोण्डकुन्द:
द्वितीयमासीदभिधानमुद्य
च्चरित्र सञ्जातसुचारणर्द्धि:।।४।।

पृष्ठ ४३ चामुण्डरायबस्ति (मन्दिर) के दक्षिण की ओर मण्डप में प्रथम स्तम्भ पर उपरोक्त दूसरा लेख है। लेख नं० ४. (११७) पृष्ठ ५८, तीसरा लेख नम्बर – ४७ (१२७)

७–चन्द्रगिरि पर चौथा लेख पृष्ठ १०२, पार्श्वनाथ बस्ति के एक स्तम्भ पर (उत्तर मुख)

बन्द्यो विभुर्म्भुवि न कैरिह कौण्डकुन्द:
कुन्द–प्रभा–प्रणयि–कीर्ति–विभूषिताश:।
यच्चारु–चारण–कराम्बुज चञ्चरीक
श्चक्रे श्रुतस्य भरत प्रयत: प्रतिष्ठाम्।।

अर्थ – कुन्द पुष्प की प्रभा को धारण कर जिनकी कीर्ति से दिशाएँ विभूषित हुई हैं, जो चरणों के–चारण ऋद्धिधारी महामुनियों के – सुन्दर हस्त कमलों के भ्रमर थे तथा जिस पवित्र आत्मा ने भरतक्षेत्र में श्रुत की प्रतिष्ठा की है, वे विभु कुन्दकुन्द इस पृथ्वी पर किससे वन्दनीय नहीं है?

८– जैन शिलालेख संग्रह पृष्ठ १९७–१९८, विंध्यगिरि शिलालेख नं० १०५ (२५४) सिद्धवस्ति की उत्तर की ओर एक स्तम्भ पर –

.....दीव्य तपस्या–
शास्त्राधारेषु पुण्यादजनि स जगतां
..... कौण्डकुन्दो यतींद्रः।।१३।।
रजोभिरस्पृष्टतमत्वमन्तर्बाह्येपि संव्यञ्जयितुं यतीशः।
रजः पदं भूमितलं विहाय चचारमन्ये चतुरंगुलं सः।।

अर्थ – यतीश्वर (श्री कुन्दकुन्द स्वमाी) रजः स्थान को – भूमितल को छोड़कर चार अंगुल ऊँचे आकाश में चलते थे, उस पर से मैं ऐसा समझता हूँ कि वे अन्तर में उसी तरह बाह्य में रज से (अपना) अत्यन्त अस्पृष्टपना व्यक्त करते थे (अन्तरंग में वे रागादिक मल से अस्पृष्ट थे और बाह्य में धूलि से अस्पृष्ट थे)।

९– षप्रट्राभृत आदि संग्रह भावप्राभृत पृष्ठ ३०३ श्री पद्मनन्दि कुन्दकुन्दाचार्यवक्रग्रीवा–चार्यैलाचार्य–गृद्धपिच्छाचार्यनामपंचक विराजितेन श्री सीमंधर स्वामी सम्यग्बोधसंबोधितभव्यजनेन श्री जिनचन्द्र सूरि भट्टारक पट्टाभरण भूतेन.....

यह लेख संस्कृत टीका में दर्शनपाहुड़, चारित्रपाहुड़, सूत्र प्रा०, बोध पा०, मोक्ष प्रा० में है। पृष्ठ ३७९ में स्पष्ट है – इति श्री पद्मनन्दि कुन्दकुन्दाचार्यवक्रग्रीवाचार्यैलाचार्य–गृद्धपिच्छाचार्य नाम पंचक विराजितेन चतुरंगुलाकाशगमनार्द्धिना पूर्वविदेह पुण्डरीकिणी नगर बंदितसीमंधरापरनाम स्वयंप्रभ जिनेन तत् श्रुतज्ञान संबोधित भरतवर्ष भव्यजीवेन.....

१०– मद्रास व मैसूर प्रान्त के प्राचीन जैन स्मारक नामक ग्रन्थ में पृष्ठ ३ (३१८) में देखो – नगर तालुका हुमच (६९) नं० ३५ लेख, पृष्ठ ३१८ आचार्य की वंशाल लिखी है, उसी में श्री कुन्दकुन्दाचार्य भूमि से चार अंगुल ऊपर चलते थे, ऐसा लिखा है।

११– पृष्ठ २६३–२६४ जैनाचार्यों की सूची लेखों में – १८ शिलालेख हैं, उनमें सबसे पुराना नं० ६२ का लेख है। यह कट्टले वस्ति (मन्दिर) के स्तम्भ पर है, उसी में बंशावलादि है। पृष्ठ २६६ में इस लेख की नकल में लिखा है कि श्री कुन्दकुन्दाचार्य वायु द्वारा गमन कर सकते थे और यही बात पृष्ठ नं० ६४, ६६, ६७, २५४ और ३६१ में भी है। ३६१ में है कि वे भूमि से ४ अंगुल ऊँचे चलते थे, जो अलग–अलग गाँव के शिलालेख से ही उद्धृत यह प्रतिलेख हैं।

१२– तालुका चिकनयकनहल्ली नं० २१ ग्राम हेग्गरे में एक मन्दिर के पाषाण पर लेख है, उसी में श्री वर्द्धमानस्वामी के शासन में प्रसिद्ध श्री कुन्दकुन्दाचार्य प्रशस्ति लेख है कि वे चार अंगुल भूमि से फपर चलते थे।

श्लोक :–

स्वस्ति श्री वर्धमानाय वर्धमानस्य शासने।
श्री कुंदकुंदनामाभूत चतुरंगुल चारणे।।।

जैन शिलालेख संग्रह भाग २ में अनेक शिलालेख हैं, उसी में श्री कुन्दकुन्दाचार्य के चारण ऋद्धि (आकाशगामित्व) का उल्लेख है।

१३- कुन्दाद्रि-कुन्दगिरी, (पता-साउथकन्नड दक्षिण, जिला शीमोगा) से आगे तीर्थल्ली और आगमबे के बीच में गूढकेरी नामक बस का स्टैण्ड है, वहाँ की पक्की सड़क छोड़कर चार मील दखिण की ओर कच्चा रास्ता है, वहाँ प्राचीन कुन्दगिरी नामक महामनोज्ञ पहाड़ है, ऊपर मोटरकार द्वारा जानेयोग्य ३/४ रास्ता है। बाद पगडण्डी है, पीछे डाक बंगला है और ऊपर सुन्दर गहरा तालाब है, जो सदा स्वच्छ पथ्य पानी से भरा रहता है। लोगों में मान्यता है कि इस पानी में रोग नष्ट कर देने का गुण है और वहाँ बहुत प्राचीन मानस्तम्भ, मन्दिर, जिनप्रतिमाएँ, धर्मशालाएँ तथा भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य की बड़ी चरणपादुका हैं। नीचे कन्नड़ में लेख है, उसमें कुन्दकुन्दाचार्य की ही यह चरणपादुका है, ऐसा स्पष्ट उल्लेख है और जिनमन्दिर के द्वार के पास बड़ी शिला खड़ी है, उसमें बहुत प्राचीन-पुरानी कन्नड़ लिपि में ९वीं सदी का महाराजा तैलप द्वारा इस क्षेत्र में जीर्णोद्धार आदि और श्री कुन्दकुन्दाचार्य विदेहक्षेत्र में गये थे आदि प्रशस्ति उस शिलालेख में है। इस भूमि को श्री कुन्दकुन्दाचार्य की तपोभूमि माना जाता है। आसपास के कई गाँवों के नाम के आगे 'कुन्द' शब्द आते हैं। कुन्दकेरा, कुन्दबेटा, कुन्दाद्रि उसमें कुन्दपुरा तो बड़ा बन्दरगाह है।

१४- मद्रास से८० मील दूर वंदेवास के पास पौन्नूर हिल भी बहुत प्राचीन स्थान है। वहाँ भी श्री कुन्दकुन्दाचार्य की चरणपादुका हैं। और वह आपकी तपोभूमि थी। यह बात भी आसपास के गाँवों में बहुत प्रसिद्ध है कि आचार्यदेव यहाँ से आकाशगामिनी विद्या द्वारा विदेहक्षेत्र में गये थे। वापिस आकर शास्त्र लिखे थे, वहाँ पास के एक विष्णु मठ के महन्त के पास भी इस बात का प्रमाण है। ●

सम्यक्त्वी हंस

आत्मा के चैतन्य-सरोवर के शान्त जल में केलि करनेवाले सम्यक्त्वी हंस को चैतन्य के शान्तरस के अतिरिक्त बाह्य में पुण्य-पाप की वृत्ति अथवा इन्द्रिय विषयों की रुचि उड़ गयी है। चैतन्य के शान्त आनन्द-रस का ऐसा निर्णय (वेदन सहित) हो गया है कि अन्य किसी रस के वेदन में उसे स्वप्न में भी सुख का अनुभव नहीं होता। ऐसा सम्यक्त्वी-हंस निरन्तर शान्तरस के सरोवर में केलि करता है। (प्रवचन से)

क्या निमित्त के बिना कार्य होता है?

नैमित्तिक कार्य और निमित्त – यह दोनों स्वतन्त्र हैं, – ऐसी स्वतन्त्रता की बात चल रही हो, उस समय निमित्ताधीन दृष्टिवाले जीव कहते हैं कि 'क्या निमित्त के बिना कार्य होता है।फ

इस सम्बन्ध में रात्रिचर्चा में की गई स्पष्टता निम्नानुसार है –

(१) प्रथम तो जब यहाँ निमित्त का काल है, उसी समय सामनेवाले नैमित्तिक पदार्थ में भी उसकी अवस्था होती है। निमित्त के काल के समय क्या नैमित्तिक का काल नहीं है? प्रतिसमय जगत के सभी पदार्थों में नैमित्तिक पर्याय हो ही रही है; इसलिए 'निमित्त बिना नहीं हो सकता' – यह प्रश्न ही उसमें नहीं रहता। ऐसा एक भी समय खाली नहीं है कि जगत के पदार्थों में अपनी-अपनी नैमित्तिकपर्याय न होती हो।

(२) यहाँ नैमित्तिक अवस्था होना हो और सामने निमित्त न हो – ऐसा तो कभी होता ही नहीं। जब नैमित्तिक कार्य होता है, तब निमित्तपने की योग्यतावाले पदार्थ जगत में होते ही हैं। निमित्त किस समय नहीं है?

(३) 'यह निमित्त है' – ऐसा जो कहा जाता है, वही ऐसा सूचित करता है कि उस समय सामने नैमित्तिक कार्य का अस्तित्व है। यदि नैमित्तिक कार्य है तो परवस्तु को उसका निमित्त कहा जाता है। नैमित्तिक कार्य हुए बिना तो परवस्तु को निमित्त भी नहीं कहा जाता; क्योंकि नैमित्तिक के बिना निमित्त किसका? इसलिए 'निमित्त' ही तब कहलाया कि जब नैमित्तिक कार्य है। नैमित्तिक कार्य होने से पूर्व दूसरी वस्तु को निमित्त कहा ही नहीं जाता; और जब निमित्त कहा जाता है, तब तो वहाँ नैमित्तिककार्य विद्यमान है, इसलिए 'निमित्त के बिना नहीं हो सकता' – इस बात को अवकाश ही नहीं रहता।

***

* जगत के प्रत्येक पदार्थ में प्रति-समय अपनी नैमित्तिक पर्याय हो ही रही है।

* नैमित्तिक पर्याय के समय सामने निमित्त होता ही है।

* जब यहाँ निमित्त की पर्याय होने का समय है, तब सामनेवाली वस्तु में भी अपनी नैमित्तिक पर्याय होने का समय है।

* नैमित्तिक कार्य हुए बिना दूसरी वस्तु को निमित्त नहीं कहा जाता।

* नैमित्तिक कार्य हुआ है, तभी परवस्तु को निमित्त कहा जाता है – इस प्रकार नैमित्तिक कार्य की और निमित्त की स्वतन्त्रता है।

यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि शास्त्रों में जहाँ ऐसी दलील दी जाती है कि – 'निमित्त के बिना कार्य नहीं होता' वहाँ वह उस जीव को उचित निमित्त का ज्ञान समझाने के लिए है, जो छह द्रव्यों को मानता ही नहीं – आत्मा के सिवा परवस्तु का अस्तित्व ही स्वीकार नहीं करता। वह दलील निमित्त का अस्तित्व सिद्ध करने के लिए है। किन्तु जो जगत में छह द्रव्यों को स्वीकार करते हैं; नैमित्तिक और परनिमित्त दोनों का अस्तित्व स्वीकार करते हैं, स्वतन्त्रता मानते हैं, उनके सामने भी यह दलील करना कि – 'क्या निमित्त के बिना कार्य होता है?' तो वह तो मात्र निमित्ताधीन दृष्टि का आग्रह है; अत: उन्हें स्वतन्त्रता की बात नहीं रुचती। ●

सोनगढ़ की आध्यात्मिक झाँकियाँ –

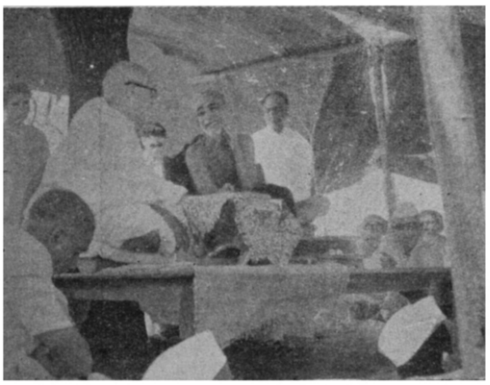

श्री परम पूज्य मुनि समन्तभद्रजी महाराज (न्यायतीर्थ बी.ए.) स्वामीजी के साथ तत्त्वचर्चा में हर्ष विभोर हो रहे हैं।

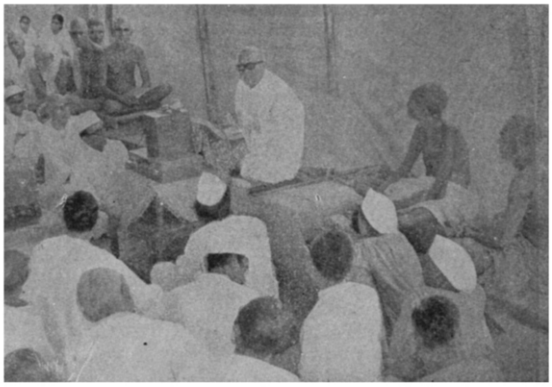

श्री पूज्य मुनि आदिसागरजी, पूज्य क्षु० चिदानन्दजी के सानिध्य में स्वामीजी का प्रवचन

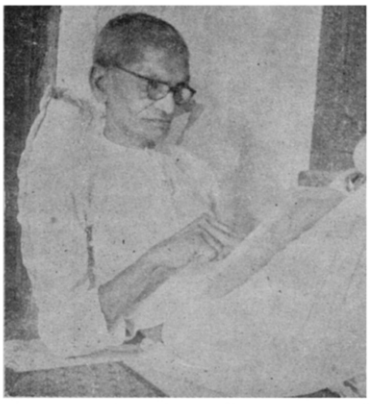

सेठ प्रेमचन्द मगनलाल जी

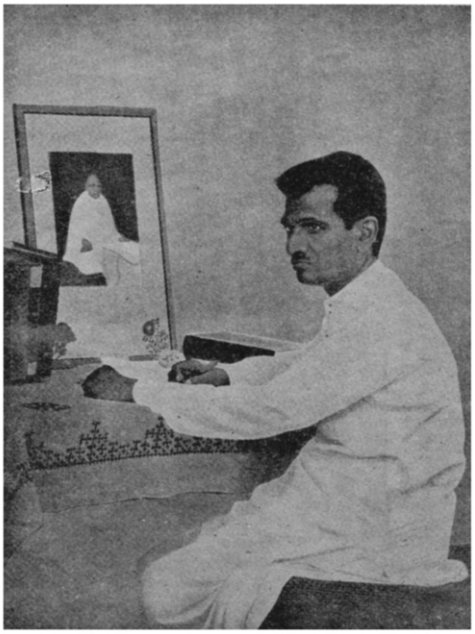

श्री पण्डित हिम्मतलालजी शाह, B.Sc. सोनगढ़

दो महान सन्तों का मंगल मिलन

तीर्थराज सम्मेदशिखरजी में श्रद्धेय कानजीस्वामी और श्री पूज्य गणेशप्रसादजी वर्णी

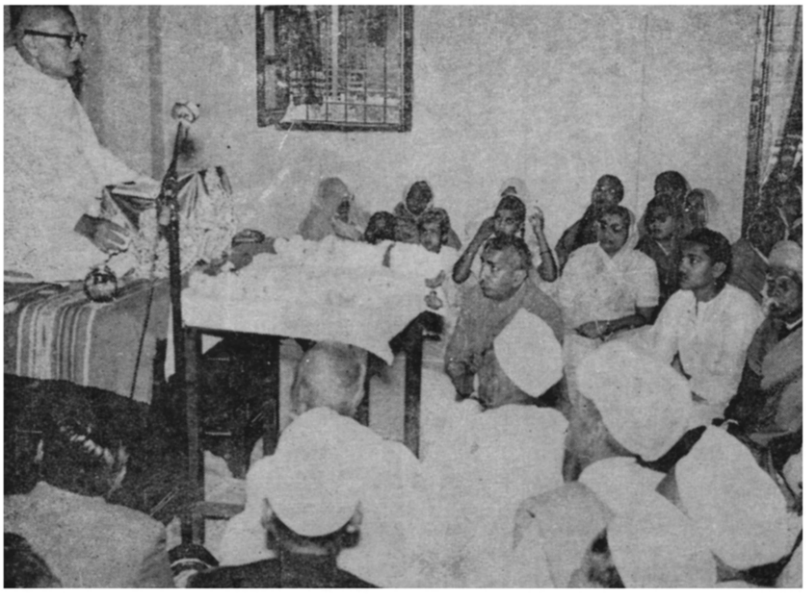

डालमियानगर में श्री साहू शान्तिप्रसादजी आदि श्रोतागण स्वामीजी का प्रवचन सुन रहे हैं।

श्रीकानजीस्वामी की अनेकान्त वाणी

संहितासूरि श्री पण्डित नाथूलाल शास्त्री, इन्दौर

इस अशांतिपूर्ण भौतिक वातावरण में आत्मधर्म एवं सदाचरण का प्रसार कर जिनशासन की भी महान प्रभावना करनेवाले और अपने पुण्यशाली तेजस्वी व्यक्तित्व से अगणित व्यक्तियों के जीवन को बदल देनेवाले महान आध्यात्मिक सन्त आत्मार्थी सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी इस युग की अनुपम विभूति हैं।

आप बालब्रह्मचारी हैं। अपनी २४ वर्ष की उम्र से ही संसार से विरक्त रहकर शास्त्राभ्यास और सत्यान्वेषण में लगे रहे हैं। आज से ४० वर्ष पूर्व आपके हाथ में श्री दिगम्बर जैनाचार्य कुन्दकुन्दस्वामी का 'समयसार' ग्रन्थ आया। उस ग्रन्थ को तथा श्री कुन्दकुन्दस्वामी के अन्य ग्रन्थों का स्वाध्याय मननकर आपके ज्ञाननेत्र खुल गये और उनमें अमृत का सरोवर झलकता देख आपके आनन्द का पार नहीं रहा। श्री कुन्दकुन्दस्वामी ने विदेहक्षेत्र में जाकर आठ दिन तक साक्षात् श्री सीमन्धर भगवान की दिव्यवाणी श्रवण की थी जो श्रवणबेलगोला के शिलालेख व आचार्य देवसेन के 'दर्शनसार' आदि से स्पष्ट है। इसलिए आचार्य कुन्दकुनद की रचना का सीधा सम्बन्ध तीर्थंकर प्रभु के दिव्य उपदेश से होने के कारण श्रीकानजीस्वामी के हृदय में वीतराग सर्वज्ञ कथित सन्मार्ग के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा का होना स्वाभाविक है। यही कारण है कि जो बार-बार श्री कुन्दकुन्दस्वामी की रचनाओं का प्रवचन कर मुमुक्षु श्रोताओं को सम्बोधित करते रहते हैं।

श्री कानजीस्वामी समस्त उपलब्ध प्राचीन अंग व पूर्व सम्बन्धी श्वेताम्बर दिगम्बर शास्त्रों का अध्ययन कर चुके हैं। श्री आचार्य समन्तभद्रस्वामी, पूज्यपादस्वामी, अकलंकस्वामी, वीरसेनस्वामी, जिनसेनस्वामी, अमृतचन्द्राचार्य, नेमिचन्द्राचार्य आदि के ग्रन्थों का भलीभाँति स्वाध्याय करने से उनका सब विषय स्मृति में है। आपकी स्मरणशक्ति भी अपूर्व है।

जो लोग यह कहते हैं कि 'श्री स्वामीजी आचार्य कुन्दकुन्द की रचना का ही क्यों स्वाध्याय व प्रवचन बार-बार करते हैं? अनेकान्त को समझने के लिए उन्हें समन्तभद्राचार्य आदि की रचनाओं का भी प्रवचन करना चाहिए' यह कहनेवाले बन्धु जिनवाणी के प्रति अपनी अश्रद्धा प्रकट करते हैं। क्या कुन्दकुन्दस्वामी की रचना में एकान्त भरा है - वह एकान्त का प्रतिपादन करती है? जिन बन्धुओं ने समयसार पढ़ा है, उसमें उन्होंने देखा होगा कि शुद्धात्मा का कथन करते हुए बन्ध का भी विशद विवेचन किया गया है। व्यवहार और निश्चय का सापेक्षता और

यथास्थल प्रयोजनीयता बतलाई है। उसमें निमित्त और उपादान आदि सभी विषयों का स्पष्टीकरण है। सापेक्षदृष्टि, जो अनेकान्त का प्राण है, रखकर ही ग्रन्थ का माहात्म्य अवगत किया जा सकता है।

श्री कानजीस्वामी के जितने भी प्रवचन हुए हैं, होते हैं और उनका प्रकाशन हुआ है, माध्यस्थ्यभाव से देखने पर सबमें अविरोधिता ही मिलती है। वक्ता के अभिप्राय और प्रकरणगत संगति को न देखकर विरोध की दृष्टि से कुछ भी कहा जा सकता है।

आज तक जो मर्म की बातें (अध्यात्मशास्त्रों का हृद्य) विद्वानों तक को नहीं मालूम हो पाई थीं, वे स्वामीजी के प्रवचनों की गहराई पर ध्यान देने से ज्ञात हुईं। पहले इस प्रकार की चर्चा का अवसर ही नहीं मिल सका था। जैनाचार्यों की वाणी के मर्म को हमारे प्राचीन पण्डितों ने अवश्य समझा था। आज भी पण्डितप्रवर टोडरमलजी, भगवतीदासजी आदि को कुछ लोग एकान्ती कहते हैं, इसका यही कारण है कि हम लोग ग्रन्थों के रहस्य को बारीकी से नहीं पढ़ते।

मैं लगभग १५ वर्ष से सोनगढ़ के सम्पर्क में हूँ। प्रारम्भ में मुझे भी स्वामीजी के प्रवचनों में विरोध का आभास हुआ। इसके फलस्वरूप मैं भी वाद-विवाद में उलझा, परन्तु धीरे-धीरे जब विचार किया और शास्त्रावलोकन किया तो वास्तविकता का ज्ञान हुआ। वर्तमान में अध्यात्म की ओर इस प्रकार का जनता का झुकाव और स्वाध्याय के प्रचार का श्रेय स्वामीजी को है।

कतिपय लोगों का यह आक्षेप है कि 'समयसार पढ़नेवाले व्यवहार चारित्र से भ्रष्ट हो जाते हैं। अत: गृहस्थों को समयसार पढ़ना ही नहीं चाहिए' यह स्वयं की कमजोरी न मानकर पर को दोष देना है जो जैनधर्म की मान्यता के सर्वथा विरुद्ध है। जिनके संस्कार अच्छे होते हैं, वे समयसार आदि कोई ग्रन्थ पढ़कर या उपदेश सुनकर अच्छे ही बनते हैं और जिनके संस्कार अच्छे नहीं होते वे समयसार या कोई ग्रन्थ पढ़कर या उपदेश सुनकर भी भ्रष्ट हो जाते हैं। बिना श्रद्धा के आचरण में दृढ़ता नहीं आती। अत: श्रद्धा के लिए 'समयसार' एक अपूर्व ग्रन्थ है, जिसका प्रत्येक गृहस्थ को पढ़ना अनिवार्य है। सम्यग्दर्शन का जैसा समयसार में विवेचन किया है, उतना स्पष्ट अन्यत्र नहीं मिलेगा। कतिपय विद्वान तो अभी सामान्य विशेषात्मकता के ही चक्कर में हैं। समयसार की १४-१५वीं गाथा में और उनकी टीका में अविशेष आदि पदों की व्याख्या और उसके रहस्य को जाने बिना सम्यग्दर्शन का स्वरूप ही समझ में नहीं आ सकता। बिना सम्यक्त्व के ज्ञान और चारित्र का जैसा चाहिए वैसा महत्व नहीं।

समयसार को पढ़कर भी सोनगढ़ के भक्त हजारों भाईयों व बहनों के आचरण में जो दृढ़ता पाई जाती है, वैसी हमारे अनेक व्रतियों तक में नहीं पाई जाती। खानपान की सात्विकता और शीलव्रत तथा नैतिकता वहाँ की अनुकरणीय है। हमारे प्रान्तों में तो बाजार का भोजन व रात्रिभोजन धीरे-धीरे चल निकला है, पर उधर रात्रि को पानी तक नहीं पिया जाता व आलू आदि जमीकन्द का नाम तक नहीं। हम बाहर से जनेऊधारी व प्रतिमाधारी बनते हैं, पर भीतर हमारे विपरीतता भरी हुई है। अपने कतिपय साधुओं के समीप जाकर हम कुछ शान्ति और निराकुलता का अनुभव करना चाहते हैं, पर वहाँ से निराशा और क्षोभ को लेकर आते हैं, जबकि सोनगढ़ के वातावरण में शान्ति का अनुभव होता है।

मैंने वींछिया, लाटी, पोरबन्दर, सोनगढ़, मोरबी, बाँकानेर, लींवड़ी और बम्बई में जिनबिम्ब प्रतिष्ठा कराई। सौराष्ट्र में पच्चीस-तीस जिनमिन्दर निर्मापित हुए, उन सबमें प्रतिदिन पूजा और स्वाध्याय होता है। उस ओर स्वाध्याय को सामूहिक प्रवृत्ति है। मन्दिर में भक्ति का भी दृश्य अपूर्व रहता है, सोनगढ़ में तो प्रतिदिन मन्दिर में एक घण्टा भक्ति में स्वामीजी स्वयं सम्मिलित रहते हैं। उनके समीप जाने पर तत्त्वचर्चा के सिवा दूसरी कोई घर गृहस्थी या खानपान की चर्चा नहीं होती।

ब्रह्मचर्य का महान आदर्श, जो इस वातावरण में आश्चर्यकारक हैं, सोनगढ़ के श्राविकाश्रम में देखने को मिलेगा, जहाँ बड़े-बड़े सम्पन्न घरों की बालब्रह्मचारिणी बहनें पूज्य बहनश्री बहनजी के संरक्षण में पवित्र जीवन व्यतीत कर रही हैं। उनका शास्त्रज्ञान भी बढ़ा चढ़ा है। पंचाध्यायी आदि ग्रन्थ उन्हें शंका समाधान सहित कण्ठस्थ हैं। वे सब अपने हाथ से पीसकर शुद्ध मर्यादित भोजन करती हैं और व्रतोपवास में सदा सावधान रहती हैं। पूजा पाठ मण्डल विधान, भक्ति आदि में इनका प्रमुख हाथ रहता है, जिनके कारण अन्य सब लोग अनुशासित बने रहते हैं। उस ओर का वात्सल्य, सामूहिक भोजन, दान आदि की प्रवृत्ति सराहनीय है।

जिनबिम्ब प्रतिष्ठाओं में सौराष्ट्र में जो भगवान के माता-पिता बनते हैं, वे आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण करते हैं तथा लौकान्तिक देव ब्रह्मचारी व देवियाँ ब्रह्मचिारणी कन्यायें रहती हैं।

कुछ लोगों का यह भी कहना है कि 'श्री स्वामीजी निश्चय का उपदेश देते हैं, पर व्यवहार का कथन नहीं करते। इससे ज्ञात होता है कि वे व्यवहार नहीं मानते' यह मानना भ्रमपूर्ण है, क्योंकि पूजा, दान इत्यादि व्यवहार का उपदेश तो सभी देते हैं। स्वामीजी ने भी वर्षों तक खूब दिया है, पर दिगम्बर जैन शास्त्रों की अभूतपूर्व बात, जो उन्हें समयसारादि से मिली, कभी किसी ने इस रूप

में नहीं बताई और इसके बिना जाने केवल क्रियाकाण्ड अजागलस्तन के समान था। बिना एक के बिन्दु समान निरर्थक है। अत: उस यथार्थ का प्रकट करना आवश्यक समझ कर बार-बार अपने श्रोताओं का ध्यान आकर्षित करते हैं। वे अपने प्रभावक प्रवचन में जड़ कर्म एवं मोह, राग, द्वेष आदि से पृथक् नित्य, शुद्ध चैतन्य स्वरूप आत्मा का स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत कर आत्मदर्शन की ओर प्रेरणा प्रदान करते हैं। प्रत्येक वक्ता की कुछ न कुछ विशेषता रहा करती है। जिन्हें संसार दु:ख से छूटने व शाश्वत् सुख का माँग जानना हो, वे स्वामीजी की वाणी का रसास्वादन करें। वहाँ तो 'खोजी जीवे, वादी मरे' की उक्ति चरितार्थ होती है।

पद्मनन्दि पंचविंशतिका के दान आदि प्रकरण के विवेचन में श्रावकधर्म का स्वामीजी बड़ा सुन्दर विवेचन करते हैं, जहाँ व्यवहार ही व्यवहार है।

सोनगढ़ से प्रकाशित समयसार (हिन्दी) की गाथा १२वीं की टीका, पृष्ठ २७ में 'जिन भक्ति, जिनबिम्ब दर्शन, अणुव्रत, महाव्रत ग्रहण आदि व्यवहार का उपदेश अंगीकार करना प्रयोजनभूत बात' बताकर यह भी स्पष्ट लिखा है कि 'यदि कोई व्यवहार को सर्वथा असत्यार्थ जान कर छोड़ दे तो वह शुभोपयोग रूप व्यवहार को छोड़ देगा और वह भ्रष्ट होकर नरक निगोद को प्राप्त होकर संसार में ही भ्रमण करेगा।' इस प्रकार स्याद्वाद मत का वहाँ स्पष्ट कथन है।

श्री कानजीस्वामी हमारी अध्यात्म परम्परा को पुनरुज्जीवित करनेवाले इस युग के महान आध्यात्मिक सन्त हैं। उनकी ७३वीं वर्षगाँठ पर चिरायुकामना करते हुए अध्यात्म प्रेमियों से निवेदन है कि वे श्रद्धेय स्वामीजी की शास्त्र अविरुद्ध अनेकान्त वाणी और पवित्र व्यक्तित्व का माध्यस्थभाव से अधिकाधिक लाभ उठाकर जीवन को सफल बनावें। ●

भावना से भवन

जिसे जिसकी रुचि हो, वह बारम्बार उसकी भावना भाता है और भावनानुसार भवन होता है।

भावना से भवन होता है; जैसी भावना वैसा भवन, अर्थात् बारम्बार शुद्ध आत्मस्वभाव की भावना भाने से वैसा भवन (परिणमन) हो जाता है, इसलिए जब तक आत्मा की यथार्थ श्रद्धा, ज्ञान और अनुभव न हो, तब तक सत्समागम से बारम्बार प्रीतिपूर्वक उसका श्रवण-मनन और भावना करते ही रहना चाहिए। उस भावना से ही भव का नाश होता है।

एक संस्मरण

महत्वपूर्ण घटना

(नगर निवासियों द्वारा लिखित)

जब गुरुदेव ससंघ तीर्थयात्रा करते हुए जावाल पहुँचे थे, तब एक ऐसी घटना घटी जिसके श्रवण करने से गुरुदेव का समताभाव और उसका महत्वपूर्ण प्रभाव देखकर दुनिया का मस्तक श्रद्धा से नत हुए बिना नहीं रह सकेगा। इस घटना में निर्विकारी आत्मा का विशुद्ध प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इस समताभाव का प्रभाव पुराण और ग्रन्थों में पढ़ते आये हैं किन्तु इस युग में एक सन्त के समताभाव का प्रभाव पौराणिक युग की स्मृति को प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर कराता है। घटना स्वयं नगरनिवासियों की कलम से लिखी गई है।

जावाल में तारीख २३-४-५७ को आध्यात्मिक उपदेशक श्री कानजीस्वामी को श्री ऋषभचन्दजी जावालवाले ने वहाँ पधारने के लिये आमन्त्रित किया था। आपका संघ श्री सम्मेदशिखरजी आदि तीर्थों में घूमता हुआ यहाँ जावाल में तारीख २३-४-५७ को बड़े विनय के साथ पधारने के लिये आमन्त्रित किया गया। आपके भव्य स्वागतहेतु श्री ऋषभचन्दजी ने भव्य समारोह किया। मण्डप रचना की छटा अद्वितीय थी। उसमें टयूब लाइट स्पीकर आदि का प्रबन्ध किया गया। स्वामीजी के सुस्वागत हेतु प्रात: ७.०० बजे जुलूस निकाला गया। जिसमें गाँव के समस्त जाति के लोग सम्मिलित थे। जुलूस में बैंड, शामयाना, ध्वज आदि का सम्पूर्ण समावेश किया गया। जुलूस बाजार में होता हुआ गलियों में घूमकर ज्यों ही मण्डप के समीप प्रवचन करने हेतु आया, त्यों ही ५-७ विरोधी लोगों ने अशान्ति फैलाना शुरु किया। स्वामीजी के विरुद्ध नारे लगाये गये। यह देखकर स्वामीजी प्रवचन न देकर सीधे ऋषभचन्दजी के घर चले गये। और लोगों को शान्तिपूर्वक रहने के लिये उपदेश दिया।

अन्य समस्त जाति के लोगों ने आपके प्रवचन देने हेतु अति आग्रह किया। और कहा कि हम तमाम विरोधियों को यहाँ से भगा देते हैं। परन्तु स्वामीजी ने सभी नागरिकों को शान्ति ग्रहण करने का उपदेश दिया। आपने फरमाया कि ऐसा करने से गाँव में अशान्ति एवं वैमनस्य फैल जायेगा। आप सभी मेरे लिये बराबर है। मैं किसी की आत्मा को दु:ख देकर प्रवचन नहीं करना चाहता।

इसके पश्चात् दो बजे स्वामीजी ने यहाँ का कार्यक्रम अधूरा छोड़कर भोजनादि से निवृत होकर माउन्ट आबू को प्रस्थान किया।

आपके प्रस्थान के बाद यहाँ के नागरिकों में एक आत्मयोगी त्यागी महात्मा के जाने से बड़ी ग्लानि पैदा हुई। रात्रि को ९ बजे गाँव के सभी लोगों ने एकत्रित होकर यह निर्णय किया कि गुरुदेव श्री कानजीस्वामी को पुन: जावाल में लाया जाये और उनके अमृतरूपी वचनों का पान किया जाये।

समस्त ३६ जाति के लोगों ने २ बस और ४ मोटरकार मँगवाईं और सबेरे ७.०० बजे यहाँ से १००

मनुष्यों ने प्रस्थान किया। जिसमें गाँव के ठाकुर भी साथ में थे, सबने माउन्ट आबू पहुँचकर सन्त गुरुदेवश्री कानजीस्वामी से अनुनय विनय की एवं पुन: जावाल पधारकर जनता की अशान्ति दूर करने एवं जिज्ञासा को तृप्त करने हेतु प्रार्थना की। लोगों की भावकुता एवं असीम प्रेम देखकर गुरुदेव ने जनता की प्रार्थना स्वीकृत करके कृतार्थ किया और अपना आगे का प्रोग्राम स्थगित रखा।

केवल एक रात्रि में समस्त नागरिकों के संगठन से मण्डप आदि समस्त कार्यक्रम पुन: निर्माण किया गया। २४-४-५७ को पुन: आपका भव्य स्वागत जावाल की तमाम जाति के लोगों द्वारा सम्पन्न हुआ। प्रात: ७.०० बजे जब आपकी मोटरगाड़ी आबूजी से गुजरी, तब विद्यार्थियों ने आपका हार्दिक स्वागत किया। उसके पश्चात् २५ शामयानों, ध्वज, निशान, एवं गाँव के करीब ५,००० व्यक्तियों द्वारा आपका स्वागत किया गया। बैण्ड, ढोल, नगाड़ों की ध्वनि आकाशमण्डल में गूँज रही थ। आपका जुलूस सारे गाँव में निकाला गया और शान्तिपूर्वक सम्पन्न हुआ। फिर आप मण्डप में पधारें। लोगों की जयजयकार से सारा मण्डप गूँज गया। आपने जनता को आत्मधर्म के विषय में निम्न उपदेश दिये:

(१) आत्मधर्म प्राप्ति की प्रथम सीढ़ी कौन-सी है?

(२) सुख का सच्चा साधन क्या है?

(३) पूर्ण एवं सच्चा ब्रह्मचर्य कौन पालन कर सकता है?

(४) आत्मा को पूर्ण शान्ति कैसे मिल सकती है?

(५) गृहस्थ धर्म पालन का उपदेश।

सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के अमृततुल्य मधुरवाणी को सुनकर समस्त श्रोताओं का मन प्रफुल्लित हो गया। सबने एक स्वर से आपके प्रवचन की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। आपके विरोधियों ने भी आपका प्रवचन सुनकर दिल का भेद निकाल दिया और वे भी आपके उपदेशात्मक वचनों के प्रति श्रद्धावान हो गये। अन्त में स्थानीय ठाकुर साहब श्री सुमेरसिंहजी ने श्री सत्गुरु के चरणकमलों में पत्र पुष्प के रूप में २५ रुपये समर्पित कर अपनी आत्मा को कृतकृत्य माना एवं स्वामीजी के साथ में आये हुए यात्रियों को स्थानीय एवं अन्य प्रतिष्ठित व्यक्तियों द्वारा आगमन स्वरूप स्वागत में एक-एक रुपये के साथ एक-एक श्रीफल भेंटरूप में दिया गया।

अन्त में स्वामीजी को एक घण्टा फिर प्रवचन देने हेतु जनता ने सानुनय आग्रह किया परन्तु स्वामीजी ने समयाभाव से स्वीकार करना उचित नहीं समझा।

तत्पश्चात् दोपहर को एक बजे जावाल से स्थानीय एवं अन्य सज्जनों के जयघोष के साथ आपका मंगलमय प्रस्थान हुआ।

संवत् २०१४ वैशाख शुक्ला १२ शुक्रवार तारीख २३-४-५७ छत्तीस कौम के नीचे माफिक दस्तखत:-

ठा० सुमेरसिंहजी, श्रीवनचन्द चवनीलाल, ठा० जोरावरसिंह, ठा० उमेदसिंह (आदि) ५४ व्यक्तियों के दस्तखत। ●

शत–शत प्राप्त अभिनन्दन पत्रों में एक महत्वपूर्ण–

ससंघ तीर्थयात्रा में देहली प्रवास के सुअवसर पर प्रदत्त
आत्मार्थी, आजन्मब्रह्मचारी, अध्यात्म–रसिक, आत्मधर्म–पथिक, अध्यात्म प्रसारक
श्री कानजी स्वामी की
सेवा में

अभिनन्दन–पत्र

आत्मार्थिन! आत्म–धर्म के परम आराधक और प्रसारक होते हुए भी आपने सम्यग्दर्शन की विशुद्धि के साधन–भूत सिद्धक्षेत्रों की वन्दनार्थ एक विशाल संघ के साथ यात्रा प्रारम्भ की और परम तीर्थाधिराज सम्मेदशिखर, पावापुर, राजगृह, चम्पापुर आदि अनेकों तीर्थस्थानों की वन्दना करते हुए इस दिल्ली में पदार्पण किया है, जिसे स्वतन्त्र भारत की राजधानी होने का गौरव प्राप्त है। अपनी खोज–शोध के लिये प्रख्यात, प्रसिद्ध पुरातत्वविद्, साहित्य तपस्वी, ब्र० आ० जुगलकिशोरजी मुख्तार, 'युगवीर' द्वारा संस्थापित इस वीरसेवामन्दिर में ठहरकर आपने हम लोगों पर जो अनुग्रह किया है, वह हम सबके लिये परम हर्ष की बात है।

आजन्म ब्रह्मचारिन्! भगवान नेमिनाथ के पादपद्म से पवित्र हुए और वीरवाणी के सुमुद्धारक श्री धरसेनाचार्य की तपोभूमि होने के कारण अपने 'सुराष्ट्र' नाम को सार्थक करनेवाले सौराष्ट्र देश में आपने जन्म लिया। गृहस्थाश्रम में सर्वसाधन सम्पन्न होते हुए भी आपने बाल्यकाल से ही ब्रह्मचर्य को अंगीकार किया, और अत्यन्त अल्पवय में संसार से उदास होकर साधु दीक्षा ग्रहण की। पूरे २१ वर्ष तक स्थानकवासी जैन सम्प्रदाय में रहकर श्वेताम्बर आगम–सूत्रों – ग्रन्थों का विशिष्ट अभ्यास किया, और अपने सम्प्रदाय के एक प्रभावक वक्ता एवं तपस्वी बने। उस समय अनेकों राजे–महाराजे और सहस्रों जैन आपके परम भक्त थे, तथा आपको 'प्रभु' कहकर वन्दना–पूर्वक साष्टांग नमस्कार करते थे।

अध्यात्म–रसिक! श्वेताम्बर जैन आगम–सूत्रों के पूर्ण अवगाहन करने पर भी आपकी आध्यात्मरस पिपासा शान्त न हो सकी। सौभाग्य से दो सहस्र वर्ष पूर्व आचार्य कुन्दकुन्द निर्मित परम अमृतमय समयसार आपके हस्तगत हुआ, आपने अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से उसका स्वाध्याय प्रारम्भ किया। स्वाध्याय करते ही आपको यथार्थ दृष्टि प्राप्त हुई और विवेक जागृत हुआ। आपने अनुभव किया कि आज तक मैंने शान्ति–प्राप्ति के लिये तुष–खण्डन में ही अपने जीवन का

बहुभाग बिताया है। उस समय आपके हृदय में अन्तर्द्वन्द मच गया। एक ओर आपके सामने अपने सहस्रों भक्तों द्वारा उपलब्ध पूजा-प्रतिष्ठा आदि का मोह था, और दूसरी ओर सत्य का आकर्षण। इन दोनों में से अपनी पूजा-प्रतिष्ठा के व्यामोह को ठुकराकर आपने दिगम्बर धर्म को स्वीकार किया, और महान् साहस और दृढ़ता के साथ विक्रम संवत् १९९१ में चैत्र 'शुक्ला त्रयोदशी को वीर-जयन्ती के दिन' वीरता-पूर्वक अपने वेष-परित्याग की घोषणा कर दी। घोषणा सुनते ही सम्प्रदाय में खलबली मच गई और नाना प्रकार के भय दिखाये गये। परन्तु आप अपने निश्चय पर सुमेरु के समान अटल और अचल रहे। तब से आप अपने आपको आत्मार्थी कहकर आचार्य कुन्दकुन्द के अतिगहन आध्यात्मिक ग्रन्थों की गूढ़तम ग्रन्थियों के सूक्ष्मतम रहस्य का उद्घाटन कर कुन्दावदात, अमृतचन्द्र-प्रस्यूत, पीयूष का स्वयं पान करते हुए अन्य सहस्रों अध्यात्म-रस-पिपासुओं को भी उसका पान करा रहे हैं और अत्यन्त सरल शब्दों में अध्यात्म तत्त्व का प्रतिपादन कर रहे हैं।

आत्म-धर्म-पथिक! जिस सौराष्ट्र में दिगम्बर जैनधर्म का अभाव-सा हो रहा था, वहाँ आपके प्रवचनों को श्रवण कर सहस्रों तत्त्व-जिज्ञासुओं ने दिगम्बर जैन धर्म को धारण किया, सैकड़ों नर-नारियों और सम्पन्न घरानों के कुमार-कुमारिकाओं ने आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत अंगीकार किया। तथा जिस सौराष्ट्र में दिगम्बर जैन मन्दिर विरल ही थे, वहाँ आपकी प्रेरणा से २० दिगम्बर जैन मन्दिरों का निर्माण हो चुका है और इस प्रकार आपने धर्म की साधना और आत्मा का आराधना के साधन वर्तमान और भावी पीड़ी के लिए प्रस्तुत किए हैं।

अध्यात्मप्रसारक! कुछ शताब्दियों से जैन सम्प्रदाय के आचार-व्यवहार में जब विकार प्रविष्ट होने लगा और त्रिवर्णाचार एवं चर्चासागर जैसे ग्रन्थ प्रचार में आने लगे, तब १८वीं शताब्दी के महान विद्वान पण्डित टोडरमलजी ने उस दूषित व्यवहार से जनता के बचाव के लिये मोक्षमार्गप्रकाशक की रचनाकर जैनधर्म के शुद्ध रूप की रक्षा की। उनके पश्चात् इस बीसवीं शताब्दी में व्यवहार-मूढ़ता-जनित धर्म के विकृत स्वरूप को बतलाकर 'आत्मधर्म' के द्वारा उससे बचने के मार्ग का आप निर्देश कर रहे हैं। आपके तत्वावधान में आज तक तीन लाख पुस्तकों का प्रकाशन हुआ है, जिससे लोगों को अपनी 'मूल में भूल' ज्ञात हुई है।

अध्यात्म-संघनायक! आपने सोनगढ़ में रहकर और श्रमण-संस्कृति के प्रधान कार्य ध्यान-अध्ययन को प्रधानता देकर उसे वास्तविक अर्थ में श्रमण-गढ़ बना दिया है। आप परम

शान्ति के उपासक हैं और निन्दा-स्तुति में समवस्थ रहते हैं। आपके हृदय की शान्ति और ब्रह्मचर्य का तेज आपके मुख पर विद्यमान है। आप समय के नियमित परिपालक हैं। भगवद्भक्ति-पूजा करने की विधि, आध्यात्मिक-प्रतिपादन-शैली और समय की नियमितता ये तीन आपकी खास विशेषताएँ हैं। अध्यात्म का प्रतिपादन करते हुए भी हम आपकी प्रवृत्तियों में व्यवहार और निश्चय का अपूर्व सम्मिश्रतण देखते हैं। आपके इन सर्वगुणों का प्रभाव आपके पार्श्ववर्ती मुमुक्षुओं पर भी है। यही कारण है कि उनमें भी शान्ति-प्रियता और समय की नियमितता दृष्टिगोचर हो रही है। आपकी इन्हीं सब विशेषताओं से आकृष्ट होकर अभिनन्दन करते हुए हम लोग आनन्द-विभोर हो रहे हैं।

तारीख ७-४-५७
२१, दरियागंज,
दिल्ली

हम हैं आपके
वीर सेवा मन्दिर-सदस्य
भा०दि० जैन परिषद-सदस्य

सर्वज्ञदेव को नमस्कार हो।

सर्वज्ञदेव को नमस्कार हो।

धर्म का मूल सर्वज्ञ हैं।

मोक्षमार्ग के मूल उपदेशक श्री सर्वज्ञदेव हैं; इसलिए जिसे धर्म करना हो, उसे सर्वज्ञ को पहचानना चाहिए।

निश्चय से जैसा सर्वज्ञ भगवान का स्वभाव है, वैसा ही इस आत्मा का स्वभाव है, इसलिए सर्वज्ञ को पहिचानने से अपने आत्मा की पहिचान होती है, जो जीव सर्वज्ञ को न पहिचाने, वह अपने आत्मा को भी नहीं पहिचानता।

समस्त पदार्थों को जाननेरूप सर्वज्ञत्वशक्ति आत्मा में त्रिकाल है, किन्तु पर में कुछ फेरफार करे, ऐसी शक्ति आत्मा में कभी नहीं है। ●

पूज्य गुरुदेव का अमर सन्देश

(श्रीमती ललिता शाह, बी.ए. ऑनर्स, जामनगर)

अध्यात्मयोगी परम उपकारी पूजनीय गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का जीवन परिचय नहीं, बल्कि उनके तेजोमय और प्रभावशाली अनोखे व्यक्तित्व के एक पहलू का आलेखन करना भी 'छोटे मुँह बड़ी बात' सी लग रही है, तो भी उनकी जन्म-जयन्ती के पुनीत पर्व पर यत्किंचित लिखने का साहस कर रही हूँ।

हम इतिहास के पन्ने उलटते हैं तो मालूम होता है कि किसी-किसी समय में युगपुरुष पैदा होते हैं। संसार में अज्ञान के कारण जमी हुई विषैली जड़ों को निकाल कर अपूर्व शान्ति स्थापित करने का मंगल कार्य यह युगपुरुष करते हैं।

आजकल जो युग प्रवाह चल रहा है। उसका अभ्यास करने पर प्रतीत होता है कि आज संसार में दो प्रमुख प्रवाह चल रहे हैं।

एक प्रवाह है, जिसमें जैनसमाज मूर्त इन्द्रियों से अनुभूत भौतिक जगत और भौतिक स्वार्थ को ही परम सत्य मानता है। बुद्धि का विकास उनके लिये परम लक्ष्य है। बुद्धि से परे अतिसूक्ष्म आत्मा की अनुभूति और श्रद्धा उनको नहीं है। ऐसी श्रद्धावाला जैनसमाज नास्तिक के नाम से पहिचाना जाता है।

दूसरा प्रवाह है जिसमें जैन समाज आत्मतत्त्व की गहरी समझ के बिना शास्त्र कथित क्रियाकाण्ड करता है। ऐसी क्रिया के हार्द में जो भावना भरी पड़ी होती है, उस भावना को वह समझता नहीं। जीवन व्यवहार में अन्धश्रद्धा ही दिखाई देती है। ऐसे लोगों को आस्तिक नाम से पहिचाना जाता है।

किन्तु चिन्तन से प्रतीत होता है कि उपरोक्त दोनों प्रवाहों का अस्तित्व अज्ञानजनित है। आत्मा की गहरी समझ और अनुभूति के बिना जो कुछ चिनन्त मनन होता है, वह बुद्धि है, ज्ञान नहीं, प्रज्ञा नहीं।

उपरोक्त वर्णित अज्ञान-तिमिर-युग में ज्ञानरूप सूर्य का प्रकाशित होना अत्यन्त आवश्यक था। इस आवश्यकता की पूर्ति परमकृपालु पूज्य गुरुदेव ने सद्ज्ञान का अमर संदेश देकर की है।

'हमें देह में व्याप्त किन्तु देह से भिन्न या देह से अलिप्त, वाचा से, मन से, कर्म से, बुद्धि से परे अतिसूक्ष्म जो आत्मतत्त्व है, उसकी जान पहचान करके उसका साक्षात्कार (Self realisation)

करना चाहिए। आत्मा अजर, अमर, शुद्ध, बुद्ध, सत्चिदानन्द ज्ञानसागर है, किंतु हमें प्रतीत नहीं होती, क्योंकि व्यक्त रूप से राग, द्वेष, मोह, ममतादि अनेक शुभ और अशुभ वृत्तियों का ही स्पष्ट अनुभव होता है। एवं इसी क्षणिक अनुभूति को मानव अपना सच्चा स्वरूप समझने की भूल करता है। सुख-दु:ख की कल्पना को पलटकर चिदानन्द भगवान आत्मा को पाने का प्रयास करें तो अपनी दृष्टि बदल जाती है। और दृष्टि बदलने पर भूला हुआ अपना सच्चा स्वरूप पा सकते हैं। महानुभाव श्रीमद् राजचन्द्र ने अपनी आत्मसिद्धि में कहा है कि -

उपजे मोह विकल्प क्षत, समस्त आ संसार।
अंतर लोक अवलोकतां, विलय क्षता नहीं वार।।

इसीलिए इस घट में विराजमान चिदानन्द भगवान आत्मा को व्यक्तरूप से अनुभूति में लाने के लिये जीवन पर्यन्त पुरुषार्थ करना चाहिए। क्योंकि पामर मानव इस संसार में बार-बार अनुकूल या प्रतिकूल स्थिति या संयोग में आ पड़ता है। ऐसी परिस्थिति में वह संयोग के आधीन न हो जाये। क्योंकि स्थिति के निमित्त से अन्दर में राग-द्वेष मोहादि भावों के कारण क्षोभ और आकुलता का वेदन होता है। इस वेदन के कारण चित्त क्षोभ की इस परिपाटी से संसार बढ़ता है। इसलिए शान्त, स्थिर, निराकुलता, तटस्थता भाव का वेदन हो सके, ऐसा पुरुषार्थ करना चाहिए। सच्ची श्रद्धा से ऐसा पुरुषार्थ करे तो आत्मा क्षुद्रात्मा से उठकर महात्मा बन जाता है जो परमात्मदशा प्राप्त करने का मंगल द्वार है।'

पूज्य गुरुदेव के इस संदेश को जीवन में आदर्श बनाकर जीवन व्यतीत करने की मेरी उत्कट भावना चरितार्थ हो, यही प्रार्थना करती हूँ।

इस महान विभूति की ७३वीं वर्षगाँठ पर हमारी मौन प्रार्थना है कि पूज्य गुरुदेव दीर्घायु बनें, हम भक्तों को उनके उपदेशामृत पान करने का अहोभाग्य सदा मिलता रहे। श्री गुरुदेव के चरण-कमलों में अत्यन्त भक्तिपूर्वक नमस्कार हो। ●

वे स्वयं समयसार हैं

(श्री सेठ भगवानदास शोभालाल, सागर)

जीवो चरित्तदंसण–णाणाट्ठिउ तंहि ससमयं जाण।
पुग्गल कम्मपदेस–ट्ठियं च तं जाण पर समय।।

चारित्र, दर्शन और ज्ञान में जीव की स्थिति स्वसमय है। तथा पुद्गल कर्म प्रदेशों में रहने को पर समय कहते हैं।

पूज्य श्री आत्मार्थी सत्पुरुष कानजीस्वामी ने अपने स्वसमय को स्वयं प्राप्त किया है। तथा अन्य मुमुक्षुओं के समक्ष उसका ऐसा सहज सुलभस्वरूप प्रकाशित किया है कि संशय, विमोह और विभ्रम की यहाँ कोई गुंजाइश ही नहीं है।

स्वरूपाचरण और स्वसंवेदन संयुक्त जो भेदज्ञान उन्होंने प्राप्त किया है, उनकी प्रतिभा, तेज तथा आत्मानुभूति को देखकर अन्तरंग से यह आवाज निकलती है, कि वे स्वयं समयसार हैं।

हम पूज्य श्री की ७३वीं वर्षगाँठ पर उनकी जयन्ती के उपलक्ष्य में अपनी और अपने परिवार की ओर से हार्दिक श्रद्धांजलि समर्पित करते हैं। और शुभकामना करते हैं कि स्वामीजी शतायु होकर अध्यात्मवाद की ज्योति को अखण्ड ज्योति बनावें तथा हम सब उस ज्योति के प्रकाश में अपने स्वरूप को प्राप्त करने का प्रयत्न करें।

पूज्यश्री स्वामीजी की यह जयन्ती सफल हो – और 'सन्मति सन्देश' के इस प्रयास की स्मृति चिरकाल तक बनी रहे। ●

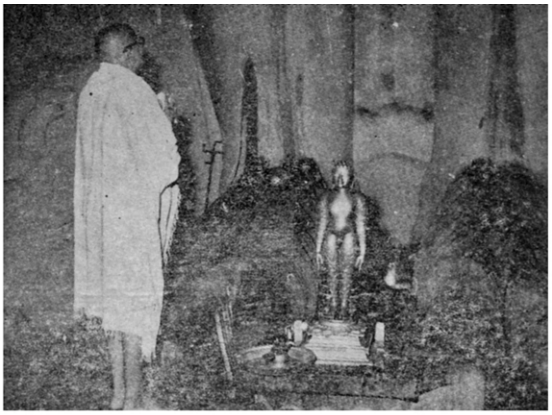

भगवान बाहुबली (श्रवणबेलगुल) के चरणों में स्वामीजी

श्री दिगम्बर जैन मन्दिर बांकानेर में
मूलनायक भगवान वर्द्धमान की प्रतिमा

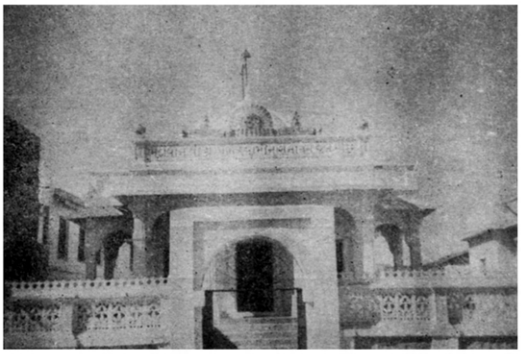

श्री दिगम्बर जैन मन्दिर, विंछिया

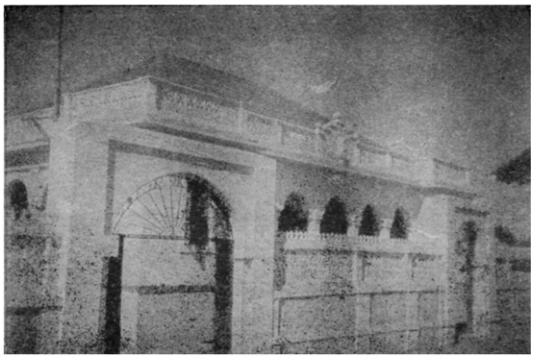

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर, विंछिया

श्री दिगम्बर जैन मन्दिर बढवाण में सीमंधरस्वामी,
भगवान शान्तिनाथ और महावीरस्वामी
की प्रतिमाएं

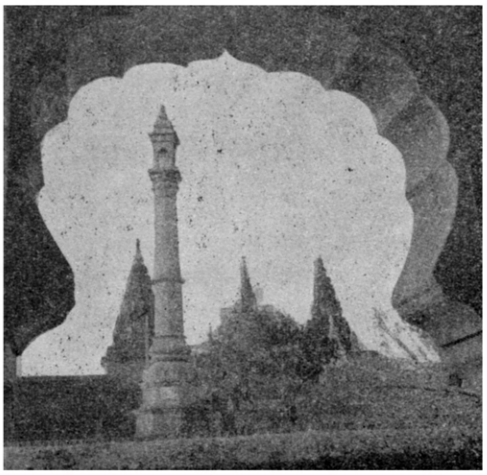

श्री सिद्धक्षेत्र कुंथलगिरि का एक दृश्य

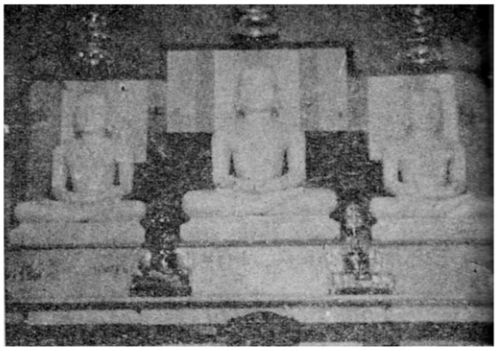

मोरवी (सौराष्ट्र) के मन्दिर की भव्य जिनप्रतिमाएँ

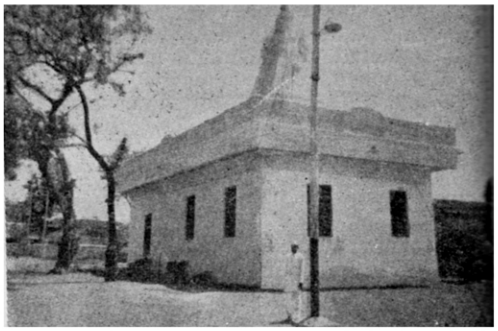

श्री दिगम्बर जैन मन्दिर, खैरागढ़ (म.प्र.)

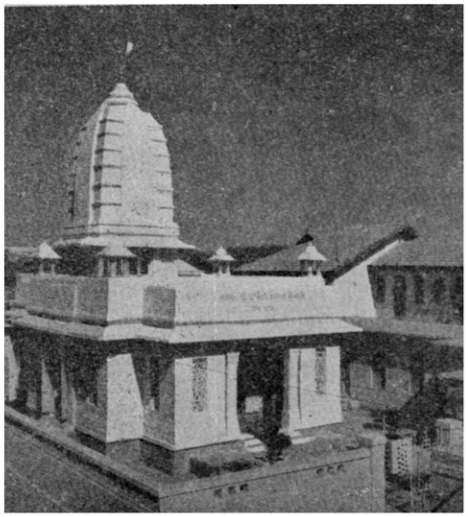

श्री दिगम्बर जैन मन्दिर, लींबड़ी (सौराष्ट्र)

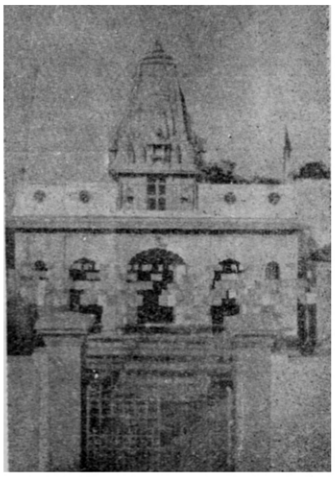

श्री महावीर दिगम्बर जैन मन्दिर, मोरबी (सौराष्ट्र)

उनके अनन्त उपकार

श्री कान्तिलाल हरिलाल शाह, बम्बई

इस अवनि पर उस समय अज्ञान का ताण्डव नृत्य हो रहा था, सत्य का याने धर्म का भारी दुष्काल था, तृषातुर को तृषा शान्त करने के लिए एक छोटी सी बावड़ी भी दृष्टिगोचर नहीं होती थी। मोह का साम्राज्य चारों ओर फैल रहा था, कर्तृत्व और भोक्तृत्व का रोग बहुत बढ़ गया था। समुद्र रज के पास जल की भीख माँग रहा था और सूर्य, अन्धकार के पास प्रकाश की। ऐसी भ्रामिक अवस्था में अज्ञान नाशक चैतन्य सूर्य श्री कानजीस्वामी का उमराला (सौराष्ट्र) में आज से ७३ वर्ष पूर्व जन्म हुआ था।

इस पृथ्वी पर प्रतिदिन कई जन्म लेते हैं और कई मरते हैं। सबका जन्मोत्सव नहीं मनाया जाता है किंतु जो मनुष्य, जन्म पाकर मनुष्य-जन्म सफल कर याने पुनर्जन्म न धारण करना पड़े और दूसरों को भी ऐसा ही तत्वबोध दे, ऐसे मनुष्यों का ही जन्म-दिन मनाया जाता है।

आज हम पूज्य स्वामीजी का जन्मोत्सव क्यों मना रहे हैं? विचार करने से मालूम पड़ेगा कि उनका जीवन ही ऐसा है। आप बचपन से ही जन्म वैरागी हैं, सत्य के शोधक हैं। लोग युवावस्था में सांसारिक भौतिक पदार्थों के पीछे कीमती समय व्यय करते हैं जबकि स्वामीजी का हृदय वैराग्य से भरपूर था। इसीलिए उन्होंने अपने माँ-बाप से विनम्र भाव से बोल दिया कि हे माताजी! हे पिताजी! मेरा विवाह मत करना, मुझे संसार में रहने की कोई इच्छा नहीं है। युवावस्था में पूज्य स्वामीजी ने स्थानकवासी साम्प्रदायिक दीक्षा ली, साधु हुए। स्वामीजी सत्य के शोधक थे, बहुत थोड़े समय में श्वेताम्बर स्थानकवासी के सब शास्त्र पढ़ लिए किन्तु उनके चित्त का समाधान नहीं हुआ। फिर कुछ दिनों बाद दिगम्बर आचार्य भगवान कुन्दकुन्द स्वामी विरचित समयसार नामक ग्रन्थ इनके हाथ में अकस्मात् आ गया। स्वामीजी ने समयसार का बहुत मनन पूर्वक अध्ययन किया और जिस चीज की खोज में थे, वह चीज उन्हें इसमें प्राप्त हो गई। स्वामीजी बहुत प्रसन्न हुए और दिगम्बर आम्नाय के प्रति आकर्षित हुए। समयसार ग्रन्थ में त्रिलोक का सार है, उसका अध्ययन करनेवाला बड़ा भाग्यशाली है, ऐसा कई बार स्वामीजी ने कहा है। अल्प काल में ही दिगम्बराचार्य रचित चारों अनुयोगों के शास्त्रों का अध्ययन किया। सम्पूर्ण दिगम्बराचार्यों के प्रति आपकी श्रद्धा प्रगाढ़ है, ऐसा उनके प्रवचनों में स्पष्ट पाया जाता है।

स्वामीजी कोई साम्प्रदायिक गुरु नहीं हैं। उन्हें किसी सम्प्रदाय विशेष से लगाव हो, ऐसा भी

नहीं है। स्थानकवासी सम्प्रदायी स्वामीजी के कट्टर भक्त थे। आपके वचन भगवान के वचन माने जाते थे उस समय, किन्तु आपने सत्य की खातिर स्थानकवासी सम्प्रदाय ही छोड़ दिया। आपने समाज का बड़ा उपकार किया है। वस्तुत्व का विवेचन यथार्थ रूप में आपसे ही मिलता है। आप स्वयं भी भेदविज्ञान के साक्षात् अवतार हैं। एक बार जो आपका प्रवचन सुन लेता है, वह उनका ही हो जाता है। हमारे तो वे धर्मपिता हैं। उनके अनन्त उपकार का, समाज व मैं अत्यन्त ऋणी हूँ। उनकी अमृतवाणी सुनकर एवं परोक्ष में उनके प्रवचन पढ़कर अगणित जीवों ने अपना आत्मकल्याण किया है। आपने ही जैन तत्त्व को समझने की सच्ची दृष्टि दी है। जैन धर्म की आत्मा, वस्तु की स्वतन्त्रता, व्यवहार, निश्चय, निमित्त, उपादान और क्रमनियत आदि का आपने समाज के सामने इतना सुन्दर निष्कर्ष निकालकर रखा है कि जन साधारण की दृष्टि ही बदल गई। क्रियाकाण्ड को मोक्षमार्ग माननेवाले बन्धु आज मूलतत्त्व से सुपरिचित हो चुके हैं।

उनके प्रताप से सौराष्ट्र में तो समाज का बिल्कुल नवनिर्माण हुआ है। इनके पूर्व यहाँ दिगम्बर नाम का एक व्यक्ति नहीं था। जबकि आज सौराष्ट्र प्रत्येक गाँव व नगर में दिगम्बर मन्दिर और दिगम्बर समाज बहुतायत से हैं। आपने जो सुखशान्ति का मार्ग बताया है, वह इस युग में प्रथम बार ही सुनने व अनुभव करने को मिला। उनके उपकार का बदला दे सकना असम्भव है। मेरी मंगल कामना है कि पूज्यश्री के बताये हुए जैन शासन की विश्व भर में जय जयकार हो और गुरुदेव दीर्घ काल तक हमारा मार्ग प्रदर्शित करते रहें। ●

卐

पूज्य गुरुदेव कानजीस्वामी और तीर्थधाम सोनगढ़

श्री फूलचन्द पांड्या, दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल, इन्दौर

प्रथम परिचय :

इन्दौर के दस हजार व्यक्तियों के समक्ष पर्यूषण पर्व के पुनीत अवसर पर जैनसम्राट हुकुमचन्दजी सर सेठ साहब ने आज से कुछ वर्ष पूर्व आध्यात्मिक सन्त पूज्य श्री कानजीस्वामी का परिचय देते हुए बहुत ही उल्लासपूर्वक बताया कि यदि हमें वास्तव में सत्य दिगम्बर जैनधर्म का स्वरूप जानना है, तो इस युग के दिगम्बर जैनधर्म के सच्चे प्रचारक, सोनगढ़ के सन्त का प्रत्यक्ष साक्षात्कार करना चाहिए। बस मात्र इसी संकेत ने पूज्य गुरुदेव के दर्शन और उनकी अमृतमयी

वाणी का लाभ लेने हेतु हम सभी को प्रेरित किया। मेरे परम मित्रों की उत्कण्ठा इतनी बलवती हुई कि कुछ ही समय पश्चात् हम सभी ने सोनगढ़ के लिए प्रस्थान किया। जैसे-जैसे हम सोनगढ़ के समीप आ रहे थे, हमारे हृदय में विशेष उमंगें उठती थीं, ठीक उसी तरह जैसे इच्छुक को उसकी इच्छित वस्तु पर।

प्रात:काल सोनगढ़ पहुँचते ही हमने वहाँ धवल वस्त्रों में साधर्मियों को प्रवचन में जाते देखा। स्वाध्याय भवन के समीप बने सीमन्धर प्रभु के मन्दिर में वीतराग प्रभु के दर्शन किए। ठीक ८ बजे हम सभी स्वाध्याय भवन में, जहाँ नियमित प्रवचन होता है, सम्मिलित हुए। पूज्य कानजीस्वामी उच्च आसन पर आसीन थे। उन्हीं के समक्ष परम ग्रन्थाधिराज समयसारजी बहुत ही सम्माननीय ढंग से विराजमान थे। श्रोताजन पूज्यश्री की प्रवचन सुनने हेतु शान्त एवं एकाग्रचित्त थे।

'शुद्ध त्रैकालिक ज्ञायकभाव के समझे बिना यह जीव अनादि काल से भ्रमित हो रहा है। मैं आत्मा हूँ, मेरा स्वभाव जानना है। मैं अनन्त गुणों का समुदाय जीव द्रव्य हूँ। सनाथ होते हुए भी यह जीव अपनी स्वयं की अज्ञानता से अनाथ मान, पर द्रव्यों से सुख की भिक्षा माँग रहा है। अरे, भाई, तू तो स्वयं सुखी एवं सुख का पिण्ड है।'..... और इसी तरह पूज्यश्री की आध्यात्मिक धारा निर्बाधित बहती चली जा रही थी। हम सभी जिज्ञासु उस अनमोल वाणी का रसास्वादन कर अपने को महान सौभाग्यशाली समझ रहे थे। पूज्य गुरुदेव ने दयामयी वाणी में कहा कि 'यदि तुम्हें सुखी होना है, तो स्वयं निज आत्मा के वैभव को पहिचानो। सुख तो पुद्गल का गुण नहीं, वह तो आत्मा की स्वयं की अपनी चीज है। सत्यधर्म तो वीतरागता है। वीतरागता की भूमिका में ही वीतरागता पनपेगी। जो राग से वीतरागता चाहता है, वह मानो अन्धकार से प्रकाश चाहता है। इसलिए भाई! अपनी उपादान शक्ति को जागृत करो। निमित्त तो उपचार का पर्यायवाचक शब्द है। जब उपादान में स्वयं ही से शक्ति जागृत होती है, तो उस समय उपस्थित पदार्थ निमित्त कहने में आते हैं। कार्य सिद्ध होने पर, वह इससे कार्य हुआ, ऐसा आरोपित कथन है।'

सरस एवं सरल वाणी हमें क्या मिली, मानो ऐसा भान हो रहा था कि हमारी सभी भ्रान्ति मान्यताएँ नष्ट हो रही हैं। यों तो उनकी बहिरंग शान्त, स्वस्थ, सुन्दर वीतराग मुद्रा को देखकर हम सभी उनकी प्रशंसा से वंचित नहीं थे, पर जब उनकी इस अनुपम वाणी का लाभ हुआ, तो हम सभी उनके अनन्य भक्त हो गए। और इसी बीच स्वभावतया हमारे एक साधर्मी से बरबस पण्डित बनारसीदासजी का यह दोहा गूँज उठा -

जिन पद नाहि शरीर में, जिन पद चेतन माहिं।
जिन वर्नन कछु और है, यह जिन वर्नन नाहि।।

सत्पथ के परम प्रचारक :

यह नितान्त सत्य है कि पूज्यश्री ने वर्तमान काल के इस निमित्ताधीन वातावरण में उपादान शक्ति का महत्व बतलाकर क्रमबद्धपर्याय, द्रव्य-गुण-पर्याय को समझाकर एवं सर्वज्ञ की सिद्धिकर सम्यक् पुरुषार्थ तथा निश्चयरूप से तत्त्वों को बताकर जो मार्ग दर्शन किया, वह सत्यपथ के प्रचारक कानजीस्वामी - ऐसा सम्बोधित करने में कोई भी बाधा उपस्थित नहीं करता। ऐसे सत्पुरुष ने जो अपने जीवनकाल के अतीत में, जब वे स्वयं श्वेताम्बर जैन मुनि थे एवं जिनके प्रवचन श्रवण करने हेतु दस-दस हजार श्रोताजन प्रतिक्षण प्रतीक्षा में रहते थे। जिनकी पूजा कर वे अपने को महान् सौभाग्यशाली समझते थे, ऐसी अपनी कीर्ति की उपेक्षा कर पक्षमोह को छोड़ सोनगढ़ के एकान्त वातावरण में जहाँ एक भी दिगम्बर जैन नहीं था, निर्भय हो सत्यपथ ग्रहण कर जिसने अपनी सिंह वृत्ति का परिचय दिया, वह परमधर्म प्रचारक नहीं तो क्या है? ऐसे निर्भीक पुरुष की हम वन्दना करें, तो आश्चर्य क्या है?

सद्गुरुदेव :

प्रवचनसार की २३९वीं गाथा का प्रसंग था। गाथा मिथ्यादृष्टि की सूचक है, ऐसा प्रतिभासित होता था। इसी पर उपस्थित विद्वानों का पक्ष और विपक्ष में विचारों का आदान-प्रदान हुआ। इसी बीच अपने स्वयं के सम्यक् क्षयोपशम तथाा अनुभव से, यह गाथा सम्यग्दृष्टि की है, ऐसा मन्तव्य पूज्यश्री ने प्रगट किया। वहाँ उपस्थित सभी विद्वानों ने सूक्ष्म अवलोकन कर पूज्यश्री के इस कथन से सहमत हो तथा आत्मविभोर हो उक्त मन्तव्य की पुष्टि की।

जिनके सानिध्य में रहते हुए प्रोफेसर, संस्कृत के प्रखर विद्वान, सरल, निर्लोभी, विवेक पण्डित हिम्मतभाई केा भव-बन्धन छेदने का मार्ग-दर्शन मिला हो, वे पूज्यश्री को सद्गुरुदेव कहें तो कौन सी विशेष बात है?

कानून के प्रकाण्ड पण्डित, महात्मा गाँधी के अन्यतम सलाहकार, जैन सिद्धान्तों के पारंगत, महान तार्किक, सौराष्ट्र के ख्याति प्राप्त वकील श्री रामजीभाई भी जिनके निरन्तर सत्समागम के कारण ही जैनतत्त्वों के सूक्ष्म जानकार हो सके। वे उन्हें 'परम पूज्य सद्गुरुदेव' ऐसा कह सम्बोधित करें तो, कौन सी अनोखी बात है?

यदि पण्डित खेमचन्दभाई इत्यादि अन्य सरल विद्वानों को पूज्यश्री के उपदेश से विवेक प्रगट हो जावे, तो कितनी महानता है?

जब निश्चय और व्यवहार के सच्चे, निर्भक निष्पक्ष प्रतिपादक महान् सत्पुरुष प्रात:काल वायु सेवनार्थ निकलें, तो उस समय सोनगढ़ का बच्चा-बच्चा 'सद्गुरुदेव की जय हो' मधुर वाणी से स्वागत करे, तो क्या आश्चर्य है?

पूज्यश्री और ग्रंथाधिराज समयसारजी

पूज्यश्री को प्रथम बार जब समयसारजी प्राप्त हुए, तब वे श्वेताम्बर मुनि अवस्था में थे। जब उन्होंने उसका स्वाध्याय किया तो उन्हें अपूर्व शान्ति का परिचय हुआ। बार-बार वे इसी भेष में एकान्त में, गुफाओं में जाकर मनन एवं स्वाध्याय करने लगे। जब पूर्णरूपेण उन्हें अपने स्वचतुष्टय का भान हुआ तो उनकी आत्मा पुकार उठी कि शत-प्रतिशत सच्चा धर्म दिगम्बर जैनधर्म ही है। इसी तरह इन आजन्म बाल-ब्रह्मचारी ने कुछ समय पश्चात् ही पिछली मान्यताओं को लोपकर बहुत ही उल्लासपूर्वक इसी ग्रन्थाधिराज के माध्यम से झूठी लोकलाज की उपेक्षाकर इस अनुपम, अपूर्व वस्तु का स्वसंवेदन कर इसके प्रचार में रत हुए।

धर्मपुरी सोनगढ़ :

आज पूज्य गुरुदेव की महान संगति से सोनगढ़ धर्मपुरी हो रहा है। ठीक उसी तरह, जैसे कि किसी समय आचार्य-कल्प पण्डित टोडरमलजी से जयपुर नगर। वहाँ आज आगमानुकूल सिद्धान्तों का प्रतिपादन होता है। सोनगढ़ वर्तमान में जैन सिद्धान्तों की सुप्रीम कोर्ट है। जहाँ कि सैद्धान्तिक निर्णय तथा वस्तुस्वरूप की सत्यता का स्पष्ट अपूर्व दर्शन होता है। वहाँ शास्त्रानुकूल यदि पूज्य गुरुदेव वक्ता हैं, तो वहाँ सम्यक् श्रोता भी। पुण्य से त्रिकाल में भी धर्म नहीं होता, यह जानते हुए भी वहाँ के साधर्मी भाई पुण्य के अनन्यतम अनुपम कार्य किये बिना नहीं रहते। सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के राग को धर्म नहीं मानते हुए भी वे हम से कहीं ज्यादा इन सभी का बहुत-बहुत सम्मान करते हैं। वे व्यवहाराभास के तीव्र विरोधी हैं। पर सच्चा व्यवहार जो निश्चय के साथ बलात् आता है, वहाँ के प्रत्येक साधर्मी जन के दैनिक जीवन में दृष्टिगोचर होता है। वहाँ सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की पूजा को धर्म नहीं मानते, पर वे अपनी इस शुभ भूमिका में रच-पच जाते हैं। वे बड़ी ही भक्ति भाव से अत्यन्त ही उल्लसित हो भजन एवं पूजन से भगवान को पूजकर वीतरागता के लिए वीतराग प्रभु की वीतरागता से रीझते हैं। वहाँ जयंतियाँ एवं निर्वाण तिथियाँ मनाई जाती

हैं, पर उनका उत्सव मनाना, ममत्व हटाकर, उपवास आदि क्रियाओं से होता है।

वहाँ वे शास्त्रों के पारगामी हैं, पर वे शास्त्रों का उपयोग शस्त्रों तुल्य नहीं करते। वे दानी हैं, पर ऐसे जिन्होंने वीतराग प्रभु की वाणी के प्रचार के लिए अपनी चंचला लक्ष्मी का यथाशक्ति अधिक सदुपयोग किया है। वहाँ बाह्य आडम्बर नहीं, किन्तु अन्तरंग रत्नत्रय ज्योति दिन-प्रतिदिन वहाँ के प्रत्येक साधर्मी जन में उत्तरोत्तर उत्कर्ष को प्राप्त होती है। वहाँ साधर्मी जन का मृत्यु समाचार विषाद समाचार न होकर वैराग्य-समाचार होता है।

ऐसे पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की जयन्ती मनाने का हमारे जीवन में महान सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इस अपूर्व अवसर को प्राप्त कर हम सभी धन्य हुए हैं। ●

卐

सन्मार्गदर्शी

श्री कन्हैयालाल पन्नालाल शाह, दाहोद

पूज्य श्रद्धेय श्री स्वामीजी शतायु हों, यह मेरी कामना है। भगवान श्री सीमन्धर प्रभु की दिव्यध्वनि सुनकर आचार्यवर श्री कुन्दकुन्दस्वामी ने अपने अनुभव को प्रधान करके द्रव्यों की स्वतन्त्रता का ज्ञान भी 'समयसार' आदि शास्त्रों द्वारा जनता को कराया।

अब तक भारत की जैन जनता शास्त्रों के गूढ़ रहस्य से अपरिचित सी थी। स्वामीजी ने इस महान ग्रन्थराज का अध्ययन मनन किया। इसका सर्वांग रहस्य स्वगत किया। इतना ही नहीं परन्तु मुमुक्षुओं के लिए उन्होंने इस ज्ञान भण्डार के द्वार खोल दिए।

शुभराग और उसके फल का मीठापन तो इस जीव को अनादि काल से है। इसमें कोई अपूर्वता नहीं है। क्योंकि वैसा पुण्य जीव ने अनन्त बार उपार्जन किया है, जिसके फलस्वरूप वह देव भी हुआ, भोगभूमि में भी उत्पन्न हुआ, भगवान के समवसरण में भी गया, दिव्यध्वनि भी सुनी, सत्धर्मी भी हुआ और ग्रैवेयक तक भी गया, ये सभी सिद्धियाँ पुण्य के योग से ही प्राप्त होती हैं। लेकिन अभी तक ऐसे पुण्य के फल प्राप्तिरूप काल में उसकी विपरीत मान्यता के अनुसार (पुण्य के फलरूप) स्वरूप की प्राप्ति नहीं हुई। इस प्रकार जीव का अनन्त संसार अभी तक सामने खड़ा है। पुण्य से धर्म

की (स्वरूप की) प्राप्ति होगी, ऐसी मान्यता महान विपरीत है। पुण्य, आस्रवतत्त्व का ही भेद है। आस्रव से धर्म का प्रारम्भ नहीं होता तो पूर्णता कैसे होगी? मोक्षमार्ग का प्रारम्भ सम्यग्दर्शन से होता है। सम्यग्दर्शन का विषय आत्मद्रव्य है। उसके ही लक्ष्य से उसका प्रारम्भ होता है।

ऐसी अपूर्व बात आज स्वामीजी बहुत सरल ढंग से बता रहे हैं। जो जीव स्वसन्मुख पुरुषार्थ करता है, उसको उसकी प्राप्ति होती है। पर सन्मुख होकर कोई जीव कभी भी मोक्षमार्गी नहीं हुआ और न हो सकेगा। आज जैन समाज में तत्त्व के नाम पर एकान्त चल रहा है। वस्तुस्वरूप को जनता के सामने विपरीत ढंग से रखा जा रहा है। लेकिन सत्य सत्य ही रहेगा। द्रव्य परिवर्तन को परकृत बतानेवालों का यह कहना है कि दो द्रव्य मिलकर कार्योत्पत्ति करते हैं। ऐसों को पूर्व आचार्यों ने द्विक्रियावादी कहा है। इस हालत में जबकि एक द्रव्य की एक समय की पर्याय का कर्ता दूसरा द्रव्य माना जाये तो उस द्रव्य ने उस समय में क्या कार्य किया? क्या यह द्रव्य निष्क्रिय रहा? ऐसी स्थिति में द्रव्य का द्रव्यत्व न रहा।

आचार्यवर्य श्री उमास्वामीजी का कहा हुआ 'गुण पर्ययवद् द्रव्यम्, उत्पादव्ययध्रौव्य युक्तं सत्' और 'सत् द्रव्य लक्षणम्' कैसे सिद्ध होगा?

ऐसी रहस्यपूर्ण बात को स्वामीजी स्पष्ट रूप से समझाते हैं। कार्य की उत्पत्ति में जो लोग निमित्त को अनिवार्य बतलाते हैं, उन्हें दृढ़तापूर्वक पुन: यह समझाया है कि द्रव्य का परिवर्तन स्वतन्त्र है। प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय निश्चितरूप से अपने आप अपने काल में अपने से अपने में परिवर्तन होती है। उसका कर्ता वह स्वयं ही है। दूसरा द्रव्य तीन काल में उसका कर्ता नहीं हो सकता। ऐसा मानने में भी अपूर्व पुरुषार्थ चाहिए।

स्वामीजी ने अपने अनुभव प्रधान से वीतराग मार्ग की ऐसी परम सत्य बात जैन और जैनेतर जगत के सामने प्रकाशित की है जो कि उनको श्री कुन्दकुन्द आदि आचार्यों की बनाई हुई रचनाओं से प्राप्त हुई है। ऐसा सर्वज्ञ का मार्ग-सत्य मार्ग जो पराधीन दृष्टिवाले हैं और निमित्ताधीन दृष्टिवाले हैं, उनको तीन काल में प्राप्त नहीं हो सकता। मोक्षमार्ग उनके लिए दुर्लभ है।

वीतराग मार्ग के परम श्रद्धानी और अमृतरस के पान करानेवाले एकमात्र सन्मार्गदर्शी स्वामीजी शतायु हों, यह मेरी मनोकामना है। ●

पूज्य गुरुदेव का उपकार

श्री पण्डित हीराबाई जैन श्राविकाश्रम, इन्दौर

परमपूज्य श्री गुरुदेव कानजीस्वामी के विषय में लिखते हुए बड़ा हर्ष होता है कि जिन्होंने अपना सारा जीवन तत्वाान के आराधन में ही व्यतीत किया है, जिन्होंने अपने पूर्व संस्कार तथा वर्तमान पुरुषार्थ से ही तत्वज्ञान की प्राप्ति की है। जैन तत्त्व के गहरे रहस्य का उन्हें पूर्ण अनुभव हुआ है; इसका प्रत्यक्ष प्रमाण उनके प्रवचन हैं। तत्त्व की तथा आत्मा की बात करते हुए उनका रोम-रोम हर्षित होता है तथा अपूर्व दृढ़ता दृष्टिगोचर होती है। उनकी दिव्यवाणी उनके आत्मिक वीर्य को प्रगट करती है। पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों में मुख्यरूप से भेदविज्ञान करानेवाले निश्चय-व्यवहार, निमित्त-उपादान, द्रव्यों के गुण पर्याय, नव तत्त्व आदि का विशद विवेचन रहता है जो परपदार्थों में एकत्वबुद्धि को छुड़ाने में सहायक है। जिनके प्रभाव से हजारों नर-नारियों के हृदय परिवर्तित हो गये, सत्य वस्तु के श्रवण करने के हेतु उनका जीवन ही बदल गया। देश परिवार जाति आदि तक की परवाह नहीं की, अनेक विपत्तियों को सहन किया किंतु सन्मार्ग नहीं छोड़ा।

धन्य है उन भाई-बहिनों के जीवन को, धन्य है, वह क्षेत्र जहाँ जंगल था, जो आज एक तीर्थक्षेत्र बन गया है, जहाँ चारों तरफ हर समय घर-घर व्यक्ति-व्यक्ति के मुँह पर गुण पर्याय और आत्मा की चर्चा ही सुनाई देती है, खाते-पीते चलते-फिरते वही रटन कि कैसे आत्मदर्शन हो, उसी का पुरुषार्थ और उसी की लग्न प्रत्येक के चेहरे पर दिखाई देती है। जिसे कि हम व्यवहार का निषेध कहते हैं कि स्वामीजी व्यवहार को उड़ाते हैं, वे उड़ाते नहीं किन्तु हमें सम्यक्त्व प्राप्ति के पूर्व कैसा शुभोपयोग, शुभकार्य शुभास्रव होना चाहिए, बताते हैं। यदि वह देखना हो तो सोनगढ़ जाकर प्रत्यक्ष देखना चाहिए और तुलना करना चाहिए कि हम कहाँ और किधर जा रहे हैं?

प्रवचन सुनने में उपयोग की एकाग्रता, भगवत् पूजा भक्ति में संलग्नता, देव-गुरु-शास्त्र के प्रति सच्ची विनय यदि कहीं है तो सोनगढ़ में देखी जाती है। जहाँ दिखावटी और बनावटीपन का रंचमात्र भी प्रदर्शन नहीं है। प्रत्येक कार्य लगन, उत्साह और हृदय से होते हैं। यह बातें कुछ दिन वहाँ रहकर प्रत्यक्ष देखने से ही अनुभव में आ सकती हैं। मात्र साहित्य और प्रवचन के पठन से नहीं।

स्वामीजी का ज्ञान जितना अगाध और गम्भीर है, उसी प्रकार उनकी प्रवचनशैली भी चमत्कार से भरी हुई है। द्रव्यानुयोग जैसे कठिन और रूक्ष विषय को कितनी सरल भाषा और दृष्टान्तों से कहते हैं कि श्रोतागण मन्त्रमुग्ध हो जाते हैं। अपने प्रान्तों में हम शास्त्रसभा, मन्दिर

आदि धार्मिक कार्यों में बड़े-बूढ़ों की ही संख्या देखते हैं किन्तु सोनगढ़ इसका अपवाद है। वहाँ बड़े-बड़े डाक्टर, वकील व बड़े-बड़े अंग्रेजी के उच्चशिक्षित एक बार पहुँच जाने के बाद अपने जीवन को ही बदल लेते हैं और गहरा अध्ययन करते हैं।

पूज्य स्वामीजी से सौराष्ट्र का ही उपकार नहीं हुआ किन्तु यत्र-तत्र भ्रमण से तथा वर्ष में दो-दो बार शिक्षणवर्ग चलने से लाखों जीवों का कल्याण हुआ। हम जिस क्रियाकाण्ड आदि में धर्म समझ रहे हैं, वह वास्तव में धर्म नहीं किन्तु धर्म जुदा है, उसे समझे बिना संसार किनारा नहीं। केवल क्रियाकाण्ड से धर्म तीन काल, तीन लोक में नहीं हो सकता। मानवता में दृष्टि फेर करना है, यही सच्चा पुरुषार्थ है। पूज्य आध्यात्मिक सन्त गुरुदेव कानजीस्वामी का हमारे ऊपर परम उपकार है जो हमारे जीवन के मोड़ में निमित्त हुए हैं, उनका उपकार मानते हुए उनकी ७३वीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में उनके चरणों में श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। सोनगढ़ में पूज्य बेन श्री बेनजी तथा हमारी अनेक बहिनें बालब्रह्मचारिणी हैं जो निरन्तर अपना धर्मपूर्वक जीवनयापन कर रही हैं। उनका व्यवस्थित कार्यक्रम देखकर मुझे तो बड़ा हर्ष होता है। धन्य है उनका पवित्र जीवन जिनका एक क्षणमात्र अशुभोपयोग में नहीं जाता तो किसी प्रकार के यश और प्रशंसा आदि की इच्छुक नहीं हैं। वे हमारे लिये आदर्श हैं, हमें उनसे बहुत कुछ सीखना है। ●

सुख

- तुम्हें सुख चाहिए?
  हाँ।
- स्थायी सुख की आवश्यकता है या क्षणिक की?
  स्थायी सुख चाहिए।
- ठीक है; जानते हो वह सुख कैसे प्राप्त होता है?
  नहीं।
- तो सुख के कारण को जाने बिना उसकी प्राप्ति कहाँ से होगी?
  नहीं हो सकती।
- इसलिए, यदि सुखी होने की इच्छा हो तो सुख का कारण जानना चाहिए?
  प्रभो! सुख का कारण क्या है?

– हे जिज्ञासु सुन! सुख आत्मा में है; इसलिए आत्मा को जानकर उसमें एकाग्र होना ही सुख का कारण है।

श्री गुरुदेव के चरणों में मेरी श्रद्धांजलि

श्री कोमलचन्द जैन एडवोकेट, इन्दौर

बड़े हर्ष की बात है कि परमोपकारी आध्यात्मिक सन्त श्रीगुरु कानजी महाराज की ७३वीं वर्षग्रंथि सारे भारतवर्ष में ही नहीं अपितु भारत के बाहर भी अन्य देशों में बड़ी श्रद्धा व उल्लासपूर्वक मनाई जा रही है।

हे गुरुदेव! आपने पूर्ण परीक्षा प्रधानी बनकर अपने परिपक्व ज्ञान व अनुभव का उपयोग श्री १०८ भगवान कुन्दकुन्द की वाणी को समझने में किया व अपने विमल ज्ञान के द्वारा हजारों मुमुक्षुओं को आत्मज्ञान दिया, उन्हें सच्चा मोक्षमार्ग बताया, उनके मनुष्य जन्म को सार्थक किया।

आपके द्वारा बालबोधिनी पद्धति में आध्यात्मिक विषय पर महान व विस्तृत साहित्य निर्माण हुआ है, यह साहित्य लोकोपयोगी जन भाषाओं के माध्यम से घर-घर अलख जगा रहा है, यह अनेक ग्रन्थों द्वारा चिरसाहित्य बन जाने के कारण भविष्य में भी अनेक मुमुक्षु आत्माओं का कल्याण करेगा। आपकी वाणी में बड़ा आकर्षण सरलता और मिठास है।

इस प्रसंग पर हम जैन स्वाध्याय मन्दिर सोनगढ़ के निर्माता कार्यकर्ता व सहायकों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रगट किये बिना न रहेंगे - जिन्होंने तन-मन-धन से सतत प्रयत्न करके गुरुदेव की वाणी को लिपिबद्ध की है व इस वाणी को बड़े पैमाने में लोकोपयोगी जनभाषाओं में अनुदित करके सर्व साधारण जनता में फैलाया है, इस साहित्य को पढ़कर पाठकगण आनन्द विभोर हो जाते हैं, श्री गुरुदेव की वाणी बड़ी मधुर सरल व तर्क पूर्ण (Full of resoning) रहती है। उसके श्रवण अथवा पठन मात्र से अध्यात्म विषयक कठिन से कठिन शंका आप ही आप निर्मूल हो जाती व आत्मा आनन्द से विभोर हो जाती है।

आपको कहीं भी विरुद्धता दिखेगी नहीं। गुरुदेव ने भगवान कुन्दकुन्द की वाणी को समझकर जो विशद विवेचन किया है, उसमें आदि से अन्त तक कहीं भी विषमता का प्रवेश नहीं है। यही कारण है कि आत्मधर्म का पाठक इस पत्रिका को सदैव अपने पास रखता है, व उसे हमेशा पढ़ता है। अन्य सज्जन यदि इसे पढ़ते हैं तो दूसरी मासिक पत्रिका पढ़ने को माँगते हैं, चाहे वे किसी भी धर्म के अनुयायी हों। वे तो कहते हैं कि इस पत्रिका में केवल आत्मचिन्तवन है, व प्रत्येक मुमुक्षु जो चाहता है, उसी के उपाय का निरूपण है। श्री गुरु कानजीस्वामी द्वारा वर्णित जो आत्मधर्म है, वही आत्मा का सच्चा धर्म है व वही सच्चे मायने में सम्प्रदाय विहीन है व वही विश्वधर्म के पद पर

आरूढ़ होने का दावा रख सकता है। हमें भगवान महावीर की वाणी को यदि समझना है तो हमें इसी साहित्य का आश्रय लेना होगा।

आध्यात्मिक सन्त श्री गुरु कानजीस्वामी का निवास स्थान आज एक महान तीर्थ बन गया है, एक छोटा सा स्थान आज विशालकाय संस्थाओं का केन्द्र बन गया है, हजारों व सैकड़ों मुमुक्षु वहाँ आते हैं – गुरुदेव की वाणी को सुनकर अपने को कृतार्थ मानते हैं, व इच्छा यही करते हैं कि ऐसी शान्ति प्रदायिनी वाणी बार–बार सुनने को मिले तथा आत्मिक सुख की प्राप्ति हो।

जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट ने अनेक शिक्षा संस्थायें तथा शिक्षण शिविर खोलकर भगवान कुन्दकुन्द द्वारा निरूपित जैनधर्म के ज्ञाता तैयार किये हैं, भविष्य में तैयार होते जावें इसकी व्यवस्था की है। इस व्यवस्था के द्वारा गुरुदेव ने जो ज्ञानज्योति दी है, वह सर्व दिशाओं में फैलती रहेगी व जैन धर्म का प्रकाश फैलता व बढ़ता रहेगा।

श्री गुरुदेव के गुणानुरागी सारे भारतवर्ष में फैले हुए हैं, जब वे तीर्थ वन्दनार्थ जैनसंघ सहित प्रवास पर निकले, तब स्थान–स्थान पर उनके उपकार ग्रहीत जैनी भाईयों द्वारा जो उनका आतिथ्य आदर व सत्कार किया गया, वह जैन इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा। यह घटना इस बात का प्रमाण है, कि श्री गुरुदेव द्वारा जैनधर्म की महान सेवा हुई है।

हमारी यही कामना है कि विश्वहितैषी यह महान विभूति दीर्घायु और आरोग्य प्राप्त करे ताकि सदैव हमें मार्गदर्शन मिले और इस सन्त प्रवर द्वारा जो जनकल्याण हो रहा है, वह जैनशासन के प्रभाव से सतत होता रहे। गुरुदेव की जय हो। ●

जब मुझे राह मिली

श्री बालमुकुन्द जैन, प्रधान कोषाध्यक्ष,
सैंट्रल बैंक ऑफ इण्डिया, दिल्ली

महाभाग्य है मुझ पामर का, जब अध्यात्ममूर्ति परम उपकारी, बोधदातार परम पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के प्रत्यक्ष समागम का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जिनकी अपूर्व कृपादृष्टि से जीवन का तार–तार झनझना उठा, भिखारी को एक निधि मिली, अनन्त संसार सागर में डूबते को मजबूत सहारा मिला, जिनकी अमृतमय मंगलवाणी ने जीवनदान दिया।

अनन्त काल से अनेक भवों में नहीं प्राप्त हुआ ऐसा सुख का मार्ग, शान्ति का मार्ग अथवा

जिसे मोक्षमार्ग कहते हैं, प्राप्त हुआ। जो स्वयं वस्तुस्वरूप का अनुभव करके निज कल्याण साध रहे हैं और निरन्तर उसका ही धारावाही उपदेश देकर भारत के अनेकों भव्य जीवों को मोक्षमार्ग पर ले जा रहे हैं, उन कल्याण मूर्ति परम पूज्य श्री कानजीस्वामी गुरुदेव को अत्यन्त भक्तिभाव से बारम्बार नमस्कार करता हूँ और यही आन्तरिक भावना है कि पूर्ण पद की प्राप्ति होने पर आपका परम सत्य उपदेश इस दास के हृदय में निरन्तर जयवन्त वर्ते, जिसके बल पर शीघ्र ही पूर्णता की प्राप्ति कर सकूँ। ●

चरण चिह्नों पर.....!

महावीर आत्मसाधना करने के लिए जृंभक वन में चले गये। जिस रास्ते से महावीर गये थे, उसी रास्ते से एक ज्योतिषी दूसरे गाँव को जा रहा था। उस युग का यह ज्योतिषी सामुद्रिक विद्या का निष्णात विद्वान माना जाता था। उसने पाँव के चिह्न देखकर अपनी विद्या से सोचा कि यहाँ से नंगे पैर गुजरनेवाला व्यक्ति अवश्य कोई राजा होना चाहिए। किन्तु राजा नंगे पैर क्यों जायेगा, उसके सामने प्रश्न था? वह पदचिह्नों के सहारे चला गया, जहाँ भगवान ध्यानस्थ थे। इससे आगे कोई पदचिह्न नहीं तो क्या यही वह व्यक्ति है, जिसके ये पदचिह्न हैं। ओह! भिखारी से भी गया बीता। पर हाँ इसके शरीर पर तो राजा बननेयोग्य सभी चिह्न विद्यमान हैं, फिर यह ऐसी हालत में क्यों? जिसके बदन पर एक कपड़े का टुकड़ा भी नहीं। कुछ रहस्य अवश्य है। क्या मेरी विद्या झूठी है? उसने पुकारा, कुछ प्रश्न किये किन्तु कोई उत्तर नहीं। तब उनके मौन से प्रभावित हो, वह चरणों में गिर पड़ा और सचमुच उनके चरणचिह्नों पर चल पड़ा। ●

सोनगढ़ के सन्त

श्री पण्डित ज्ञानचन्द्र जैन, 'स्वतन्त्र', सहसंपादक, जैनमित्र, सूरत

पहले सोनगढ़ नाम से ही सोनगढ़ था, किन्तु जब से पूज्य आत्मार्थी सत्पुरुष कानजीस्वामी ने अपना निवास स्थान सोनगढ़ को बनाया, तभी से सोनगढ़ स्वर्णगढ़ नहीं अपितु सही अर्थ में स्वर्णपुरी हो गया है। अब सोनगढ़ एक तीर्थधाम माना जा रहा है। जो यात्री गिरनार पालीताना की यात्रा को जाते हैं, वे सोनगढ़ अवश्य ही जाते हैं। अब तो यह चीज हो गई कि सोनगढ़ की यात्रा किये बिना सौराष्ट्र प्रान्त की यात्रा अधूरी मानी जाती है।

यह सच है कि पूज्य कानजीस्वामी एक विशिष्ट पुण्यात्मा एवं पुण्यशाली व्यक्ति हैं। उनके ही प्रताप से सोनगढ़ के अणु-अणु शुद्धोऽहं, बुद्धोऽहं, चित्स्वरूपोऽहं बोल रहा है। जहाँ निरन्तर मेला सा लगा रहता है। रंगून, बर्मा, अफ्रीका एवं दूर देशस्थ के अनेक व्यक्तियों ने तो सोनगढ़ को अपना निवास स्थान बना लिया है। जिस सोनगढ़ का पहिले हम पोस्ट आफिस की फाइल या रेलवे टाइम टेबल में देखा करते थे, अब सोनगढ़ देश-विदेश में भी प्रख्यात है।

जहाँ का सुखद प्रशान्त वातावरण और पूज्य स्वामीजी के आध्यात्मिक प्रवचन जनता को अपनी ओर बरबस आकृष्ट कर लेते हैं। अध्यात्मवाद की परम्परा हमारे देश में प्राय: लुप्त होने की घड़ियाँ गिन रही थीं कि स्वामीजी ने उसे हस्तावलम्बन देकर पुनुरुज्जीवित किया और अगणित मानस मन की जीवनदिशा ही बदल दी। न जाने कितने पामरों का अगृहीत मिथ्यात्व छुड़ाकर उन्हें सत्यपथ प्रदर्शित किया। उन पामरों में से इन पंक्तियों का लेखक भी एक है।

११ वर्ष पूर्व की घटना है कि सोनगढ़ स्टेशन से तांगे में, मैं धर्मशाला आया। तांगेवाले को मैंने एक अठन्नी दी। उसने लेने को इनकार करते हुए कहा – मैं कानजीस्वामी का भक्त हूँ, असत्य नहीं बोलता। आप मुझे चार आने दे दीजिये, एक सवारी का यही किराया है। फिर मैंने उसे चवन्नी दी, वह लेकर चला गया। प्रवचन मण्डप में से धर्मशाला आते हुए स्वामीजी के प्रवचन की चर्चा में अपने मित्रों से कर रहा था, बीच में एक मित्र कह उठे कि व्यवहार सर्वथा अग्राह्य नहीं है। तब एक अज्ञात व्यक्ति ने कहा यदि व्यवहार ग्राह्य होता तो हमारे पूर्वज ऋषि महर्षि व्यवहार को हेय न बतलाते। हम अनादि काल से व्यवहार को ही अपना मान रहे हैं, इसलिए हमको तात्विक वस्तु हाथ नहीं लगती।

तब अपरिचित व्यक्ति से पूछा – आप कौन हैं? उसने कहा मैं पेन्टर हूँ, राजकोट जिले का रहनेवाला हूँ। यहाँ पिछले दो साल से स्वामीजी का काम कर रहा हूँ। उनके प्रवचन से तो मैं ऐसा

मानता हूँ कि मैं अध्यात्म की गंगा में डुबकियाँ लगा रहा हूँ। तांगेवाला और पेन्टर इन दो व्यक्तियों के उत्तर से मुझे लगा कि स्वामीजी का अध्यात्मवाद वहाँ सभी पर छाया हुआ है। पूज्य कानजीस्वामी के चारों ओर का वातावरण ही ऐसा है कि व्यक्ति वहाँ जाकर और उनके उपदेश सुनकर आत्मविभोर हो जाता है।

कोई समय था, जब सौराष्ट्र प्रान्त में दिगम्बर जैन मन्दिर तो बहुत बड़ी चीज है, पर हमें वहाँ दिगम्बर जैन का नाम भी सुनने में नहीं मिलता था। क्योंकि सौराष्ट्र प्रान्त में श्वेताम्बर एवं स्थानकवासी जैन ही बड़ी संख्या में पाये जाते हैं। इनकी संख्या के समक्ष दिगम्बर जैनों की संख्या तब ऐसी थी जैसे कि सागर की एक बूँद हो। या दिगम्बर जैनों की ऐसी हालत थी जैसी हालत कि कुंजर के समक्ष कीड़ी की होती है।

आप देख लीजिये कि सौराष्ट्र के अन्दर अब हजारों दिगम्बर जैन हैं और दर्जनों जैन मन्दिर हैं। यह सब पूज्य स्वामीजी की महती कृपा और उन्हीं के प्रताप के कारण हुआ है। पूज्य स्वामीजी जैसा गम्भीर उदार एवं सरल भद्र प्रकृति का व्यक्ति हमें आपमें ही देखने को मिलता है। स्वामीजी की पृथ्वी जैसी क्षमाशीलता और समुद्र जैसी गम्भीरता, उदारता के समक्ष उनका विरोध एक नगण्य वस्तु है। वे किसी के बैर-विरोध में पड़कर अपना समय और शक्ति नष्ट नहीं करते। उनका चाहे कितना विरोध होता रहे फिर भी वे सुमेरु के समान अटल एवं अडिग हैं। यदि वे औरों की तरह मैं-मैं तू-तू में पड़ जाते तो उनका जो आज स्थान है, वह नहीं होता।

बैर, विरोध, प्रतिवाद ये तो अनादि कालीन वस्तुएँ हैं। अनादि से चली आ रही हैं और अनन्तानन्त काल तक चली जायेंगी। महात्मा गाँधीजी के भी कुछ लोग विरोधी थे। सच्चाई तो यह है कि विरोध ही सफलता की कुंजी है। स्वामीजी का जितना विरोध होगा, उनका उतना ही अधिक प्रकाश एवं प्रचार होगा।

पूज्य कानजीस्वामी जिस धुरी पर स्थित थे, उसी पर आज भी स्थित हैं। आज से दो हजार वर्ष पूर्व कलिकालसर्वज्ञ, आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने जिस अध्यात्मवाद की गंगा बहायी थी, उसी गंगा को कानजीस्वामी बहा रहे हैं। ठीक तो है -

'दिये से दिये को जलाते रहो'

आज सोनगढ़ केवल कानजीस्वामी के कारण पुज रहा है। अब सोनगढ़ में क्या नहीं है? इस प्रश्न की अपेक्षा 'सोनगढ़ में क्या सब कुछ नहीं है' यह प्रश्न अधिक वजनदार और महत्वपूर्ण

है। महिलाश्रम, विश्रान्तिगृह, छात्रावास, सीमन्धर जिनालय, मानस्तम्भ, प्रवचनमण्डप, विशाल शास्त्र मण्डप, पुस्तक प्रकाशन विभाग, पत्र पत्रकार, ट्रस्ट, धर्मशाला, भोजनालय, ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी, व्रती, अव्रती, सद्गृहस्थ, विद्वान बन्धु, सन्त आदि सभी कुछ सोनगढ़ में विद्यमान हैं।

कानजीस्वामी स्वयं कहते हैं कि मैं अव्रती हूँ, पर वे अव्रती होते हुए भी उनका खानपान एवं दैनिकचर्या में दानी, व्रती साधु सन्त से कम नहीं हैं, उनकी अन्तरंग चेतना इतनी प्रभावशाली है कि वह अपनी छाप दूसरों पर अनायास ही डाल देते हैं। कानजीस्वामी जो कुछ भी कहते हैं, वह उनके अन्दर की निष्पक्ष एवं पवित्र आवाज होती है और कहते समय उनकी जो तन्मयता है, वही तन्मयता लोगों के हृदयों पर चुम्बक पत्थर का काम करती है, वे उपदेश करते समय एक रस एकाकार एवं तदाकार हो जाते हैं। और आध्यात्मिक विषय की उनकी जो अनुभूति है, वह मूकभाषा में लोगों को अपनी ओर वरवश खींच लेती है।

सोनगढ़ के सन्त विविध विशिष्टताओं के पुंज एवं मानवीय गुणों के वर्तमान रूप हैं। उनके पास ढोंग आडम्बर पाखण्ड नहीं चल सकता। इस दृष्टि से कानजीस्वामी (चारित्रिक दृष्टि से, विद्वत्ता की दृष्टि से, श्रुताभ्यास की दृष्टि से, खान-पान की दृष्टि से) लाख दफे अच्छे हैं, यह मैंने कटु सत्य लिखा है जो कि कुछ लोगों को रुचेगा नहीं और वे मुझे ले बैठेंगे, आशीर्वाद देंगे। सो तो उनकी मेरे ऊपर पहली दया है, अत: मुझे उनका उपकार मानना चाहिए।

श्री कानजीस्वामी केवल सोनगढ़ के सन्त ही नहीं, अपितु वे देश और समाज के सन्त हैं। जो सन्त स्वभावी है, उसे ही सन्त कहा जाता है फिर उस का बाह्य वेश चाहे कुछ हो। ऐसे ही सोनगढ़ के सन्त के चरणों में मेरा नमन स्वीकार हो। मैं उनके शतायुष्क एवं सुखद जीवन की हार्दिक मंगल कामना करता हूँ। भाई 'हितैषीजी' ने आगे कदम बढ़ाकर जो कानजीस्वामी विशेषांक प्रकट किया, वह सुन्दर एवं प्रशस्त है। भाई हितैषीजी को इस जगह जितना धन्यवाद दिया जाये, कम है।●

सत्य शोधक

श्री सेठ नवनीतलाल चुन्नीलाल झबेरी, बम्बई

हम लोगों के भाग्योदय से भारत में एक महान आध्यात्मिक सन्त का आविर्भाव हुआ, जिसने भारत का वातावरण ही बदल दिया है। सौराष्ट्र ही नहीं, सम्पूर्ण भारत में आत्मोत्थान की सच्ची राह दिखानेवाला वह सन्त सोनगढ़ में रहता है। उसको मेरा विनयभाव से शत्-शत् नमस्कार हो।

मैं करीब ४ वर्ष से सोनगढ़ में जाकर उस महात्मा का अध्यात्म प्रवचन सुनता हूँ। जो ज्ञान हमें उस सन्त से मिला, वैसा आज तक कहीं से नहीं मिला था, वे परम्परा से, अनुभव आगम और न्याय से आत्म परमशक्ति की खोज करके हमारे सामने रख रहे हैं। उनकी वाणी इतनी सरल, मधुर और अध्यात्म रस से भरपूर होती है कि जिसे बालक भी सुनकर गद्गद् हो उठता है, उनके सत्संग का लाभ लेनेवाला प्राणी बड़ा भाग्यशाली है।

वे किसी सम्प्रदाय या पन्थ के गुरु नहीं हैं। उनके प्रवचन में भी कहीं साम्प्रदायिकता नहीं झलकती, वे तो जिसके कारण सांसारिक जीव भटक रहे और दु:खी हो रहे हैं, उस आत्मज्ञान की महत्ता बता रहे हैं। आज वे करुणा भाव से पुकार-पुकार कर सोती हुई आत्मशक्ति को जगाने का मन्त्र बता रहे हैं, जिसे सीखकर यह प्राणी अज्ञानता का विष नष्ट करके आत्म सुख-शान्ति की बंशी बजाने लगता है। उन्होंने बताया कि आत्मा में बड़ी शक्ति है। आत्मा की शक्ति और वस्तुस्वरूप का निर्णय कर हम आत्मा का कल्याण कर सकते हैं। और जन्म-मरण से रहित मोक्ष भी प्राप्त कर सकते हैं। उनकी आत्मा परमपवित्र है। वे जो कुछ कहते हैं, शास्त्र से निर्णय कर यथार्थ कहते हैं। जो चीज जीवों ने अनन्त काल से प्राप्त नहीं की तथा कभी सुनी, देखी और अनुभव नहीं की, वह आज उनके पास से मिल रही है। उनका प्रवचन सुन कर ऐसा आनन्द आता है जैसे हम भगवान की साक्षात् वाणी सुन रहे हों, जिन भाईयों को उन महान सन्त के सत्समागम से लाभ उठाना हो वे सोनगढ़ में कुछ समय ठहरकर प्रत्यक्ष अनुभव कर सकते हैं। वहाँ से आपको अपूर्व ज्ञान का अक्षय भण्डार मिलेगा।

अन्त में पूज्य स्वामीजी को विनयभाव से नमस्कार करके, स्वामीजी की दीर्घायु की कामना करता हुआ प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि उनके अपूर्व सिद्धान्त विश्व में जयवन्त हों। ●

जहाँ का कण-कण शुद्धोऽहं बोल रहा है

श्री सुरेन्द्रकुमार जैन कागजी 'दिल्ली'

जहाँ का कण-कण शुद्धोऽहं बोल रहा है, ऐसा यह लोकाकाश है जो कि अन्य समस्त द्रव्यों (जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, व काल) को अवगाहना देता है, यह सब द्रव्य एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं, हर एक में अनन्त गुण होने पर भी प्रत्येक द्रव्य उनके गुण व अनन्त पर्यायें पूर्णरूप से स्वतन्त्र हैं, कोई किसी के आधीन नहीं है, न कोई किसी का कर्ता है, न धर्ता है, न कोई किसी किसी का कर्म है, न कारण है, मतलब यह है, सर्व द्रव्य गुणों की अपेक्षा अथवा पर्याय की अपेक्षा एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं, ऐसा आदेश हमें सर्वज्ञ, वीतरागी श्रीमद्देवाधिदेव तीर्थंकर भगवान के द्वारा प्रदर्शित जैनधर्म में आचार्य परम्परा से अनेक शास्त्रों द्वारा मिलता है। जैन ग्रंथ प्राकृत, संस्कृत, पाली, तमिल, तेलगू, कन्नड़, हिन्दी इत्यादि अनेक भाषाओं में पाये जाते हैं, जिससे सिद्ध होता है कि जैनधर्मावलम्बी आचार्य व विद्वान देश के हर एक कौने में समय-सय पर होते चले आये हैं।

श्रीमद्धेवाधिदेव सर्वज्ञ परमात्मा श्री महावीर भगवान के बाद अनेक आचार्य हुए हैं, जिनमें मुख्यरूप से आचार्यदेव श्री कुन्दकुन्द आचार्य का नाम आता है, आचार्यश्री का नाम गौतम गणधर के बाद गिनती में आता है। जिसका कारण है आचार्य श्री द्वारा रचित ग्रन्थाधिराज श्री समयसार, श्री प्रवचनसार, श्री नियमसार, श्री पंचास्तिकाय, श्री अष्टपाहुड़ आदि अपने दिव्यसन्देश द्वारा अनेक भव्य जीवों का इस संसार समुद्र से उद्धार करते रहे हैं, कर रहे हैं व करते रहेंगे। आचार्यश्री की मूल रचनायें प्राकृत भाषा में हैं, जिन पर संस्कृत टीका परमपूज्य श्री अमृतचन्द्र आचार्यदेव व पद्मप्रभमलधारिदेव जैसे महान विद्वान आचार्यों ने की हैं व अनेक विद्वानों ने भवदु:ख से संतप्त अनेक भव्य जीवों के कल्याणार्थ सरलतर भाषाओं में उन ग्रन्थों पर टीकायें की हैं, जिससे कि कोई भी जीव भाषा ज्ञान न होने के कारण आत्मकल्याण से वंचित न रह जावे।

हम सब जीवों पर श्री कुन्दकुन्द आचार्य, श्री भद्रबाहुस्वामी, श्री उमास्वामी, श्री नेमिचन्द्र आचार्य, श्री अकलंकदेव, श्री गुणभद्रस्वामी, श्री पूज्यपादस्वामी इत्यादि आचार्य देव व पण्डितप्रवर श्री टोडरमलजी, श्री सदासुखजी, श्री बनारसीदासजी, श्री दौलतरामजी इत्यादि का महान उपकार है, जिन्होंने अपनी अनेक रचनाओं द्वारा नाना प्रकार से, संसार समुद्र में डूबते हुए

अनेक भव्य आत्माओं को हस्तावलम्बन दिया है, व उन महान पुरुषों द्वारा रचित ग्रन्थों के दिव्य सन्देश का मर्म सरलतर भाषा द्वारा प्रवचनों द्वारा आज भी परम पूज्य, युगप्रधान, पुरुषोत्तम, आत्मार्थी, परम-उपकारक श्री कानजीस्वामी द्वारा प्राप्त है, यह हमारे महान व अपूर्व पुण्य का उदय है। अब हमारा कर्तव्य है कि उस दिव्य वचनामृत द्वारा, अपने अनादि कालीन भवभ्रमण को नष्ट करके अपने मनुष्यभव को कृतार्थ करें।

सर्व जैनशास्त्रों का आशय एक ही है कि जगत के सभी प्राणी संसार दुखभ्रमण से छुटकारा पाने के लिये अनेक जैनशास्त्रों का अध्ययन करके व उनके भावों को समझकर युक्ति द्वारा, परीक्षा द्वारा, प्रमाण द्वारा अपने जीवन में उतारें, जितने भी जीव व पुद्गल परमाणु है, वह अपने ही द्रव्य में, क्षेत्र में, काल में रहकर अपने-अपने द्रव्य, गुण, पर्याय की स्वतन्त्रता की घोषणा कर रहा है। अत: शास्त्रों द्वारा प्राप्त दिव्यज्ञान दृष्टि से देखा जावे तो 'यहाँ का कण कण शुद्धोऽहं के नारे प्रतिक्षण अपनी पुकार लगा रहा है' और यह मर्म जिस भव्य जीव की समझ में आ गया अथवा जिसने उक्त भावों को सत्समागम द्वारा जीवन में उतार लिया, वह पुरुष धन्य है, व ऐसे ही पुरुषार्थी जीव, जगत उद्धारक सर्वज्ञ, वीतरागी, परमदेवाधिदेव श्री जिनेन्द्र भगवान के सच्चे उपासक, अनुयायी व जैनधर्मावलम्बी कहलाने के हकदार हैं। ●

मनुष्य का जीवन एक जलते हुए दीप के सदृश है। दीपक का जब तक तेल से सम्बन्ध रहता है, दीपक का जलते रहना अनिवार्य है। तेल का पर्यायवाची शब्द स्नेह भी है, जिसे दूसरे शब्दों में राग भी कहते हैं। इसी तरह मनुष्य जब तक परपदार्थ से स्नेह व राग करता है, तब तक उसे जलना पड़ता है अर्थात् उसे दु:खी रहना पड़ता है। जब दीपक का तेल समाप्त हो जाता है तो दीपक का जलना बन्द हो जाता है। इसी तरह जब मनुष्य का राग समाप्त हो जाता है, तो मनुष्य का निर्वाण हो जाता है और चिरन्तन शान्ति छा जाती है।

– दशरथलाल जैन

चंदेरी में शुभागमन के समय

श्रद्धांजलि

(श्री चंपालाल सिंघई, पुरन्दर, एम.ए.)

स्वर्ण-थाल प्राची सज लाई,
मानो देने को उपहार।
मन्द मन्द मलयानिल आया,
उर में सौरभ भरे अपार।।

धन्य नगर यह, धन्य दिवस यह,
और धन्य यह मंगल काल।
करने हमें कृतार्थ कानजी,
स्वामी आये गुण मणि माल।।

जन्म लिया सौराष्ट्र भूमि पर,
उन्नत आज उसी का भाल।
जिसने दिया तृषित वसुधा को,
अनुपम यह माई का लाल।।

उसकी वाणी में अमृत है,
करते जन-जन जिसका पान।
भौतिक युग के अन्धकार में,
करते पथ का अनुसन्धान।।

रहा साधना-धाम सोनगढ़,
पाया तुमने अनुपम बोध।
उसको वितरित करने निकले,
मुक्ति-मार्ग के कंटक शोध।।

आजीवन व्रत-भार सहा है,
और तपाई तप से देह।
उपादान की है प्रधानता,
प्रगट किया तुमने गुणगेह।।

तुमने ज्ञानज्योति जागृत कर,
नष्ट किया है तम अज्ञान।
जीव मात्र को बन्धुभाव से,
तुमने दिया दया का दान।।

युग युग रहे ज्ञान गरिमा की,
गौरव-गाथा नाथ कहान।
भू पर नरगण, नभ में सुरगण,
करें 'पुरन्दर' यश का गान।।

●

卐

मोक्षपथ प्रदर्शक

(श्री कैलाशचन्द्र जैन, बुलन्दशहर)

मैं पूज्यश्री को वर्तमान में एकमात्र मोक्षपथ प्रदर्शक के रूप में देखता हूँ, क्योंकि आज दस वर्ष हुए मैंने सोनगढ़ के श्री कानजीस्वामी का नाम भी नहीं सुना था। चन्द्रकीर्तियात्रा संघ में गया था। रास्ते में सोनगढ़ पड़ा। मैंने वहाँ पर अपने को धन्य समझा और मेरे हृदय में यह पक्की श्रद्धा हो गई कि यह एक महान आत्मा है। जब से मैं प्रत्येक साल में एक बार चन्द महीनों के लिये वहाँ रहता हूँ, तब मैंने जाना कि मेरी श्रद्धा यह सच्ची निकली कि यह एक महान युगप्रवर्तक हैं। वर्तमान में पूज्यश्री प्राणीमात्र को सम्बोधन कर रहे हैं कि हे संसार के प्राणियों! तुम सब सुख चाहते हो और सुख के लिए जब से तुमने होश सम्भाला है प्रयत्न कर रहे हो; लेकिन सुख नहीं मिला। इसलिए हे

संसार के प्राणियों! सुख किसी परवस्तु में नहीं है, सुख अपने अन्दर ही है। यदि अपने अन्दर ही है। यदि अपने अन्दर सुख ढूँढ़ोगे तो प्राप्त होगा। लेकिन अनादि से परिभ्रमण करते हुए इस जीव ने दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा आदि सर्व शुभकृत्य अपनी सामर्थ्य के अनुसार अनन्त बार किये हैं और पुण्य करके अनन्त बार स्वर्ग में देव हुआ तो भी संसार नहीं टला। इसका एकमात्र कारण यही है कि जीव ने अपने आत्मस्वरूप को नहीं जाना और आत्मस्वरूप को समझे बिना सुख प्राप्त होता नहीं। इसलिए आत्मकल्याणार्थ सम्यग्दर्शन प्रगट करना सर्व जीवों का कर्तव्य है। सम्यग्दर्शन कोई परवस्तु नहीं है, सम्यग्दर्शन आत्मा के श्रद्धागुण की पर्याय है। यह कहीं पर से प्राप्त नहीं होगी। अनादि-काल से जीव की पर में एकत्वबुद्धि है, उसे हटाकर अपना लक्ष्य अपनी ओर करें तो सम्यग्दर्शन प्रगट हो जाता है। सम्यग्दर्शन यदि इस समय प्राप्त नहीं किया तो अनन्त काल में दुर्लभ हो जावेगा। पूज्यश्री का कहना है कि जो तू दु:खी है, वह अपने पागलपन से है, किसी ने तुझे पागल नहीं बनाया है। तेरे अन्दर महान शक्ति है। तू अनन्त शक्तिवाला होता हुआ भी पर में पागल हो रहा है, यह तेरे लिए शोभाजनक नहीं है। हे आत्मा! तूने अनादि से पर की ओर देखा है, पर की ओर देखकर अनन्त काल व्यर्थ व्यतीत किया, अब मनुष्यभव पाने पर भी तू यह रोना रेता है, यह ठीक नहीं। धर्म करने के लिए तुझे पर किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं। तू केवल अपनी ज्ञानगुण की एक समय की पर्याय को त्रिाकली द्रव्य की ओर सन्मुख कर दे, तेरा भला हो जावेगा। सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो जावेगी। पूज्य गुरुदेव इस महान शक्ति को अपने में अपने द्वारा श्रद्धा ज्ञान लीनता की ओर प्राणीमात्र को यही सम्बोधन कर रहे हैं कि भाई! अपनी शक्ति को पहिचानो, तुम्हारा कार्य ज्ञाता दृष्टा है, शरीर के कार्य तुम्हारे नहीं हैं। इसी प्रकार 'सद् द्रव्यलक्षणम्' 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्' जैसे महान अलौकिक मन्त्रों को इतना स्पष्ट किया कि ६ द्रव्यों में उनके गुणों में उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य एक समय में ही होता है, पृथक्-पृथक् नहीं। देखो जबकि ६ द्रव्यों में अनादि-अनन्त उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होता है, इस महान सिद्धान्त को स्वीकार कर लेने पर निमित्त है तो कार्य हुआ, इस बात के लिए अवकाश ही कहाँ है? उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य ६ द्रव्यों की अनादि अनन्तता बताता है। अनादि-अनन्त रहते हुए भी उत्पाद-व्यय होता है, वह भी उसी समय सबमें हो रहा है, ऐसा जानकर जीव का पर की ओर देखना नहीं रहा।

इसी प्रकार निश्चय के बिना व्यवहार नहीं होता। जबकि हमारे पास सोना हो, तभी ताम्बे का सोने में उपचार कहला सकता है। वह भी जबकि हम दोनों की पृथकता को मानें। तब निश्चय के साथ ही व्यवहार नाम पाता है। अज्ञानी बाहरी क्रियाओं को व्यवहार मानता है जो कि ठीक नहीं।

आत्मा का व्यवहार आत्मा से अलग कैसे हो, अपनी आत्मा को जाना और जाना कि यह राग है, यह अलग है, हेय है, यह आत्मा ही उपादेय है तो राग को हेय जाना, आत्मा को उपादेय माना, तब निश्चय उपादेय और व्यवहार हेय कहलाया। निश्चय व्यवहार द्रव्यसंग्रह में भी एक ही साथ बतलाया है। उपादान निमित्त के सम्बन्ध में वस्तु में अपनी योग्यता से कार्य होता है, लेकिन निमित्त का, कार्य में अकिंचित्करपना है। उपादान और निमित्त दोनों का परिणमन एक दूसरे से स्वतन्त्र है। जीव निमित्ताधीन-पराश्रितबुद्धि से ही संसार में भटक रहा है। इसलिए पूज्य गुरुदेव जीव की निमित्ताधीन दृष्टि हटने का और स्वभाव सम्मुख होने का बारम्बार उपदेश दे रहे हैं।

दस वर्ष पहले मैं भी पुण्य को अच्छा, पाप को बुरा मानता था, लेकिन पूज्य गुरुदेव ने बतलाया पाप तो बुरा है ही, पुण्य, पाप दोनों एक ही हैं। आस्रव हैं, अपवित्र हैं, दुःख देनेवाले हैं; इसलिए पुण्य-पाप रहित अपनी आत्मा को जानो, तभी कल्याण हो सकता है।

जड़ की क्रिया पुद्गल की ही क्रिया है। और विकार की क्रिया यह भी आत्मस्वभाव से पृथक् है। इसलिए अपने स्वभाव में सन्मुख होने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप जो क्रिया है, वह धर्म की क्रिया है।

कहने का तात्पर्य यह है कि पूज्यश्री ने तमाम विषयों पर इतना स्पष्टीकरण किया है कि यदि कोई इसे समझपूर्वक, विवेकपूर्वक विचारे और सत्समागम करे, और सम्यग्दर्शन न हो, यह कभी नहीं हो सकता है। सम्यग्दर्शन आसान है। अज्ञानी जीव उसे मुश्किल कहता है। पूज्य गुरुदेव को मैं इन कारणों से युक्ति, आगम, अनुभव से एक महान मोक्षपथ प्रदर्शक के रूप में पाता हूँ। उन्हें मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

पूज्यश्री को मैंने कई बार स्वप्न में भावलिंगी सन्त के रूप में देखा है। वर्तमान में भावलिंगी सन्त का दर्शन दुर्लभ हो रहा है लेकिन मैंने सत्गुरुदेव को भावलिंगी सन्त के रूप में धर्मोपदेशक जाना है और उनके आहारदान का निमित्त भी मैं ही बना हूँ। इसलिए मैं उनको भावलिंगी सन्त के रूप में बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

करीब एक वर्ष हुआ, मैंने स्वप्न में पूज्य श्री को तीर्थंकर के रूप में साक्षात् समवसरण में विराजमान देखा। मैं इन सब बातों से निश्चय करता हूँ कि पूज्य गुरुदेव आगामी तीर्थंकर होनेवाले हैं और वर्तमान में तीर्थंकर जैसा ही कार्य कर रहे हैं। इसलिए अपना हित चाहनेवालों को इस मौके से चूकना नहीं चाहिए। मेरे अपने विचार से इस समय यदि किसी का भला होना है तो उसमें पूज्य

श्री ही निमित्त हो सकते हैं। ऐसा मेरा निश्चय है। वर्तमान में किसी की हस्ती नहीं जो गुरुदेव की वाणी का विरोध करे, क्योंकि गुरुदेव की वाणी तीर्थंकरों, कुन्दकुन्दादि आचार्यों की वाणी है। इन्होंने आज तक अपने पास से कुछ नहीं कहा; जो तीर्थंकरों ने कहा, गणधरों ने कहा, मुनियों ने कहा वही पूज्य गुरुदेव वर्तमान में सोनगढ़ से संसार के प्राणियों को मोक्षमार्ग के नाविकरूप से सम्बोध रहे हैं। गुरुदेव का विरोध तीर्थंकरों का विरोध है। इसलिए समझदार प्राणी अपना कल्याण जल्दी करें। यह मानुषभव फिर नहीं मिलेगा, ऐसा सुयोग फिर दुर्लभ हो जावेगा। अन्त में पूज्यश्री के प्रति उनके चरणों में भक्तिभाव सहित अगणित नमस्कार करता हूँ और भावना भाता हूँ कि पूज्यश्री के द्वारा संसार का कल्याण होता रहे। ●

卐

भारत की जनता द्वारा हार्दिक अभिनन्दन

स्वामीजी ने दक्षिण और उत्तर भारत की तीर्थ यात्रा करते हुए जिस ग्राम-नगर में पदार्पण किया, वहाँ के बन्धुओं ने धर्मप्रेमवश भक्तिपूर्वक अपूर्व सम्मान किया था। सैकड़ों स्थानों से आपको कई सौ अभिनन्दन पत्र भी भक्तिपूर्वक समर्पित किये गये थे, जिनमें आपके गुणों की प्रशंसा और सम्यग्ज्ञान प्रचार की महता प्रदर्शित की गई है। उनमें से कुछ प्रमुख अभिनन्दन पत्रों के नगर व संस्थाओं के नाममात्र नीचे दिये जा रहे हैं -

- दिगम्बर जैन परिषद, दिल्ली,
- वीर सेवा मन्दिर, दिल्ली
- जैन समाज, कलकत्ता
- दिगम्बर जैन समाज, मद्रास
- दिगम्बर जैन महिला समाज, कोटा
- दक्षिण भारत संघ, वांदीवास
- कांची जैन साहित्य संघ, कांचीपुरम
- एस० अपपन्डेराज जैन रिटायर्ड, पुलिस सुपरिटेन्डेन्ट, ट्रस्टी-त्रिलोकनाथस्वामी मन्दिर तिरुप्परुत्तिकुन्नम-कांजीवरम् (चंगलपट्ट)
- दिगम्बर जैन समाज, जयपुर
- दिगम्बर जैन समाज, फतेहपुर
- दिगम्बर जैन पंचान, सहारनपुर
- जैन समाज, राजगृही
- दिगम्बर जैन समाज, कोटा

- प्रन्धकारणी कमेटी एवं समस्त प्रान्तवासी
- दिगम्बर जैन समाज, अहारजी क्षेत्र
- दिगम्बर जैन समाज, मलकापुर
- दिगम्बर जैन वीर सेवादल, शाहपुर
- दिगम्बर जैन समाज, जबलपुर
- छात्र गण, वीर जैन छात्रावास, लश्कर
- दिगम्बर जैन समाज, ग्वालियर
- दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल, दाहौद
- दिगम्बर जैन समाज, बम्बई
- महावीर दिगम्बर जैन कालेज, आगरा
- सकल दिगम्बर जैन समाज, आगरा
- महावीर जैन युवक समिति, गया
- दिगम्बर जैन नवयुवक संघ, कानपुर
- कुन्थुसागर दिगम्बर जैन हाईस्कूल मदनगंज-किशनगढ़
- सकल दिगम्बर जैन समाज, खैरागढ़ (म०प्र०)
- जैन मुमुक्षु मण्डल, देहली
- दिगम्बर जैन समाज, सागर
- दिगम्बर जैन महिला आश्रम, सागर
- गणेश दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय, सागर
- दिगम्बर जैन समाज, दमोह आदि

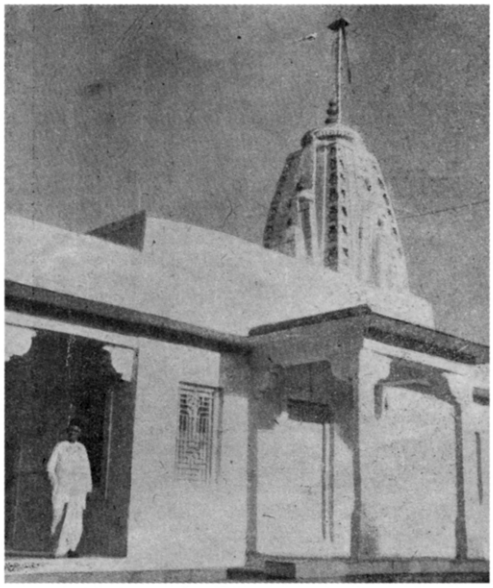

श्री शान्तिनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर, सुरेन्द्रनगर (गुजरात)

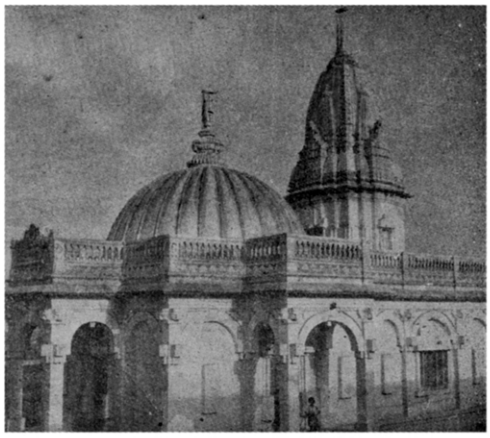

श्री श्रेयांसनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर, बोटाद (सौराष्ट्र)

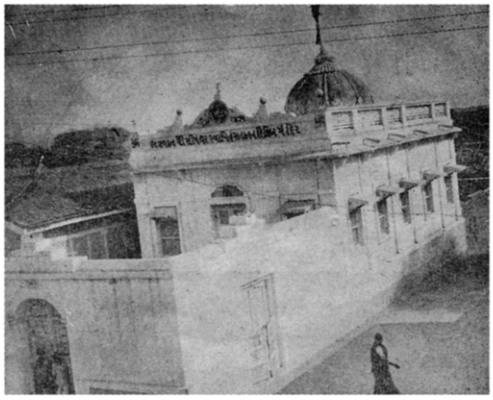

श्री सीमन्धरस्वामी दिगम्बर जैन मन्दिर, लाठी

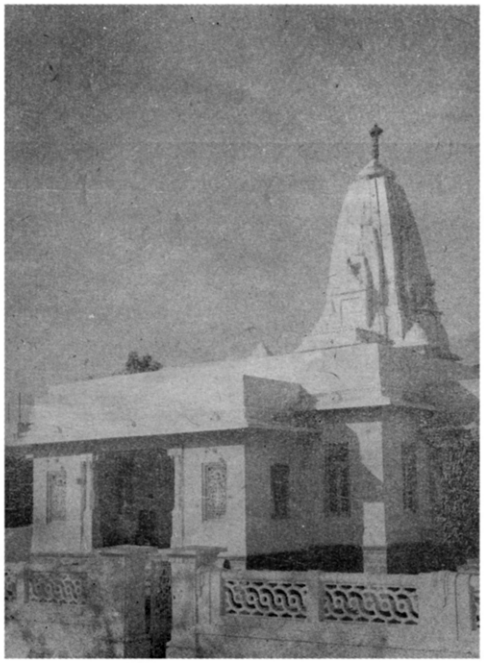

श्री दिगम्बर जैन मन्दिर, राजकोट शहर

श्री जैन विद्यार्थी गृह, सोनगढ़

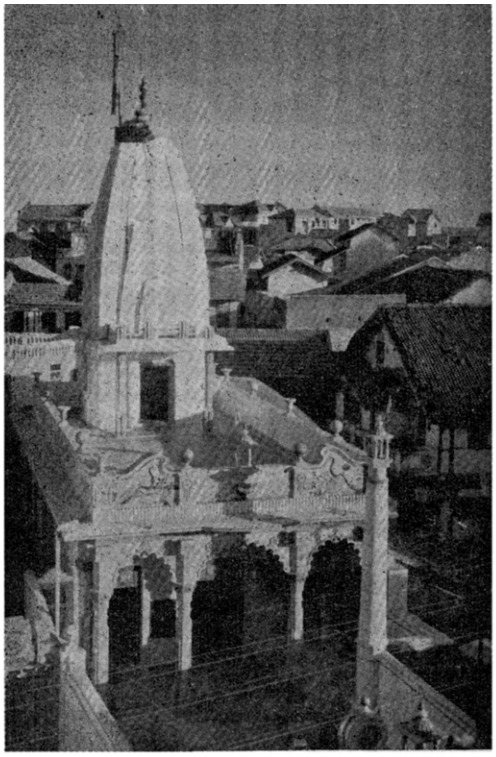

श्री दिगम्बर जैन मन्दिर, सावरकुण्डला

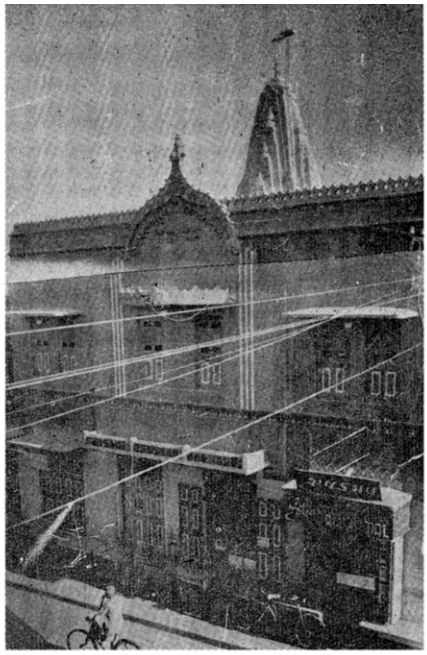

श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर,
पोरबन्दर (सौराष्ट्र)

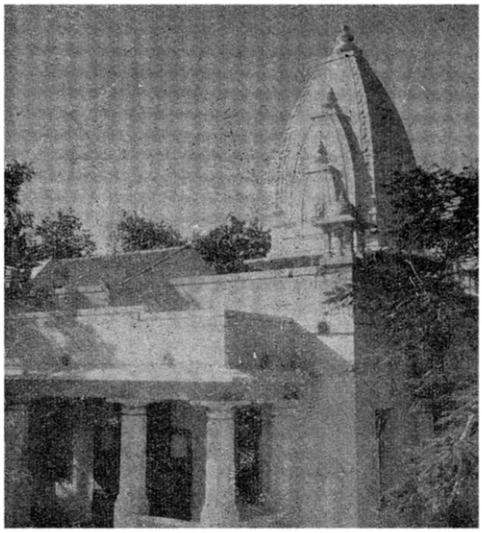

श्री दिगम्बर जैन मन्दिर, बांकानेर (सौराष्ट्र)

श्री महावीर दिगम्बर जैन मन्दिर,
जामनगर (सौराष्ट्र)

सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के ७३वें जन्मोत्सव पर ७३ पुष्पों की–

स्वयंभू आत्मा की मंगलमाला

(श्री ब्रह्मचारी हरिलाल जैन)

वैशाख शुक्ला २ को गुरुदेव का पावन जन्म दिवस है...। गुरुदेव ने भव्यजीवों का महान उपकार किया है। जिस महापुरुष के प्रताप से भवभ्रमण छूटने का मार्ग मिला हो, उस महात्मा के जन्मोत्सव पर भक्तों के हृदय में भक्ति की विशेष उर्मियाँ जागृत होना स्वाभाविक ही है। उन उर्मियों को व्यक्त करने का विचार आया तो सोचा कि गुरुदेव के जन्मोत्सव पर कोई ऐसी वस्तु अपूर्ण करना चाहिए जो उन्हें प्रिय हो। आत्मा का 'स्वयंभू' पना गुरुदेव को अत्यन्त प्रिय है; वे बारम्बार उसका स्मरण करते हैं। इसलिए 'स्वयंभू' की महिमा सम्बन्धी जो पुष्प उनके मुखारविन्द से समय–समय पर प्रगट हुए हैं, उन्हीं में से ७३ पुष्पों की यह मंगल–माला गूँथकर गुरुदेव को अर्पित कर रहा हूँ।

१– आत्मा 'स्वयंभू' है, क्योंकि अन्य कारकों की अपेक्षा बिना, स्वयमेव छह कारकरूप होकर, स्वयं ही सर्वज्ञ होता है।

२– शुद्धोपयोग द्वारा शुद्धात्मस्वभाव की प्राप्ति होती है, वह अन्य कारकों से निरपेक्ष है।

३– शुद्धोपयोग से आत्मा अपने ही आश्रय से केवलज्ञान प्राप्त करता है, इसलिए वह अत्यन्त स्वाधीन है।

४– हे जीव! अपने स्वभाव का आश्रय करके उसी को अपनी सर्वज्ञता का साधन बना, बाह्य में मत ढूँढ़।

५– जिस प्रकार सर्वज्ञ हुआ आत्मा 'स्वयंभू' है, उसी प्रकार सम्यग्दर्शनादि में भी आत्मा स्वयंभू है।

६– शुद्धोपयोग की भावना के प्रभाव से आत्मा सर्वज्ञ होता है, वह शुद्धोपयोग आत्मा के ही आधीन है।

७– उपयोग को अन्तर्मुख करना ही आत्म–प्राप्ति का उपाय है।

८– स्वयंभू आत्मा की जो सिद्धदशा हुई, सो हुई; उसका फिर कभी अभाव नहीं होता।

९– स्वयंभू आत्मा की संसारदशा गई, सो गई; अब फिर कभी संसारी नहीं होगा।

१०– शुद्धोपयोग के प्रसाद से हुई ऐसी शुद्धात्मस्वभाव की प्राप्ति प्रशंसनीय है।

११– अन्य किसी कर्ता की अपेक्षा बिना, आत्मा स्वयं ही कर्ता होकर स्वयं सर्वज्ञ हुआ है, इसलिए वह 'स्वयंभू' है।

१२– अन्य किसी कर्ता की अपेक्षा बिना, आत्मा स्वयं ही सर्वज्ञतारूप कार्य में परिणत हुआ, इसलिए वह 'स्वयंभू' है।

१३– अन्य किसी साधन (कारण) की अपेक्षा बिना, आत्मा स्वयं ही करण (साधन) होकर सर्वज्ञ हुआ है, इसलिए वह 'स्वयंभू' है।

१४– अन्य किसी सम्प्रदान की अपेक्षा बिना, आत्मा स्वयं ही सम्प्रदान होकर सर्वज्ञ हुआ है, इसलिए वह 'स्वयंभू' है।

१५– अन्य किसी अपादान की अपेक्षा बिना, आत्मा स्वयं ही अपादान होकर सर्वज्ञ हुआ है, इसलिए वह 'स्वयंभू' है।

१६– अन्य किसी आधार की अपेक्षा बिना, आत्मा अपने स्वभाव के आधार से ही सर्वज्ञ हुआ है, इसलिए वह 'स्वयंभू' है।

१७– हे जीव! सर्वज्ञ होने की सामग्री (छहों कारक) तेरे स्वभाव में ही हैं, इसलिए बाह्य सामग्री ढूँढ़ने की आकुलता छोड़.... और स्वभाव में उपयोग को लगाकर उसी को साधन बना।

१८– राग में ऐसी शक्ति नहीं है कि वह आत्मा की सर्वज्ञता अथवा सम्यक्त्वादि का साधन हो सके।

१९– अपने स्वभाव को साधने के लिये आत्मा को यदि पर की या राग की अपेक्षा लेना पड़े तो वह 'स्वयंभू' नहीं किन्तु पराधीन हुआ; पराधीनता में सुख कैसे हो सकता है?

२०– सुख उसे कहते हैं, जिसमें स्वाधीनता हो, जिसमें दूसरे की अपेक्षारूप पराधीनता न हो।

२१– शुद्धोपयोग के प्रभाव से स्वयंभू हुए सर्वज्ञ आत्मा को इन्द्रियों के बिना ही परिपूर्ण ज्ञान तथा आनन्द होता है, क्योंकि आत्मा का स्वभाव ही ज्ञान और आनन्द है।

२२– स्वभाव को पर की अपेक्षा नहीं होती, इसलिए स्वयमेव परिपूर्ण ज्ञान और आनन्दरूप परिणमित स्वयंभू आत्मा को अपने ज्ञान के लिये इन्द्रियविषयों की अपेक्षा नहीं है।

२३– जिस प्रकार सर्वज्ञ हुए आत्मा का ज्ञान या सुख इन्द्रियविषयों में से नहीं आता, उसी प्रकार जगत के किसी भी आत्मा का ज्ञान या सुख इन्द्रिय विषयों में से नहीं आता।

२४– धर्मी जानता है कि ज्ञानस्वभावोऽहं..... आनन्दस्वभावोऽहं।

२५– अन्य किन्हीं भी कारकों की अपेक्षा बिना, शुद्धोपयोग के प्रसाद से स्वयमेव छह कारकरूप होकर जो केवलज्ञानरूप से तथा अतीन्द्रिय परमानन्दरूप से प्रकट हुआ ऐसे 'स्वयंभू' आत्मा की प्रशंसा करके श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव केवलज्ञानरूपी सुप्रभात के गीत गाते हैं, उसका बहुमान करते हैं।

२६– अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्दरूपी जो मंगल सुप्रभात उदित हुआ, वह प्रशंसनीय है, वह आदरणीय है, वह मंगल प्रभात सदा जयवन्त रहेगा।

२७– आत्मा के ज्ञानानन्दस्वभाव की प्रतीति करना भी सम्यक्त्वरूपी मंगलप्रभात है, वह भी आनन्दरूप है।

२८–अहा! इन्द्रियों तथा राग के बिना ही ज्ञान और आनन्द होते हैं – यह बात स्वभावोन्मुख हुए बिना नहीं जम सकती।

२९– अनादि से अज्ञानी जीवों को देहबुद्धि के कारण इन्द्रिय विषयों में ही सुख की कल्पना है, अतीन्द्रिय आत्मसुख का लक्ष्य भी नहीं है, इसलिए 'स्वयंभू' आत्मा के ज्ञान और सुख की बात सुनने पर उसे प्रश्न उठता है कि – इन्द्रियों के बिना ही ज्ञान और सुख किस प्रकार होता है? रूप–रस–गन्ध आदि किसी भी पदार्थ के बिना ही ज्ञान और सुख कैसे हो सकता है?

३०– आचार्यदेव परम करुणापूर्वक समझाते हैं कि भाई! इन्द्रियविषयों में तुझे जिस सुख की कल्पना है, वह मिथ्या है, उनमें सुख नहीं है; इन्द्रिय विषयों की ओर की आकुलता तो दु:ख ही है। इसी प्रकार इन्द्रियों के अवलम्बन में अटकने से ज्ञान का विकास रुकता है।

३१– भाई! एक बार तू भेदविज्ञान द्वारा इन्द्रियों से भिन्न होकर अपने अतीन्द्रिय आत्मा को लक्ष्य में तो ले, इन्द्रियों के बिना ही ज्ञान और सुख किस प्रकार होता है, उसका विश्वास तुझे अपने स्वभाव के अवलम्बन से ही हो जायेगा। फिर 'स्वयंभू' ऐसे सर्वज्ञ के ज्ञान और सुख का निर्णय भी तुझे हो जायेगा।

३२– इन्द्रिय–विषयों में तथा राग में ही सुख की कल्पना करके जो उसमें लीनतारूप वर्तन करे, उसे अतीन्द्रिय आत्मा के सुख का निर्णय कहाँ से होगा?

३३– राग के एक विकल्प को भी जो जीव सुख का या ज्ञान का साधन मानता है, वह इन्द्रिय विषयों में ही सुख मानता है, आत्मा के 'स्वयंभू' स्वभाव को वह नहीं मानता।

३४– राग को साधन माना, तो जहाँ राग नहीं, वहाँ सुख नहीं– ऐसा उसकी मान्यता में आया, इसलिए रागरहित अतीन्द्रिय वीतरागी सुख की उसे श्रद्धा नहीं हुई। जब अतीन्द्रिय सुख की श्रद्धा भी न हो, तब उसका उपाय कहाँ से करेगा?

३५– 'अहा, शुद्धोपयोग ही मेरे ज्ञान और आनन्द का उपाय है!'– ऐसा निर्णय करते ही जीव की परिणति अन्तर्मुख हो जाती है और बाह्य में उछलकूद बन्द हो जाती है।

३६– शुद्धोपयोग का अर्थ क्या? शुद्ध आत्मस्वभाव में उपयोग की एकाग्रता ही शुद्धोपयोग है, उसे राग या विकल्प का अवलम्बन नहीं है।

३७– आत्मदशा का अपूर्व 'परिवर्तन' कैसे होता है? ज्ञान और राग का भेदज्ञान करने से अनादि कालीन अज्ञान का नाश होकर अपूर्व सम्यग्ज्ञान प्रगट होता है, वही अपूर्व परिवर्तन है।

३८– चैतन्य का भान करके फिर जो मुनि हुए और अतीन्द्रिय रस के अनुभव में जिन्होंने जीवन बिता दिया – ऐसे महान सन्त का वह कथन है।

३९– यह बात किसे समझाते है? – कि जो तृषातुर है, जिसे आत्मरस का पान करना है, जो अनादि कालीन अज्ञानदशा को बदलकर ज्ञानदशा प्रगट करना चाहता है तथा उसका उपाय विनय से पूछा है, ऐसे शिष्य को आचार्यदेव भेदज्ञान की यह बात समझाते हैं।

४०– भाई! तेरा 'स्वयंभू' आत्म रागादि परभावों से अत्यन्त निरपेक्ष है, राग की अपेक्षा बिना वह स्वयं और आनन्दयप होता है।

४१– 'विद्वान्' किसे कहा जाता है? – कि जो भेदज्ञानयुक्त हो, स्वयंभू आत्मा को राग से भिन्न जानकर जो भेदज्ञान करे, वही सच्चा विद्वान है।

४२– आत्मा का अस्तित्व जो पर के कारण मानता है, वह जीव 'स्वयंभू' आत्मा को नहीं जानता, इसलिए अज्ञानी है, मूढ़ है।

४३– जिस प्रकार शुद्धोपयोग द्वारा केवलज्ञान और पूर्ण आनन्द साधने के लिए किसी विकल्प का या बाह्य पदार्थ का अवलम्बन नहीं है, उसी प्रकार केवलज्ञान होने के बाद भी उस आत्मा को अपने पूर्णज्ञान व आनन्द के लिए किसी विकल्प का या पर का अवलम्बन नहीं है। पर के या विकल्प के अवलम्बन बिना – स्वयमेव ही वह आत्मा पूर्ण ज्ञान और आनन्दरूप से परिणमित होता है, इसलिए वह 'स्वयंभू' है।

४४– जो स्वयं अपने से ही ज्ञानस्वरूप हो, उसे अपने ज्ञान के लिए दूसरे की अपेक्षा क्यों होगी? तथा जो स्वयं अपने से ही सुखस्वरूप हो, उसे अपने सुख के लिये दूसरे की आधीनता

क्यों होगी? – नहीं हो सकती; इसलिए स्वयमेव ज्ञान और सुखरूप परिणमन होनेवाले 'स्वयंभू' भगवान को इन्द्रियों के बिना ही ज्ञान और सुख होता है।

४५– देखो, यह केवलज्ञान की महिमा है! ऐसा केवलज्ञान शुद्धोपयोग के प्रसाद से होता है। किन्तु जो केवलज्ञान को ही नहीं मानता, उसे शुद्धोपयोग का प्रसाद कैसा?

४६– मैं ज्ञायकस्वभाव हूँ – ऐसी प्रतीति के बिना सर्वज्ञ की प्रतीति कैसी? – और शुद्धोपयोग कहाँ से? ज्ञानस्वभावोन्मुख हो, उसी को केवलज्ञान की प्रतीति होती है तथा उसी को शुद्धोपयोग का प्रसाद (केवलज्ञान) प्राप्त होता है।

४७– रागरूप शुभोपयोग के प्रसाद से केवलज्ञान तो नहीं होता किन्तु केवल क्लेश होता है। शुभ को प्रसन्न करने जायेगा तो उसके प्रसाद से संसार क्लेश की प्राप्ति होगी। और शुद्धोपयोग को प्रसन्न करेगा तो उसके प्रसाद से केवलज्ञान प्राप्त करके स्वयंभू परमात्मा हो जायेगा।

४८– जिस प्रकार केवलज्ञान होने में शुद्धोपयोग के अतिरिक्त अन्य कोई कारण नहीं है, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन होने में भी शुद्धात्मा की प्रतीति के अतिरिक्त अन्य कोई कारण नहीं है, नवतत्त्वों के विकल्प भी सम्यग्दर्शन में कारणभूत नहीं हैं।

४९– केवलज्ञान के लिए शुद्धोपयोग के अतिरिक्त अन्य को (–रागादि को) साधन मानना केवलज्ञान का अनादर है, उसमें शुद्धोपयोग का भी अनादर है, धर्म का अनादर है, मोक्ष का अनादर है और मोक्ष के साधक शुद्धोपयोगी सन्तों का भी अनादर है। – इस प्रकार उस विपरीत मान्यता में महान अपराध है, जो संसार का कारण है।

५०– शुद्धोपयोग तो केवलज्ञान का राजमार्ग है और शुभराग केवलज्ञान को रोकनेवाला लुटेरा है। राग को धर्म का साधन माने, वह राजमार्ग का अपराधी है; वह 'राजमार्गी' नहीं किन्तु 'रागमार्गी' अर्थात् संसारमार्गी है।

५१– शुद्ध अनन्त शक्तिवान ज्ञानरूप परिणमित होने का आत्मा का स्वभाव ही है; फिर दूसरा साधन क्यों होगा? आत्मा स्वभाव से ही केवलज्ञानस्वरूप हो जाता है, इसलिए वह 'स्वयंभू' है। स्वयं अपने आप छह कारकरूप होकर केवलज्ञानरूप होता है, इसलिए 'स्वयंभू' है।

५२– एक तो कुन्दकुन्दाचार्यदेव की अद्भुत रचना और उसी पर अमृतचन्द्राचार्यदेव की टीका भरतक्षेत्र में अद्वितीय है। पंचम काल में अमृत बहाया है।

५३– आत्मा का ज्ञान और सुखस्वभाव तो महामंगल है; उसकी श्रद्धा करने से आत्मा में अपूर्व मंगलप्रभात का उदय होता है। सम्यग्दर्शन तो अपूर्व मंगलप्रभात है।

५४- आत्मा के निरपेक्ष ज्ञान और सुखस्वभाव की जिसने श्रद्धा की, वह परभावों से उदासीन होकर अपने स्वरूप में परिणमित होने लगा। (गृहस्थदशा में भी यह मार्ग शुरु हो सकता है।)

५५- फिर स्वरूपोन्मुख परिणमित होने पर ज्यों-ज्यों काल व्यतीत होता है, त्यों-त्यों केवलज्ञान अधिक निकट आता रहता है...। एक समय में एक पर्याय परिणमित होती है और एक-एक समय केवलज्ञान निकट आता है।

५६- आचार्यदेव स्वयं ऐसी दशा में झूल रहे हैं और केवलज्ञान को साध रहे हैं...। उनकी आत्मा से निकला हुआ यह परम सत्य है।

५७- इन्द्रियाँ जड़स्वरूप हैं, उनसे ज्ञान नहीं होता। ज्ञानस्वरूपी आत्मा स्वयं ही, इन्द्रियों से निरपेक्ष ज्ञानरूप परिणमित होकर जानता है।

५८- ज्ञान की भाँति आत्मा का सुखस्वभाव भी इन्द्रियों के आधीन नहीं है; सिद्ध भगवन्त अपने स्वभाव से ही सुखरूप परिणमित हो रहे हैं।

५९- आत्मा के ऐसे निरपेक्ष ज्ञान और सुखस्वभाव को रुचिपूर्वक... आदरपूर्वक... उल्लासपूर्वक जो स्वीकार करता है, वह जीव आसन्न भव्य है... अल्प काल में वह स्वयं इन्द्रियों से पार पूर्ण ज्ञान और सुखस्वरूप स्वयंभू-परमात्मा हो जायेगा।

६०- अहा, देखो यह स्वभाव के साथ सम्बन्ध जोड़ने की कथा, पर के साथ का सम्बन्ध तोड़ने की रीति! - इस रीति से संसार छूटता है और सर्वज्ञता प्राप्त होती है।

६१- आत्मा के ज्ञान-आनन्द स्वभाव की प्रतीति करनेवाला जीव अपने केवलज्ञान को अपने में ही देखता है; केवलज्ञान के लिये दूसरे किन्हीं भी कारकों की अपेक्षा उसकी दृष्टि से छूट जाती है।

६२- केवलज्ञान प्राप्त करने के लिये आत्मा को कहीं बाहर नहीं जाना पड़ता, तथा दूसरों की ओर नहीं देखना पड़ता, अपने से भिन्न अन्य कोई सामग्री नहीं ढूँढ़ना पड़ती; इसलिए बाहर का कोई कारण ही नहीं है। आत्मा अपने में ही रहकर स्वयमेव छह कारकरूप होकर स्वयं केवलज्ञानरूप से प्रगट होता है, इसलिए 'स्वयंभू' है।

६३- देखो, यह आत्मरस! आत्मरसिक होकर ऐसे स्वयंभू आत्मा की भावना करने से अपूर्व आत्मरस के झरने फूटते हैं।

६४- 'स्वयंभू' हुए आत्मा की प्रशंसा करते हुए आचार्यदेव कहते हैं कि अहा! शुद्धोपयोग के सामर्थ्य से घातिकर्मों का क्षय करके 'यह' आत्मा स्वयं ही ज्ञान और सुखरूप से प्रसिद्ध हुआ है।

६५- देखो, आचार्यदेव की अद्भुत शैली! यह... आत्मा ऐसा कहकर, स्वयंभू-सर्वज्ञ भगवन्तों को अपने ज्ञान में प्रत्यक्ष करके, मानों अपना आत्मा भी शुद्धोपयोग के बल वे वर्तमान में केवलज्ञान और सुखरूप से परिणमित हो रहा हो! ऐसे अद्भुत ढंग से स्वयंभू आत्मा का गुणगान किया है।

६६- अहो, आत्मा के उस पल को... उस क्षण को धन्य है कि जिस पल में... जिस क्षण में चैतन्य के शुद्धोपयोग के सामर्थ्य से वह स्वयं ही परिपूर्ण ज्ञान और सुखरूप होकर स्वयंभू होगा और इसी प्रकार पूर्ण ज्ञान-आनन्दरूप से स्वयं सादि-अनन्त काल तक बना रहेगा।

६७- वे आत्मा भी धन्य हैं कि - जो स्वयंभू होकर अपने अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द में सादि-अनन्त विराज रहे हैं।

६८- वे आत्मा भी धन्य हैं कि जो ऐसे पूर्ण ज्ञान और आनन्द की अपूर्व आराधना कर रहे हैं।

६९- जिसका उदय ज्ञानप्रकाश से भरपूर तथा आनन्ददायक हैं - ऐसे स्वयंभू-सुप्रभात का उदय जयवन्त हो!

७०-जिन्हें जानने से आत्मा के ज्ञान-आनन्दस्वभाव की पहिचान होती है - ऐसे ज्ञान-आनन्दमय स्वयंभू सर्वज्ञ परमात्मा को नमस्कार हो।

७१- निज कारणपरमात्मारूप परमपारिणामिकभाव में स्थित ऐसा नित्य स्वरूप प्रत्यक्ष अन्त:तत्त्व-परमतत्त्व में अभेद-एकमेक होने का उपाय ही जिनशासन का प्रयोजन है।

७२- जिसे आत्मा का कल्याण करना हो, उसे ज्ञानस्वभावी आत्मा का निर्णय करके उसका रागादि से भिन्न अनुभव करना चाहिए, यही उपाय है।

७३- अन्य कारकों से निरपेक्ष ऐसे 'स्वयंभू' आत्मा की प्रतीति करनेवाले.... और 'स्वयंभू' होने का सत्य मार्ग दर्शानेवाले गुरुदेव को ७३वें मंगल जन्मोत्सव प्रसंग पर हमारा नमस्कार हो!

●

मेरा सुख पर में है - जिसकी ऐसी बुद्धि है वह जीव, भले ही उसके पास करोड़ों रुपये हों और मेवा-मिष्टान्न खाता हो, तथा सोने के हिंडोले में झूलता हो, तथापि आकुलता से दु:खी ही है। आनन्दधाम ऐसे स्वतत्त्व की महिमा छोड़कर पर की महिमा की, वही दु:ख है।

- पूज्य गुरुदेव

प्रवचन

व्यवहारनय से कल्याण क्यों नहीं?

'अहो! यह पर से भिन्न मेरे ज्ञायकतत्त्व की बात है; अपने ज्ञायकतत्त्व की प्रतीति करने में किसी राग का आवलम्बन है ही नहीं' – ऐसे लक्ष्यपूर्वक एकबार भी जो जीव यह सुने, यह भव्य जीव अवश्य ही अल्प काल में मुक्ति प्राप्त करता है। यह यों ही सुन लेने की बात नहीं है, किन्तु सुननेवाले पर निर्णय करने की जिम्मेवारी है।

अज्ञानी लोग कहते हैं कि भाई! व्यवहार करते-करते धर्म हो जायेगा, किन्तु वह मूढ़ता है। अरे भाई! जब उस राग और भेद को व्यवहार भी तब कहा जाता है, जब उस राग और भेद से पार – ऐसे भूतार्थ आत्मस्वभाव की दृष्टि हो। जिसे ऐसी दृष्टि तो हुई नहीं है और राग तथा भेद के आश्रय से धर्म होना मानता है, वह तो अधर्म का ही पोषण करता है। ऐसे जीव ने धर्म की कथा (शुद्ध आत्मा की कहानी) वास्तव में कभी सुनी ही नहीं है किन्तु बन्ध की ही कथा सुनी है। वह भगवान की वाणी सुन रहा हो, उस समय भी वास्तव में तो वह बन्धकथा ही सुन रहा है, क्योंकि उसकी रुचि का बल बन्धभाव पर है – अबन्ध आत्मस्वभाव की ओर उसकी रुचि का बल नहीं है। भले ही वह समवसरण में बैठा हो और साक्षात् तीर्थंकर भगवान की वाणी कानों में पड़ रही हो, किन्तु उस समय जिस जीव की मान्यता ऐसी है कि – 'ऐसी श्रेष्ठ वाणी सुनने से ही मुझे ज्ञान हुआ है' – तो वह जीव वास्तव में भगवान की वाणी नहीं सुनता किन्तु बन्धकथा ही सुनता है; भगवान की वाणी का अभिप्राय वह समझा ही नहीं है।

अनन्त बार समवसरण में जाकर अज्ञानी ने क्या किया? – कहते हैं बन्धकथा ही सुनी। 'निमित्त से मेरा ज्ञान नहीं होता, राग से भी मेरा ज्ञान नहीं होता, और न मेरा ज्ञानस्वभाव राग का कर्ता है; मैं ज्ञानस्वभाव हूँ, ज्ञानस्वभाव के अवलम्बन से ही मेरा ज्ञान होता है'-ऐसी ज्ञानस्वभाव की रुचि और सन्मुखतापूर्वक जिसने ज्ञानी के निकट जाकर एक बार भी शुद्ध आत्मा की कथा सुनी है, वह जीव अल्प काल में मुक्ति प्राप्त किये बिना नहीं रहेगा। श्री पद्मनन्दि मुनिराज कहते कि-

तत्प्रति प्रीतिचित्तेन येन वार्तापि हि श्रुता।
निश्चितं स भवेद्भव्यो भाविनिर्वाणभाजनम्।।

राग की प्रीति नहीं, व्यवहार की प्रीति नहीं, किन्तु शुद्धचैतन्यस्वरूप आत्मा की प्रीति

करके.... उसके प्रति उल्लास से जिस जीव ने उसकी कथा सुनी है, वह जीव अवश्य मुक्ति प्राप्त करता है।

'अहो! यह पर से भिन्न मेरे ज्ञायकतत्त्व की बात है, अपने ज्ञायकतत्त्व की प्रतीति करने में किसी राग का अवलम्बन है ही नहीं – ऐसे लक्षपूर्वक अर्थात् स्वभाव की ओर के उत्साहपूर्वक जो जीव एक बार भी यह बात सुने, वह भव्य जीव अवश्य ही अल्प काल में मुक्ति प्राप्त करता है। देखो, यों ही सुन लेने की बात नहीं है, किन्तु श्रोता पर निर्णय करने की जिम्मेवारी है। अनादि से जो माना था, उसमें और इस बात में मूलभूत अन्तर कहाँ पड़ता है, वह बराबर समझकर निर्णय करना चाहिए। अभी तक अपनी मान्यता में कहाँ भूल थी और अब यह बात सुन लेने के पश्चात् उसमें कहाँ अन्तर पड़ा – उसका भेद किये बिना यों ही सुन ले – तो उससे आत्मा को सत्य का किंचित् लाभ नहीं होगा। अकेले शब्द तो पहले अनन्त बार सुने, किन्तु तत्त्वनिर्णय के बिना आचार्यदेव उसे श्रवण ही नहीं कहते, इसलिए समयसार में कहा है कि जीवों ने शुद्धात्मा की बात पहले कभी सुनी ही नहीं है। शुद्धात्मा के शब्द तो सुने किन्तु स्वयं अन्तर्मुख होकर उसका निर्णय नहीं किया, इसलिए उसने वास्तव में शुद्धातमा की बात सुनी ही नहीं है। देखो, श्रवण का सच्चा तात्पर्य क्या है, वह बात भी इसमें आ गई। श्रवण में परलक्ष्य से जो शुभराग होता है, वह वास्तव में तात्पर्य नहीं है, किन्तु तत्त्व का निर्णय करके अन्तर में शुद्ध आत्मा का अनुभव करना ही सच्चा तात्पर्य है।

अहो! जब जब देखो तब परिपूर्ण तत्त्व भीतर भरा है; भगवान आत्मा अपने स्वभाव की परिपूर्ण शक्ति का संग्रह करके बैठा है, उसके स्वभाव सामर्थ्य का एक अंश भी कम नहीं हुआ और न तीन काल में एक समय भी उस स्वभाव का विरह है; स्वयं जागृत होकर भीतर दृष्टि करे इतनी ही देर है; यह स्वभाव ऐसा है कि जिसमें दृष्टि करते ही निहाल हो जाते हैं। 'मैं परिपूर्ण हूँ' – इत्यादि रागरूप विकल्प भी उसमें नहीं है; किन्तु उपदेश में समझायें कैसे? उपदेश में उसका कथन करते समय बात स्थूल हो जाती है इसलिए वास्तव में वह उपदेश का विषय नहीं है, किन्तु अन्तर्दृष्टि का और अन्तर अनुभव का विषय है। उपदेश तो निमित्तमात्र है। स्वंय अन्तर्दृष्टि करके समझे तभी समझ में आये – ऐसा अचिन्त्य स्वभाव है। 'भूयत्थमस्सिदो खलु सम्माइट्ठी हवइ जीवो' अर्थात् भूतार्थ स्वभाव का आश्रय करनेवाला जीव ही सम्यग्दृष्टि है – ऐसा कहकर आचार्यदेव ने सम्यग्दर्शन का गम्भीर रहस्य खोल दिया है। जिस प्रकार उपादान में 'पर्याय की

योग्यता' – ऐसा एक ही प्रकार है, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन में 'आत्मा के अभेद स्वभाव का आश्रय' – यह एक ही प्रकार है। सम्यग्दर्शन के ध्येयरूप अभेदस्वभाव एक ही प्रकार का है; उसकी दृष्टि होने के पश्चात् भेद के विकल्प को व्यवहार कहा जाता है। उसके बदले जो ऐसा मानते हैं कि – व्यवहार पहले और फिर उससे निश्चय की प्राप्ति होती है; वे व्यवहारमूढ़ हैं, उन्हें जैनधर्म के सिद्धांत की खबर नहीं है।

'मैं एक ज्ञानस्वभाव ही हूँ, ज्ञान-स्वभाव में ही मेरा सर्वस्व है' – ऐसा लक्ष अन्तर में हुए बिना निश्चय-व्यवहार या उपादान-निमित्त की भूल दूर नहीं हो सकती, और वह भूल दूर हुए बिना दूसरे चाहे जितने उपाय करे, तथापि कल्याण नहीं होता। इसलिए जिसे आत्मा का कल्याण करना हो – धर्मी होना हो – उसे यह बात अच्छी तरह समझकर निर्णय करने योग्य है। ●

आत्म प्रकाश

प्रकाश की ओर पीठ करते ही मनुष्य ने अपने सामने छाया देखी। भयभीत हो वह आगे बढ़ा, छाया लम्बी होती गई। किं कर्त्तव्य विमूढ़ वह ठिठक गया।

ज्ञानी हँसा। उसने कहा – मूर्ख! प्रकाश की ओर देख, छाया तेरे पीछे हो जाएगी। उसने प्रकाश की ओर देखा, सचमुच छाया पीछे थी। वह प्रकाश की ओर बढ़ चला। छाया छोटी होती गई।

ज्ञानी ने समझाया – 'आत्म-प्रकाश की ओर से विमुख होते ही अज्ञान का अन्धकार छाया बन मनुष्य का मार्ग अवरुद्ध कर देता है। परन्तु आत्मप्रकाश की ओर देखते ही अज्ञान रूपी अन्धकार पीछे हो जाता है और जैसे जैसे वह आत्मप्रकाश की ओर बढ़ता जाता है, छाया छोटी होती जाती है। ●

प्रवचन

उपादान की योग्यता

उपादानविधि निरवचन है निमित्त उपदेश

समय-समय का उपादान स्वाधीन-स्वयंसिद्ध है। अहो! ऐसी स्वतन्त्रता की बात लोगों को अनन्त काल से नहीं जमी है, और पराश्रय को मानकर भटक रहे हैं। जिसे उपादान की स्वाधीनता का निर्णय नहीं है, उस जीव में सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की योग्यता नहीं है।

उपदेश में तो अनेक प्रकार से कथन आता है; वहाँ अज्ञानी निमित्त के और व्यवहार के कथन को ही पकड़ लेता है; परन्तु उस कथन का परमार्थ आशय क्या है, उसे वह नहीं समझता। क्या किया जाये! स्वयं अन्तर में पात्र होकर वस्तुस्थिति समझे तो समझ में आये; उसकी पात्रता के बिना ज्ञानी क्या करें? उसकी अपनी पात्रता के बिना साक्षात् तीर्थंकर भगवान भी उसे नहीं समझा सकते। उपादान की योग्यता के बिना दूसरा क्या करे? उपादान में योग्यता हो तो दूसरे में निमित्तरूप उपचार आता है।

अहो! जहाँ देखो वहाँ उपादान की विधि का एक ही प्रकार है। अमुक समय अमुक प्रकार की पर्याय क्यों हुई? - तो कहते हैं कि ऐसी ही उस उपादान की योग्यता। सम्यग्दर्शन क्यों हुआ? - तो कहते कि पर्याय की वैसी योग्यता से। इस प्रकार उपादान निरवचन है अर्थात् उसमें एक ही प्रकार है, एक ही उत्तर है, 'ऐसा क्यों?' - तो कहते हैं - 'ऐसी ही उपादान की योग्यता।'

यह मुख्य ध्यान रखना चाहिए कि - 'उपादान की योग्यता' - ऐसा जो बारम्बार कहा जाता है, वह त्रिकाली शक्तिरूप नहीं है, परन्तु एक समय की पर्यायरूप है; प्रति-समय की पर्याय में अपनी स्वतन्त्र शक्ति है, उसे उपादान की योग्यता कही जाती है। समय-समय की पर्याय के स्वतन्त्र उपादान की लोगों को खबर नहीं है, इसलिए निमित्त आये तो पर्याय हो - ऐसा भ्रम से मानते हैं; उसमें अकेली संयोगी-पराधीन दृष्टि है। एक-एक समय की पर्याय का स्वतन्त्र उपादान! - उसका निर्णय करने में तो वीतरागी दृष्टि हो जाती है। वस्तु-स्वरूप ही यह है; परन्तु इस समय तो लोगों को यह बात कठिन हो रही है।

उपादान की योग्यता कहो, पर्याय की शक्ति कहो, अवस्था की योग्यता कहो, स्वकाल कहो, काललब्धि कहो, अपना उत्पाद कहो, अपना अंश कहो, क्रमबद्धपर्याय कहो, नियत कहो या उसप्रकार का पुरुषार्थ कहो - यह सब एक ही हैं; इनमें से यदि एक भी बोल का यथार्थ निर्णय करे

तो उसमें सब आ जाता है। निमित्त के कारण कुछ परिवर्तन या विलक्षणता हो – यह बात तो कहीं रहती ही नहीं।

उपदेश में तो अनेक प्रकार से निमित्त से कथन आता है, परन्तु सर्वत्र उपादान की स्वतन्त्रता को दृष्टि में रखकर उस कथन का आशय समझना चाहिए। मूल दृष्टि ही जहाँ विपरीत हो, वहाँ शास्त्रों के अर्थ भी विपरीत ही भासित होते हैं। कुछ लोग बड़े त्यागी या विद्वान माने जाते हों, तथापि उपादान-निमित्त सम्बन्धी उन्हें भी विपरीत दृष्टि होती है; उनके साथ इस बात का मेल नहीं बैठ सकता। यथार्थ तत्त्व की दृष्टि बिना लोगों ने यों ही त्याग की गाड़ियाँ हाँक दी हैं। अरे, तत्त्वनिर्णय की दरकार भी नहीं करते! परन्तु तत्त्वनिर्णय के बिना सच्चा त्याग नहीं होता, इसलिए वह त्याग भी भाररूप है।

उपादान की विधि निरवचन कही, उसका अर्थ यह है कि उसमें एक ही प्रकार है; जितने प्रश्न पूछो उन सबका एक ही उत्तर है कि जहाँ-जहाँ कार्य होता है, वहाँ-वहाँ उपादान की योग्यता से ही होता है; निमित्त मात्र अपनी योग्यता से उपस्थित रहते हैं।

* ज्ञानावरण के कारण ज्ञान अटका? – नहीं; अपनी योग्यता के कारण ही ज्ञान अटका है।

* गुरु के कारण ज्ञान हुआ? – नहीं; अपनी योग्यता से ही ज्ञान हुआ है।

* कुम्हार ने घड़ा बनाया? – नहीं; मिट्टी की योग्यता से ही घड़ा बना है।

* अग्नि से पानी गर्म हुआ? – नहीं; अपनी योग्यता से ही गर्म हुआ है।

* आटे में से स्त्री ने रोटी बनाई है? – नहीं; आटे की योग्यता से ही बनी है।

* कर्म के उदय के कारण जीव को विकार हुआ? – नहीं; जीव की पर्याय में वैसी योग्यता के कारण ही विकार हुआ है।

इस प्रकार सर्वत्र एक ही उत्तर है कि उपादान की वैसी योग्यता से ही कार्य होता है। निमित्त भिन्न-भिन्न अनेक प्रकार के भले हों, परन्तु उन निमित्तों ने उपादान में कुछ नहीं किया है, और निमित्त तथा उपादान एकत्रित होकर कोई एक तीसरी अवस्था होती है – ऐसा नहीं है। उपादान की अवस्था पृथक् और निमित्त की अवस्था पृथक्। निमितत के कारण उपादान में कोई प्रभाव नहीं पड़ता, उपादान में उसका अभाव है। समय-समय का उपादान स्वाधीन-स्वयंसिद्ध है। अहो! ऐसी स्वतन्त्रता की बात लोगों को अनन्त काल से नहीं जमी है, पराधीनता मानकर भटक रहे हैं। उपादान की स्वाधीनता का जिसे निर्णय नहीं है, उसमें सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की योग्यता नहीं है।

यहाँ तो कहते हैं कि जिस प्रकार उपादान में निमित्त का अभाव है, उसी प्रकार आत्मा के ज्ञानानन्दस्वभाव की अभेद दृष्टि में सारा व्यवहार अभूतार्थ है; शुद्ध दृष्टि का विषय एकाकार शुद्ध आत्मा है, उसमें भेद या राग नहीं है। जिस प्रकार उपादान में 'पर्याय की योग्यता' – ऐसा एक ही प्रकार है, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन में 'आत्मा के अभेद स्वभाव का आश्रय' – ऐसा एक ही प्रकार है। देव-गुरु-शास्त्रादि पर निमित्त के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है – यह बात तो दूर रही, परन्तु अपने आत्मा में गुण-गुणी के भेद करके आत्मा को लक्ष्य में लेने से भी सम्यग्दर्शन नहीं होता; भेद के आश्रय से अभेद आत्मा का निर्विकल्प अनुभव नहीं होता। यदि भेद के आश्रय से लाभ माने तो मिथ्यात्व होता है। 'मैं ज्ञान हूँ, मैं दर्शन हूँ, मैं चारित्र हूँ, अथवा मैं अनन्त गुणों का पिण्ड अखण्ड आत्मा हूँ' – इस प्रकार शुभ विकल्प करके उस विकल्परूप व्यवहार का ही जो अनुभव करता है, परन्तु विकल्प तोड़कर अभेद आत्मा का अनुभव नहीं करता, वह भी मिथ्यादृष्टि ही है। सम्यक्त्व को वैसा विकल्प आता है, परन्तु उसकी दृष्टि अपने भूतार्थ स्वभाव पर है, विकल्प और स्वभाव के बीच उसे भेद हो गया है, भूतार्थ स्वभाव की निर्विकल्प दृष्टि (निर्विकल्प प्रतीति) उसके सदैव प्रवर्तमान रहती है। देखो, यह धर्मात्मा की अन्तर्दृष्टि! ऐसी दृष्टि प्रगट हुए बिना किसी के धर्म का प्रारम्भ नहीं होता। ●

(मानस्तम्भ-प्रतिष्ठा महोत्सव के प्रवचन से)

आत्मार्थी सन्त श्री कानजीस्वामी

श्री बा० छोटेलाल जैन, कलकत्ता

पूज्य स्वामीजी के दर्शनों का प्रथम सौभाग्य मुझे मार्च १९५७ में प्राप्त हुआ। जब स्वामीजी जैनतीर्थों की यात्रा करते हुए, वृहत संघ सहित कलकत्ता पधारे थे। गौर वर्ण, लम्बा सुडौल शरीर। अखण्ड ब्रह्मचर्य और पवित्र हृदय का तेज मुखमण्डल पर स्पष्ट झलक रहा था। इस आकर्षक दर्शन से हृदय प्रभावित हो गया।

स्वामीजी को सुनने का अवसर आया। जैन-अजैन अपार जनसमूह के बीच ठीक निश्चित समय पर पूज्यश्री का प्रवचन प्रारम्भ हुआ। विषय गहन था – आत्मधर्म। तो भी समवेत समुदाय पूर्ण शान्ति और स्थिरता से सुनता रहा।

स्वामीजी की कथन शैली, विषय को सुस्पष्ट और सरल करती जाती थी और लोग उसे हृदयंगम कर रहे थे। उस समय मानव को अपनी महान् मानवता का भान हो रहा था। और उसे ऐसी प्रतीति हो रही थी कि मानव जन्म की सार्थकता के लिये किस प्रकार कर्ममल को धोना चाहिए।

प्रवचन समाप्त हुआ किन्तु जिज्ञासा बढ़ी, जी चाहता था कुछ और सुनने को मिले। प्रमुख लोगों ने स्वामीजी से प्रार्थना की – महाराज कुछ समय और प्रदान करें। पर स्वामीजी समय के पावन्द रहते हैं। निर्धारित समय से एक मिनिट भी पहिले पीछे या कम वेशी नहीं करते हैं।

इसी प्रकार कलकत्ता जैसी भारत की उद्योग, वाणिज्य, व्यवसाय पूर्ण महान नगरी में – जहाँ लोगों को एक मिनिट का भी अवकाश नहीं होता।

वहाँ, महाराज के सब प्रवचनों में श्रोताओं की भीड़ उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई। लोगों की इच्छा थी, स्वामीजी यहाँ और भी रहें। पर वे प्रस्थान कर गये। मेरा यह अनुभव है कि शास्त्र-सभाओं में लोग कम आते हैं और जो शामिल होते हैं, उनमें अनेक ऊंघा करते हैं। किन्तु यह आश्चर्य की बात है कि आत्मधर्म जैसे कठिन विषय को सुनते हुए भी लोगों में उत्साह, आकर्षण, जिज्ञासा और चेतना थी। वास्तव में श्री कानजीस्वामी महान हैं। कलकत्ता में आप के चरणों का सानिध्य मुझे काफी प्राप्त हुआ। अत: कई संस्मरण लिखना चाहता था, पर सन्मति सन्देश के इस अंक के लिये इतनी बड़ी सामग्री प्राप्त हो चुकी है – कि ऐसे बड़े-बड़े दो-चार विशेषांक निकाले जा सकते हैं, इससे लाचार हूँ।

भगवान महावीर की गुरु-शिष्य परम्परा सौराष्ट्र में सहस्रों वर्ष कायम रही। श्री धरसेनाचार्य भी वहाँ ही हुए। किन्तु दिगम्बर समाज, दिगम्बर धर्म और दिगम्बर धर्मायतनों का वहाँ प्राय: अभाव सा हो गया था। इस ओर बहुत पुनरुत्थान हुआ है। यह सब स्वामीजी की सच्ची धर्मनिष्ठा का प्रतिफल है। इस युग के स्वामीजी अद्वितीय और महान सन्त हैं, उन्हें शत शत प्रणाम। ●

अपूर्व भावना

हे भाई! तू भावना तो स्वभाव की कर! स्वभाव की भावना करने के लिए प्रथम यथार्थ वस्तुस्थिति का निर्णय कर। यथार्थ वस्तु को पहिचाने बिना मिथ्यात्वादिक भावों को ही अनादिकाल से भाया है, किन्तु चैतन्यस्वभाव के सन्मुख होकर सम्यग्दर्शनादि भावों का सेवन करे तो अल्प काल में मोक्ष हुए बिना न रहे। परम चैतन्यस्वभाव की भावना से जो सम्यग्दर्शनादि पवित्र भाव प्रगट हों, वे ही धर्म और कल्याणरूप है।

जैसा मैंने देखा

श्री पण्डित हीरालाल, सिद्धान्तशास्त्री

यद्यपि श्री कानजीस्वामी के दर्शन करने और उनके प्रवचन सुनने का सुअवसर आज से १४ वर्ष पूर्व सोनगढ़ में ही मिला था, परन्तु अति सन्निकट से उन्हें देखने और परखने का अवसर उस समय मिला, जब वे श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा से लौटते हुए श्री वीर सेवा मन्दिर दिल्ली में ठहरे थे। उस समय मैंने देखा कि उनकी मानस, वाणी और काय में एकरूपता है, जो कि उनके महात्मापने की सूचक है। उनमें समुद्र सी गम्भीरता और सुमेरु सी स्थिरता है, जो उनके बड़प्पन की द्योतक है और उनकी प्रशान्त एवं सौम्यमुद्रा उनके आन्तरिक प्रशमभाव को प्रकट करती है।

मैंने देखा कि वे जिस दृढ़ता के साथ अध्यात्म तत्त्व का प्रतिपादन करते हैं, उतनी ही सरलता के साथ समागत बन्धुओं के साथ बातचीत भी करते हैं। वार्तालाप करते समय सामनेवाला व्यक्ति यह अनुभव किये बिना नहीं रह सकता कि उनके मानस में अध्यात्म गंगा प्रवाहित हो रही है और वे उसमें अवगाहन करते, डुबकियाँ लेते और गोते खाते हुए मानों बीच-बीच में सामनेवाले व्यक्ति से वार्तालाप करते जा रहे हैं। उनकी इस प्रवृत्ति से उनके संवेग और आस्तिक्यभाव की छाप हृदय पर सहज में ही अंकित हो जाती है।

मैंने देखा कि वे सोते समय भी अत्यन्त शान्त वातावरण चाहते हैं, मानो उस समय भी वे अपनी प्रवाहमान शान्ति की धारा से एक क्षण के लिए भी वंचित नहीं रहना चाहते।

प्रवचन के समय आपकी मुखमुद्रा और भावभंगिमा देखनेयोग्य होती है। किसी गूढ़ तत्त्व का विश्लेषण करते हुए आपके हाथ की अंगुलियाँ श्रोताजनों को मानों अध्यात्मतत्त्व की परिणगना करती कराती सी प्रतीत होती हैं। प्रवचन करते हुए आप श्रोताजनों को सावधान करने के लिए नामोल्लेख पूर्वक सम्बोधित करते रहते हैं, जिससे ज्ञात होता है कि आप आध्यात्मिकता के सजग प्रहरी हैं।

अधिकांश जैनसमाज धर्मसाधन करते एवं पुण्य-कार्यों को सम्पादित करते हुए भी अपनी उस चिरकालीन भूल को नहीं समझ सका था, जिसके कारण कि वह आज तक भववन में भटकता आ रहा है। आपने लोगों को उस 'मूल में भूल' को बतलाकर उन्हें सही दिशा का भान कराया है और करा रहे हैं।

अध्यात्म जैसे गहन, सूक्ष्म एवं रूक्ष विषय को आप जिस सरलता, सरसता और स्वभाविकता के साथ समझाते हैं, उससे वह श्रोताजनों के मानस-पटल पर सहज में ही अंकित होता जाता है। अध्यात्मतत्त्व की यह सुगम अभिव्यक्ति ही आपके प्रभावशाली अनोखे अनुपम व्यक्तित्व को व्यक्त करती है। जिसने कभी अध्यात्म की चर्चा भी नहीं सुनी, ऐसे अनेक जैनेतर व्यक्ति भी आपके आध्यात्मिक प्रवचन सुनकर अध्यात्मगंगा में गोते लगाने लगते हैं। मैंने अपने जीसन में ऐसा प्रभावशाली अनोखा व्यक्तित्व अन्यत्र कहीं नहीं देखा।

आपको ७३वें वर्ष में प्रवेश करने पर हम आपको बधाई देते हैं और मंगल-कामना करते हैं कि आप शतायुर्जीवी होवें। ●

परम पूज्य आध्यात्मिक सन्त श्री कानजीस्वामी की ७३वीं जन्मजयन्ती के सुअवसर पर

अभिनन्दन

श्री सेठ खीमचन्द जेठालाल शाह

मुक्तिपंथ के पावन पथिक!

आपश्री तो मुक्तिपंथ में अत्यन्त वीतरागपूर्वक प्रयाण कर ही रहे हो तथा जगत के भव्य जीवों को आत्मा की सम्पूर्ण शुद्धिरूप मुक्ति का परम मंगलमय सन्देश सदैव दे रहे हो। अत: हम सब अत्यन्त भक्तिभाव से अभिवन्दन करके आपश्री का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

पूर्ण स्वातन्त्र्य के महान पुजारी!

जगत के सर्व द्रव्य, उनके अनन्त गुण, उनकी समय-समय की परिणति निश्चय से निरपेक्ष है, उनके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य भी पूर्ण स्वतन्त्र है इस प्रकार वस्तु का यथार्थ स्वरूप समझाकर, आप जगत के जीवों को पूर्ण स्वातंत्र्य का बोधपाठ सिखाते हो, अत: हम आपका आन्तरिक उत्साहित भाव से अभिनन्दन करते हैं।

निज शुद्ध चैतन्य विहारी!

परद्रव्य और परभाव में एकत्वबुद्धि से विचरना संसार परिभ्रमण का कारण है तथा स्वद्रव्य-

स्वभाव में एकाग्रतापूर्वक विचरना मोक्ष का कारण है – इस प्रकार का उपदेश देते हुए भी आप सदा निज शुद्ध चैतन्य में विचरने में अत्यानन्द मानते हो, अत: आपको हमारा अभिनन्दन है।

सद्धर्म प्रकाशक, प्रचारक और प्रभावक

आपने अध्यात्म उपदेश द्वारा भगवान महावीर के परम वीतरागी धर्म का प्रकाश करके, उसका प्रचार और प्रसार किया, अनेक भव्य जीवों का परम हित किया। इस प्रकार सद्धर्म की अति उज्ज्वल प्रभावना की, इसलिए हम आपका अत्यन्त विनीत भाव से अभिनन्दन करते हैं।

त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव का परम आदर करनेवाले सन्त!

व्यवहारनय है, उसका विषय भी है, तथापि धर्म करने के लिए, शुद्धता प्रकट करने के लिये वह अभूतार्थ है अर्थात् आश्रय करने योग्य नहीं है, इसलिए आप फरमाते हैं कि प्रमत्तभाव तो आत्मा का वास्तविक स्वरूप है ही नहीं, किन्तु अप्रमत्तभाव भी आत्मा का त्रिकाली पारमार्थिक स्वरूप नहीं है, अत: उसका भी परमार्थत: आदर नहीं करके केवल त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव का ही आप परम आदर करते हो और अन्य को भी ऐसा ही बोध देते हो। अत: आपको हमारा सादर अभिनन्दन है।

हमारी आन्तरिक भावना

आपश्री की ७३वीं जन्मजयन्ती के शुभ अवसर पर हमारी यह आन्तरिक भावना है कि जिस प्रकार ७३ का अंक अविभाज्य–अखण्डित है, उसी प्रकार आपके द्वारा जिनशासन प्रभावना का प्रवाह अखण्डित बहता रहे। आप अखण्डित ज्ञानदर्शन द्वारा अखण्ड ज्ञेयों के सदा ज्ञाता दृष्ट रहें तथा अखण्डित सामर्थ्य द्वारा अखण्डित आनन्द के भोक्ता बनें। ●

श्रद्धांजलियाँ

पूज्य स्वामीजी ने जैनधर्म की अपूर्व प्रभावना की है, जिसके फलस्वरूप लाखों व्यक्तियों की जीवन दिशा ही बदल गई। उनके चरणों में विनम्र श्रद्धांजलि। – दशरथलाल जैन, हेडमास्टर, सिवनी

स्वामीजी ने अनेक कष्टों का सामना कर धर्म की प्रभावना की है। लाखों बन्धु अन्धविश्वास छोड़कर सद्धर्म की श्रद्धा करने लगे हैं। मेरी विनम्र श्रद्धांजलि।

– श्रीमती सौ० सुशीलाबाई, मोतीमहल, इन्दौर

यदि हमारी गुणैकदृष्टि हो!

श्री पण्डित माणिकचन्द चंवरे, न्यायतीर्थ, बी.ए., कारंजा

काले कलौ चले चित्ते देहे चामादि कीटके।
एतच्चित्रं यदद्यापि जिनरूपधरा नराः।।

काल कलिकाल हो, चित्त अति चंचल हो, देह अन्नादि का कीट हो, ऐसी विषम विरुद्ध परिस्थिति में यह आश्चर्य और भी महद् आश्चर्य है कि आज भी सुदृढ़ मोक्षमार्ग के पथिक बनकर चिन्मुद्रांकित, नग्नदिगम्बर रूपधारी, ज्ञान-ध्यान-तपोरक्त, महासाधु मिलते हैं। उनकी निर्विशेषण महिमा कोई गावे या न गावे, यह स्वयं निर्विभाग होती है। ऐसे साधु महात्मा-परमेष्ठी, परम-मंगल होते हैं - लोकोत्तम होते हैं और भव्यजनों के लिए शरण होते हैं। यदि कोई आसन्नभव्य अपने आत्माभिमुख प्रकाश शक्ति के द्वारा इन्हें निमित्त बनावे तो नामरूपातीत ये महात्मा सदा हाजिर हैं।

वैसे ही -

सुदपरिचिदाणुभूदा
सव्वस्स वि कामभोग बंध कहा।
एयत्तस्सुवलंभो
णवरि ण सुलहो विहत्तस्स

जहाँ - महामिथ्यात्व के प्रबल उदय से आसमन्त का वातावरण अत्यन्त अभद्र और प्रतिकूल ही प्रतिकूल हो, सैकड़ों वर्षों से धर्म और अधर्म यत्नों की घातक प्रबल अनात्म प्रवृत्तियों का ही चलन रहा हो, मिथ्यामतों के प्रबल उपदेष्टाओं के उपदेश धाराओं में भव्यजनों के चित्त सरोवर को सपंक कर दिया हो, ऐसी महा विषम परिस्थिति हो-

वहाँ -

यदि कोई स्वयं आत्म निर्भर बनकर प्रवाह-विरुद्ध एकाकी खड़ा हो! उसका उपादेयभूत स्वाश्रित शुद्ध सचेतन वस्तुतत्व का निश्चय हो! उसे परमोपादेयभूत समयसार का ही अवलम्बन लेने की सद्भावना जागृत हुई हो! वह, वर्षावधि उस ही का अध्ययन अध्यापन सजग होकर करवाता हो! जो आत्मरसिक बनकर उसका पठन-पाठन, चिन्तन-मनन भी करता करवाता हो! निमित्त पाकर अनायास ही धर्मायतनों का निमित्त होकर प्रभावना का मण्डल बना हुआ हो! जो समीचीनता के लिए सजग सावधान बना रहता हो! आत्माभिमुख-सम्पत्ति के द्वारा आत्मा में रत और सन्तुष्ट सदा रहता हो! ज्ञानमात्र को ही सत्य अनुभवनीय समझकर नित्य उस ही में तृप्त होता हो! भव भावों में रस नहीं लेता हो, उन्हें जघन्य जान हेय समझ छोड़ता हो! तो निश्चय समझना

होगा, ये अमूर्तिक भाव मूर्तिमान दुर्लभ होते हैं। समयसार की प्रकाश परिपूर्ण दृष्टि में ये स्वयं परममंगल है, लोकोत्तम है, अतएव शरण होते हैं। यदि स्वामीजी के इन भव्य भावों के धारी हैं तो गुणैकदृष्टि से स्वामीजी के चिर जीवन की मनोकामना मनोभावना, संकेत समझ करना अपनी दृष्टि में यह कृतज्ञता होगी।

फिर –

जहाँ– तीर्थ और धर्म प्रभावना के हेतु संस्कृति की सुरक्षा में सदा मग्न महाशास्त्रियों ने–

नामत: स्थापनातोऽपि जैन: पात्रायतेतराम्।
स लभ्यो द्रव्यतो धन्यै र्भावस्तु महात्मभि:।।

कहकर अपने व्यापक दृष्टिकोण के अमरफल के अमृतबीज बोये हैं। उन्हीं के अटूट अखण्ड अपार विरासत के निडर विवेकी उत्तराधिकारी – यदि कोई आत्मरसिक आत्मस्वभावविभोर बनकर आत्मरत होकर आत्मस्वभावभूत ज्ञानमात्र के ही आलम्बन के लिए प्रयत्नशील बना रहे, उसको ही परमार्थत: परमाश्रयी समझकर परमादर से ग्रहण करने के सदा समुत्सुक बना रहे तो, वहाँ – निरस्त समस्त भेद होकर समाज में भेद विभेद की सम्भावना के व्यर्थ भय से इन स्वयंस्फूर्त अंकुरित भव्य भावों को विषाक्त क्यों करे?

समय पाकर सभी भाव पुष्पित होंगे, सुफलित होंगे। इसी निर्मल आशा से स्वयं अधिक धीर–गंभीर और उदार आशय बनकर स्वगत भावों से धर्मवत्सल भावनाओं से समागत सहस्रावधि बंधुओं का स्वागत क्यों न करें? भेद विभेद का व्यर्थ विकल्प क्यों करें? वैसे कषायों का पुंज कौन नहीं है? त्रुटिपूर्ण कौन नहीं? व्यर्थ के अध्यवसायों से स्वभावत: शुद्ध–विशुद्ध आत्मा को खराब क्यों करें? श्रीमत् श्री कुन्दकुन्द भगवान ने तो किसी को बिगाड़ा नहीं! आचार्य श्री अमृतचन्द्रजी ने सब ही को सुधारा है। तीर्थरक्षा के पुनीत भावों से समलंकृत इन आत्माओं की जो आज्ञा रही –

दूरं भूरविकल्पजाल गहने,
भ्राम्यभिजौघात् च्युतो,
दूरादेव विवेक निम्नगमना
भीतो निजौघं बलात्।।
विज्ञानैक रसस्तदेकरसिना–
मात्मानमात्माहरन्,
आत्मन्येव सदा गतानुगतता
मायात्ययं तोयवत्।।

मोक्षमार्ग के अनुसारीभव्य समूह से यदि कोई योगायोग से अज्ञानजन्य विकल्पजाल के गहन अरण्य में चला जावे और चक्कर लगाकर (जलाशय से च्युत और जलाशयाभिमुख ढाल मार्ग से स्वस्थान में आनेवाले जल प्रवाह की तरह) विवेक रूपी समीचीन मार्ग द्वारा आत्मरसिक बनकर आत्माभिमुख होता हुआ स्वस्थान में चला आवे तो स्वभावत: उदाराशय से उसका स्वागत करना चाहिए। निश्चय से तीर्थरक्षा इसी में है। समीचीन व्यवहार के नाते भी धर्मरक्षा और तीर्थरक्षा का यदि उपाय हो सकता है कि स्वयं उदाराशय बनकर औरों को अपने में समा लेवे, सद्भावना पूर्वक समाश्रय देवे। या उदाराशय औरों के उदर में समाश्रय लेवे। जहाँ पर माया नहिं, मिथ्यात्व नहीं है और भवाशारूप निदान भी नहीं है, वहाँ पर समभाव होना चाहिए और 'सांगत्य हि सयोनिषु' इस भगवज्जिनसेन महाराज के सुक्त्यनुसार उचित समुचित संघटन बनाना ही चाहिए। यही समुचित व्यवहार प्रतीत होता है। यदि स्वच्छ दृष्टि से यह आ जाय तो अच्छा ही है। स्वच्छ दर्पण का जैसा स्वभाव होता ज्ञान को भी वैसा होने में कोई आपत्ति नहीं है।

अमृतचन्दाचार्यजी के वचनों का आश्रय लेकर ही गुणैकदृष्टि से यदि कहने का साहस हो तो कोई भी यह कह सकता है –

'यदि कोई अभिन्नरस का रसिक अनेकों में स्वकीय पर्यायों में एकत्व का ही अनुभव करना चाहे तो इस एकाकार को अज्ञान मोहवश भिन्न विभिन्न न करे।'

'किन्तु प्रत्युत तमभिनंदेयु:।

प्रत्युत निर्विकल्प होकर उसका अभिनंदन ही करे।'

यदि योगायोग से जम जाय तो ठीक ही है। वरना भगवान के केवलज्ञान में जो प्रतिबिम्बित हुआ है, वह तो यथासमय होकर ही रहेगा। व्यर्थ अध्यवसानों से क्या लाभ? ●

सिद्ध और संसारी

जैसा सिद्ध परमात्मा का स्वभाव है, वैसे ही स्वभाववाला आत्मा इस देह में विद्यमान है। सिद्ध भगवान में और इस आत्मा के स्वभाव में परमार्थत: कुछ भिन्नता नहीं है, जितना सामर्थ्य सिद्ध भगवान की आत्मा में है, उतना सामर्थ्य प्रत्येक आत्मा में भरा है। सिद्ध परमात्मा अपने स्वभाव सामर्थ्य की प्रतीति कर उसमें लीनता द्वारा पूर्ण ज्ञान–आनन्द प्रगट कर मुक्त हो गये हैं, और अज्ञानी जीव अपने स्वभाव सामर्थ्य को भूलकर, रागादि में ही अपनापन मान कर संसार में भटकता है।

विचार परिवर्तन

श्री सेठ मानमल काशलीवाल, इन्दौर

सन् १९४७ में जब मुझे सर्वप्रथम चिरस्मरणीय दिवंगत सेठ हुकमचन्दजी साहब के साथ सोनगढ़ जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ एवं पूज्य श्री कानजीस्वामी के प्रवचन सुनने का सुअवसर मिला तो मुझे बड़ा विस्मय सा प्रतीत हुआ। मेरा पूर्व अध्ययन, कार्यकारण प्रणाली, कार्य सम्पादन में निमित्त का महत्व एवं पूर्वोपार्जित द्रव्यकर्म का हमारे जीवन पर प्रभाव इन सब पर बनी हुई परम्परागत धारणाओं पर एक ठेस सी लगी और मुझे श्रद्धेय श्री रामजीभाई से कहना पड़ा कि मुझे सोनगढ़ आने से अत्यन्त हर्ष हुआ किन्तु मैं यहाँ से कुछ ले नहीं सका। श्री रामजीभाई ने इसके उत्तर में कहा कि जो लोग हमारी मान्यतावाले श्री दिगम्बर जैनधर्म का प्रचार कर रहे हैं, इससे प्रसन्नता होना स्वाभाविक है, किन्तु जो भी बात समझ में नहीं आती हो, इसके लिये वे चर्चा करने एवं सब विषय युक्तिपूर्वक समझाने को तैयार हैं। हम लोग भोजनोपरान्तु बिंछिया के सुरम्य राजभवन में बैठे और इन्हीं विषयों पर चर्चा चली। हमारे धर से इन्दौर के प्रसिद्ध न्यायशास्त्र के विद्वान पण्डित जीवन्धरकुमारजी चर्चा में मुख्य भाग ले रहे थे और उस तरफ श्री रामजीभाई उनका समाधान कर रहे थे। लगभग घण्टा-डेढ़ घण्टा चर्चा चली होगी लेकिन मेरे पल्ले कुछ नहीं पड़ा। हाँ, एक श्लोक इष्टोपदेश का जो कि मुझे पहले से याद था, वह श्री रामजीभाई ने कार्य की सम्पन्नता में निमित्त का स्थान बताने को उद्धृत किया और वह मेरे हृदय पर अंकित हो गया। वह श्लोक इस प्रकार है –

नाज्ञो विज्ञत्वमायाति विज्ञो नाज्ञत्वमृच्छति।
निमित्तमात्र मन्यस्तु गतेर्धर्मास्तिकायवत्।।३४।।

इन्दौर में आकर मैंने और श्रीमान् स्वर्गीय लाला हजारीलालजी साहब मन्त्री ने इस श्लोक पर काफी विचार किया और तुलनात्मक दृष्टि को सामने रखने के लिये हमने पूज्य कानजीस्वामी के यहाँ छपे हुए ग्रन्थों को भी अपने प्रात:कालीन स्वाध्याय में शामिल कर लिये। पूज्य कानजीस्वामी की दृष्टि को समझने के लिये उनके यहाँ की लिखी हुई 'वस्तुविज्ञान सार' नामक पुस्तक अंग्रेजी की प्राइमर का काम करती है। इस पुस्तिका में सर्वप्रथम सम्यग्दृष्टि के विचार भगवान की सर्वज्ञता के प्रति कैसे होते हैं, इस विषय में स्वामी कार्तिकेयाचार्य रचित निम्नलिखित दो गाथाएँ उद्धृत की हैं–

जं जस्स जम्मिदेसे
जेण–विहाणेण जम्मि कालम्मि।
णादं जिणेण णियदं
जम्मं वा अहव मणरं वा।।३२१।।
तं तस्स तम्मि देसे
तेण विहाणेण ताम्म कालम्मि।
को सक्कइ चालेंदु
इंदो वा अहव जिणिंदो वा।।३२२।।

सर्वपदार्थों में होनेवाली सुनिश्चित क्रमबद्धपर्याय के ऊपर उपरोक्त दोनों गाथाओं ने एवं उपरोक्त पुस्तिका में दिये हुए विस्तृत विवेचन का मननपूर्वक स्वाध्याय ने हमारे विचारों में काफी आन्दोलन पैदा कर दिया और ज्यों–ज्यों हम इस तुलनात्मक पद्धतिबद्ध स्वाध्याय में प्रगति करते गए त्यों–त्यों पूज्य कानजीस्वामी ने निश्चयनय की दृष्टि से जो धर्म का वास्तविक स्वरूप समझाया है, वह हमारे हृदय में जमता गया।

सम्पूर्ण पदार्थों की क्रमबद्ध अवस्था पर पूज्य पण्डित दौलतरामजी साहब ने भी अपने एक भजन में प्रकाश डाला है। उनके शब्द हैं –

मोही जीव भरमतम तें नहीं–
वस्तु स्वरूप लखत हैं जैसे।
जे जे जड़ चेतन की परणति–
ते अनिवार परणते वैसे।।

क्रमश:

क्रान्तिकारी श्री कानजीस्वामी

श्री बंशीधर शास्त्री, एम०ए०, कलकत्ता

जिस प्रकार गुजरात के एक सपूत महात्मा गाँधी भारत के जनमानस को जागृत कर अहिंसात्मक साधनों से भारत को स्वतंत्रता दिलाने में सफल हुए, उसी प्रकार गुजरात के दूसरे सपूत श्री कानजीस्वामी जैन संसार में अभूतपूर्व क्रान्ति लाने में सफल हुए। यह क्रान्ति केवल विचारों तक ही नहीं रही, अपितु इसको साकाररूप भी दिया।

एक समय था, जब धर्म के नाम पर केवल तीर्थवन्दना, देव पूजा, भक्तिदान आदि ही का रूप रह गया था, एवं उनके अन्दर की धार्मिकता, वीतरागता–समाप्त प्राय: होती जा रही थी। प्राय: लोग उसके मूलतत्त्व को भूलते जा रहे थे। यही कारण था कि इन क्रियाओं में आडम्बर मात्र रह गया था। नींव के बिना महल बनाना आसान लगने लगा, लेकिन यह नहीं सोचा जाता था कि बिना सुदृढ़ नींव के महल टिक कैसे सकेगा? चारित्र पर जोर दिया जाने लगा किन्तु उसके मूलाधार सम्यग्दर्शन की उपेक्षा की जाने लगी। यही कारण है कि धीरे–धीरे इन क्रियाओं में चारित्र का स्वांग मात्र रह गया और उसकी आत्मा लुप्त होने लगी।

श्री कानजीस्वामी ने इस विचारधारा के प्रवाह की दिशा बदली। उन्होंने चारित्र की महत्ता स्वीकार करते हुए भी उसकी आत्मा–सम्यग्दर्शन की आत्यांतिक आवश्यकता बताई और इसके अभाव में सब क्रियाओं की निस्संकोचरूप से निरर्थकता सिद्ध की जो उपयुक्त वातावरण में बिल्कुल नई वस्तु थी किन्तु थी शास्त्र–सम्मत। इस शास्त्र सम्मत मान्यता को भी घोषित करने के लिए बहुत साहस की आवश्यकता थी। इसी का परिणाम हुआ कि गुजरात में आज स्थान–स्थान पर वीतराग प्रतिमा के दर्शन सुलभ होने लगे, उनकी प्रतिष्ठापना उन भाईयों द्वारों हुई जो मूर्ति पूजन में धर्म नहीं समझते थे। जबकि अन्य स्थानों के वंश परम्परावाले जैनी देव दर्शन आदि को छोड़ रहे हैं।

जैन मान्यतानुसार ईश्वर के कर्तृत्ववाद एवं एक द्रव्य का अन्य द्रव्य कर्ता बने, उसका भी निषेध सिद्ध है किन्तु दार्शनिक कथन पद्धति और लौकिक व्यवहार की भाषा शैली का आश्रय लेकर निमित्त के रूप में परद्रव्य को कर्त्ता का रूप दिया जाने लगा इसका फलितार्थ यह होता है कि सृष्टि का केवल ईश्वर ही कर्ता नहीं अपितु अनन्त द्रव्य परद्रव्य के कर्ता का पद धारण कर लेते हैं।

स्वामीजी ने निमित्त के इस कर्तृत्ववाद का विरोध किया और निमित्त को केवल निमित्तमात्र

बताया और उपादान ही को उसका कर्ता के रूप में माना, यह भी शास्त्र सम्मत मान्यता है किन्तु बहिर्मुखी वृत्तिवाले व्यक्तियों को यह मान्यता ग्राह्य नहीं हो रही है।

अपने चारों ओर के विरोधपूर्ण वातावरण की परवाह न करते हुए श्री स्वामीजी ने जो कुछ 'सत्य' ढूंढा, उसे उन्होंने अपने जीवन में उतारा व साथवालों के जीवन में भी उसे उतराने में प्रेरक बने। श्री स्वामीजी ने जैनसिद्धान्त एवं आगम का गहन अध्ययन किया, उन्होंने उसका वह मर्म समझा है जो अनेक भाषायी पण्डित कहलानेवाले नहीं समझ पाये। ऐसे महान क्रान्तिकारी की प्रेरणा से जैन समाज की वर्तमान विचारधारा में आमूल परिवर्तन हुआ और वह परिवर्तन कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य, पूज्यपादस्वामी, पण्डित बनारसीदासजी, पण्डित टोडरमलजी आदि महान आचार्यों एवं विद्वानों की निर्दिष्ट परम्परा सम्मत हुआ। यह परिवर्तन बहुत से कुलागत जैनों को वास्तविक जैन बनाये रखने में सफल हुआ है। आज अजैनों को भी जैन परम्परा से परिचित कराने से भी अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य है। तथाकथित कुलागत जैनों को 'जैन' बनाये रखा जाए। इस महत्त्वपूर्ण कार्य को स्वामीजी कर रहे हैं।

ऐसे महान क्रान्तिकारी आध्यात्मिक उपदेष्टा श्रद्धेय श्री कानजीस्वामी को उनके ७३वें जन्म दिवस पर मैं श्रद्धांजलि समर्पित करता हुआ कामना करता हूँ कि वे चिरकाल तक भव्य जीवों का पथप्रदर्शित करें एवं अपना कल्याण करें। ●

जीव को अहितकारी कौन है?

प्रश्न – जीव को अहितकारी कौन है?

उत्तर – तीन काल, तीन लोक में जीव को मिथ्यात्व समान अन्य कोई अहितकारी नहीं है। (रत्नकरण्ड श्रावकाचार, ३४)

प्रश्न – जीव ने पूर्वकाल में कौन सी भावना नहीं भायी है?

उत्तर – जीव ने पूर्वकाल में मिथ्यात्वादिक भावों की ही भावना भायी है, किन्तु सम्यक्त्वादि भावों की भावना कभी नहीं भायी। (नियमसार)

प्रश्न – ज्ञानादि सर्वगुणों की शोभा किससे है?

उत्तर – जिस प्रकार नगर की शोभा द्वारों से है, मुख की शोभा नेत्रों से है और वृक्ष की स्थिरता मूल से है, उसी प्रकार ज्ञान, चारित्र, तप और वीर्य की शोभा सम्यग्दर्शन से।

(भगवती आराधना, ७४०)

शुद्ध आध्यात्मिक संस्कृति को जागृत करनेवाले सन्त

श्री कानजीस्वामी

श्री पण्डित रूपचन्द गार्गीय, पानीपत

भारत में आध्यात्मिक संस्कृति बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है। समय-समय पर इसे विद्वान सन्तों ने चमकाया है। विक्रम की पहली शताब्दी में श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने समयसार आदि अध्यात्म ग्रन्थों की रचना करके महान उपकार किया है। इन्हीं ग्रन्थों से प्रेरणा लेकर आज तक बहुत से आध्यात्मिक साहित्य की संस्कृत, प्राकृत व हिन्दी भाषाओं में रचना हुई तथा अनेक साधु-सन्तों ने अपनी आत्मा को उन्नत बनाया। पिछली कुछ शताब्दियों में पण्डित बनारसीदासजी, श्री दीपचन्दजी शाह, श्रीमद् राजचन्दजी ने भी समयसार के आधार पर हिन्दी भाषा में बहुत उपयोगी साहित्य की रचना की। हाल में दो सन्तों ने इस विषय पर अच्छा प्रकाश डाला। पहले क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी, जिन्होंने अध्यात्म के रहस्य को खूब समझा तथा दूसरों के लिये वे अपने महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष छोड़ गये। दूसरे हैं सौराष्ट्र की विभूति श्री कानजीस्वामी। इन्होंने जिस बारीकी के साथ अध्यात्म के विषय को स्वयं समझा है तथा दूसरों को समझाया है, वह विश्लेषणात्मक तथा वैज्ञानिक होने के कारण अत्यन्त ही प्रशंसनीय है तथा मनन करनेयोग्य है। इनके प्रवचनों को जो सुन लेता है, वह मन्त्रमुग्ध हो जाता है और अध्यात्म प्रेमी इनके पास एक मास ठहर कर इनके प्रवचन व तत्त्वचर्चा को अपने अन्तरंग में उतार लेता है, वह अपने जीवन को सफल मानता है और अध्यात्म चर्चा का रसिक बन जाता है। अध्यात्म तत्त्व को समझना तथा इसे अपने अन्तरंग में उतार लेना कोई छोटी-मोटी बात नहीं है बल्कि दुर्लभ मनुष्य जन्म को पाकर उसे सफल करना है जो कि बड़ा महत्वपूर्ण है। श्री कानजीस्वामी अधिकतर सोनगढ़ में रहते हैं, इसलिए वह स्थान अध्यात्मज्ञान प्राप्ति का एक बड़ा केन्द्र बन गया है। अध्यात्म के विषय को एक बार समझ लेना ही पर्याप्त नहीं है, अपितु उसे सतत मनन करने तथा अन्तरंग में उतारने की आवश्यकता रहती है, इस प्रयोजन के लिये सत्संग की बड़ी आवश्यकता है जो कि सोनगढ़ में तथा अन्य भी कुछ तीर्थक्षेत्रों में मिल सकता है। मुझे सोनगढ़ से प्रकाशित होनेवाले साहित्य से आत्मजागृति के क्षेत्र में बड़ी प्रेरणा मिली है। मेरी यह हार्दिक भावना है कि श्री कानजीस्वामी शतायु हों तथा सोनगढ़ अध्यात्म का एक प्रकाशस्तम्भ तथा अमरकेन्द्र बना रहे, जिसके प्रकाश से आनेवाली सन्तति अध्यात्म के रहस्य को समझकर आत्मोन्नति के मार्ग पर लग सके। ●

जन्म दिवस पर श्रद्धांजलि

श्री वृद्धिचन्द रारा, जाटियावल

सो-म किरण सम वाणी शीतल, जिनकी ऐसे हैं वे संत।
न-य निक्षेप अरु स्याद्वाद का, प्रवचन करते हैं गुणवंत।।
ग-रिमा जिनकी दिन दिन बढ़ती, धर्म चेतना रंग चढ़े।
ढ-र्रा जिनका अति श्रेयस्कर, आध्यात्मिक अनुराग बढ़े।।
के-तिक मनन किया ग्रन्थों का, समय, नियम अरु प्रवचनसार।
सं-श्रय ले इनके तथ्यों का, करें धर्म का सबल प्रचार।।
त-त्त्व बोध से होय विभूषित, अमृत ज्ञान रहे बरसा।
का-रज धर्म-वृद्धि का करते, बंजर तक में रस सरसा।।
न-य नागर अरु कुशल प्रवक्ता, पंथ प्रदर्शक हैं भारी।
जी-वन में निज ज्योति जगाते, सत्य अनुकम्पा धारी।।
स्वा-मी कुन्दकुन्द अमृत के, आदेशित पथ पर चलते।
मी-मांसा तत्वों की करते, शुद्ध भाव चित में भरते।।
की-र्ति फैल रही सौरभ सम, सदा मुमुक्षु जन सुख पाते।
ज-ड़ चेतन ये भिन्न-भिन्न है, भेद स्वपर में बतलाते।।
य-ति कानजी स्वामी का यह, जन्म दिवस फिर आया आज।
हो-कर हर्षित 'वृद्धि' श्रद्धांजलि, अर्पण करते जो शुभ काज।।

●

अपूर्व साधक

(श्री यशपाल जैन, सं०-जीवन साहित्य, दिल्ली)

श्रद्धेय कानजीस्वामी ने अपने जीवन में जो साधना की है और धर्म की जो सेवा की है, वह निस्सन्देह अद्वितीय है। मुझे स्वामीजी के दर्शनों का अवसर मिला है। उनकी धर्मनिष्ठा की मुझ पर अच्छी छाप पड़ी है।

मैं इस अवसर पर उनकी सेवा में अपने प्रणाम निवेदन करते हुए कामना करता हूँ कि वह शतजीवी हों, स्वस्थ रहें और उनके हाथों समाज की अधिकाधिक सेवा होती रहे।

भारतव्यापी प्रमुख मुमुक्षु मण्डलों के नाम

(१) श्री दि० जैन मुमुक्षु मण्डल, महात्मा गांधी रोड, जेतपुर (सौराष्ट्र); (२) श्री दि० जैन मुमुक्षु मण्डल, महात्मा गांधी रोड, जोरावरनगर (सौराष्ट्र); (३) श्री दि० जैन मुमुक्षु मण्डल नकदीया, लींबडी (सौराष्ट्र); (४) श्री दि० जैन संघ, प्रताप रोड, बांकानेर (सौराष्ट्र); (५) श्री दि० जैन मुमुक्षु मण्डल, मोती बजार, गोंडव (सौराष्ट्र); (६) श्री दि० जैन मुमुक्षु मण्डल, पो.बा.नं. २५, जामनगर (सौराष्ट्र); (७) श्री दि० जैन मुमुक्षु मण्डल, सिविल स्टेशन, राजकोट (सौराष्ट्र); (८) श्री दि० जैन मुमुक्षु मण्डल, गांधी चौक, शेरी नं० १, मोरबी (सौराष्ट्र); (९) श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, बींछिया (सौराष्ट्र); (१०) श्री दि० जैन संघ द्वारा चुनीलाल लक्ष्मीचन्द, सुरेन्द्रनगर (सौराष्ट्र); (११) श्री दि. जैन संघ द्वारा दि. जैन मन्दिर, बढवाण शहर (सौराष्ट्र); (१२) श्री दि. जैन माधावाव पास में, बढवाण शहर (सौराष्ट्र); (१३) श्री दि० जैन मुमुक्षु मण्डल, गांधी रोड, फतासा पोल, अहमदाबाद (गुजरात); (१४) श्री दि० जैन मुमुक्षु मण्डल, फतेपुर वाया सोनासण (साबरकाठा); (१५) श्री दि० जैन मुमुक्षु मण्डल, दामनगर (ह्वायाधारी; (१६) श्री दि० जैन मुमुक्षु मण्डल, धोधा दरवाजा, भावनगर (सौराष्ट्र); (१७) श्री दि० जैन मुमुक्षु मण्डल, पाणी दरवाजा रोड, नवीपोल, बड़ोदा, (गुजरात); (१८) श्री दि० जैन मुमुक्षु मण्डल, सियागंज, इन्दौर (म.प्र.); (१९) श्री दि० जैन स्वाध्याय मन्दिर, नमक मण्डी, उज्जैन (म.प्र.); (२०) दि० जैन मुमुक्षु मण्डल द्वारा निरंजन स्टोर्स, दाहोद (पंचमहल); (२१) श्री दि० जैन स्वाध्याय भवन, गुना (म.प्र.); (२२) श्री दि० जैन मुमुक्षु मण्डल, ५५, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७ (प.बं.); (२३) श्री दि० जैन मुमुक्षु मण्डल, चौक बाजार, भोपाल (म.प्र.); (२४) श्री दि० जैन मुमुक्षु मण्डल, २५१५/१, धर्मपुरा, दिल्ली-६; (२५) श्री दि० जैन स्वाध्याय मण्डल, खण्डवा (म.प्र.); (२६) श्री दि० जैन मुमुक्षु मण्डल द्वारा ईश्वरचन्दजी जैन, सनावट (जि. निमाड, म.प्र.); (२७) श्री दि० जैन मुमुक्षु मण्डल, द्वारा पण्डित मगनलाल चन्द्रसेन, बड़ी उदयपुर (राज.); (२८) श्री दि० जैन मुमुक्षु मण्डल, रखियाल (ए०पी.रेलवे); (२९) श्री दि० जैन मुमुक्षु मण्डल, घोडनदी (जि. पूना)।

व्यक्तिगत मेम्बर्स

(३०) कामदार जयन्तीलाल हीराचन्द, गठड़ा, (सौराष्ट्र); (३१) जगजीवनदास गोपालजी, खामीना; (३२) एस.सी.शाहजी, बन्दर स्ट्रीट, मद्रास; (३३) श्रीपाललाल रामजीभाई, १

अमरेली (सौराष्ट्र); (३४) श्री गोविन्दजी नत्थुभाई, २ अमरेली (सौराष्ट्र); (३५) श्री चुन्नीलाल रावजीभाई ३ अमरेली (सौराष्ट्र); (३६) अमृताल धारसीभाई ४ अमरेली (सौराष्ट्र); (३७) माथकीया प्रेमचन्द मोहनलाल, ध्रांगध्रा (वाया सुरेन्द्रनगर); (३८) वकील केशवलाल डामरश्न (सौराष्ट्र); (३९) मनसुखलाल हरजीवनदास, चोटीला, (सौराष्ट्र); (४०) श्री नेमीचन्दजी पाटनी, बेलनगंज, आगरा (यू.पी.); (४१) श्री दि. जैन मुमुक्षु मण्डल, लाठी (सौराष्ट्र); (४२) उत्तमचन्द जसराज वडीया (सौराष्ट्र); (४३) श्री दि. जैन मुमुक्षु मण्डल, सावरकुण्डला (सौराष्ट्र); (४४) पोरबन्दर दि० जैन मुमुक्षु मण्डल, कंचन कॉटेज, दौलतसिंहजी रोड, पोरबन्दर (सौराष्ट्र)।

व्यक्तिगत जो मुमुक्षु महामण्डल सोनगढ़ के सदस्य हैं, उनके नाम निम्नलिखित हैं –

(४५) सोमचन्द भाईचन्द, वलोद (साबरकांठा); (४६) मंगलदास जीवराज, वलोद (साबरकांठा); (४७) उत्तमचन्द माणेकचन्द दोशी, मोटा आंकडिया (सौराष्ट्र); (४८) जमुभाई माणेकचन्द खाणी, मोटा आंकडिया (वाया अमरेली); (४९) जयन्तीलाल पानाचन्द, व्यारा (T.V. Rly.); (५०) छोटेलाल पीतांबरदास, कलोल (उत्तर गुजरात); (५१) वाडीलाल जगजीवनदास, कलोल (उत्तर गुजरात); (५२) ठी. बखारिया खडकी, कलोल (उत्तर गुजरात); (५३) कुंवरपाल जादवजी सेठ, पालेज (जि. भरुच); (५४) दयालचन्द गुलाबचन्द, थानगढ़ (सौराष्ट्र); (५५) बाबूलाल केशवलाल, दहेगाम (A.P. Rly.); (५६) मफतलाल मणीलाल, दहेगाम (A.P. Rly.)।

इतने महामण्डल में रजिस्टर हुए हैं।

ये सोनगढ़ के सदस्य हैं –

(५७) मलूकचन्द छोटेलाल, सोनगढ़ (सौराष्ट्र); (५८) पयुभाई आर० गांधी, सोनगढ़ (सौराष्ट्र); (५९) मोहनलाल वाघजीभाई, सोनगढ़ (सौराष्ट्र); (६०) केशवलाल कस्तूरचन्द, सोनगढ़ (सौराष्ट्र); (६१) खेमचन्दजी छोटालाल सेठ, सोनगढ़ (सौराष्ट्र); (६२) मणीलाल वेलचन्द, सोनगढ़ (सौराष्ट्र); (६३) धीरजलाल भगवानजी, सोनगढ़ (सौराष्ट्र); (६४) मगनलाल सुन्दरजी महेता, सोनगढ़ (सौराष्ट्र); (६५) शान्तिलाल पोपटलाल, सोनगढ़ (सौराष्ट्र); (६६) लालचन्द अमरचन्द मोदी, सोनगढ़ (सौराष्ट्र); (६७) खीमचन्दजी जेठालाल सेठ, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)।

उनका प्रभाव

श्री जिनेश्वरदास जैन, सहारनपुर

श्रीमान् पण्डित देवचन्दजी साहित्याचार्य सहारनपुर निवासी प्रतिवर्ष गर्तियों के अवकाश में सोनगढ़ जाया करते हैं। महाराजश्री से भी बहुत प्रभावित हैं। वह कहते थे कि हमें राजकोट के दो बोहरे मिले (जो जाति से मुसलमान थे) वह वहाँ पर बहुत ही आध्यात्मिक भजन पढ़ा करते थे तथा कहते थे, पण्डितजी यह तो (महाराजश्री) भारत में अलौकिक सूर्य उदय हुआ है, जो हम जैसे क्षुद्र पुरुषों को भी महान लाभ हुआ। अनेकों जीव इनकी शरण में आनकर अपना कल्याण कर रहे हैं। इस प्रकार इस महान पुरुष से महान प्रचार हो रहा है। सम्यग्दर्शन का दीपक जगह-जगह पर प्रकाशित हो रहा है। और मैं स्वयं आपसे अति प्रभावित हूँ।

मेरी वीरप्रभु से प्रार्थना है कि महाराज चिरायु हों और उनके द्वारा संसार का महान कल्याण हो। मेरी इस महात्मा को श्रद्धांजलि अर्पित है। ●

युगप्रवर्तक

श्री बाबूलाल पाटोदी, एम.एल.ए., इंदौर (मध्यप्रदेश)

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि सन्मति सन्देश पूज्य कानजीस्वामी की ७३वीं वर्षगांठ के उपलक्ष में विशेषांक प्रकाशित कर रहा है।

पूज्य कानजीस्वामी अहिंसादर्शन के महान प्रचारक, सौम्यमूर्ति, अनेकान्त के पथप्रदर्शक व आज के युग के महान सन्त हैं। सोनगढ़ जाने पर व्यक्ति को जो अपूर्व शान्ति की अनुभूति होती है, वह सचमुच ही आज के विज्ञानवादी युग पर आध्यात्मिकता की विजय है।

पूज्य कानजीस्वामी का सम्यक्त्व का उपदेश मानवमात्र के लिये कल्याणकारी हो, यही भावना है।

मैं आपके प्रयास की हृदय से सफलता चाहता हूँ। ●

क्रान्तिकारी उपदेष्टा

श्री पण्डित पवनकुमारजी शास्त्री, न्यायतीर्थ, तारंगा

श्री पूज्य स्वामीजी इस युग के महान् पुण्यशाली क्रान्तिकारी अध्यात्म धर्म के अद्वितीय उपदेशक हैं। पूज्य स्वामीजी के कारण से मेरे ज्ञान में परिवर्तन हुआ है। मैं करीब १५ वर्ष से सोनगढ़ का साहित्य पढ़ता हूँ। दो बार सोनगढ़ हो आया हूँ, मुझे अपूर्व शान्ति मिली। मैं स्वामीजी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ। स्वामीजी शतायु प्राप्त कर इससे भी अधिक वीतराग धर्म की प्रभावना करें। मैं स्वामीजी के विरोध में प्रकट होनेवाले सभी साहित्य को मँगाकर पढ़ता हूँ। विरोधियों ने स्वामीजी को व उनके साहित्य को ठीक समझा होता तो विरोध नहीं करते। स्वामीजी दिगम्बर धर्म व साहित्य के विरोध में नहीं बोलते हैं तथा न एकान्त से कथन करते हैं। उनकी विवक्षा को समझने की जरूरत है। पूर्ण साहित्य पढ़ने पर सर्व भ्रम दूर हो जायेंगे। ●

पवित्रता की मूर्ति

(श्री नेमीचन्द पाटनी, आगरा)

पूज्यश्री कानजीस्वामी ने जैनजगत में हुए अज्ञान अन्धकार में यथार्थ प्रकाश देकर मुमुक्षुजनों को यथार्थ मार्ग दिखलाया है। वर्तमान कलिकाल में साक्षात् तीर्थंकर अथवा केवली भगवान का तो इस क्षेत्र में सद्भाव है ही नहीं, साथ ही धर्मात्मा जीवों की भी अत्यन्त दुर्लभता है, क्योंकि सम्यक्त्व सहित कोई जीव कहीं से भी मरण करके इस पंचम काल में इस क्षेत्र में उत्पन्न नहीं होता बल्कि सम्यक्त्व का विरोधक अथवा मिथ्यात्वी ही इस क्षेत्र में वर्तमान काल में उत्पन्न होते हैं। अत: मिथ्यात्व की बहुलता के साथ-साथ वर्तमान में धर्मोपदेष्टा भी उसी मिथ्यात्व को पुष्ट करनेवाले सुलभता से मिल जाते हैं। अत: यह जीव अपनी मिथ्या मान्यता को और भी दृढ़ कर लेता है और सन्मार्ग सुनने को मिलने पर भी अत्यन्त निषेध करता है। इस प्रकार वर्तमान में अनादि काल से नहीं किया, ऐसी मिथ्यात्व दशा को छोड़कर सम्यक्त्व प्राप्त करने का पुरुषार्थ महादुर्लभ हो रहा है। ऐसे महान कठिन समय में पूज्यश्री कानजीस्वामी यथार्थ मोक्षमार्ग का स्पष्ट, सरल, सुबोध भाषा में दृढ़ता के साथ आगम, युक्ति, अनुमान एवं स्वानुभव के द्वारा निरूपण करके मुमुक्षु जगत पर अनहद उपकार कर रहे हैं।

महाराजरी पवित्रता की साक्षात् मूर्ति हैं। उनका एक शब्द उनकी आन्तरिक पवित्रता का द्योतक तथा आत्मा के अनुभव के अन्दर से झरता हुआ प्रतीत होता है। देव, शास्त्र, गुरु का यथार्थस्वरूप तथा उनके प्रति अपार, अनन्य भक्ति उनकी आन्तरिक पवित्रता को प्रकाशित करती है, अरिहन्तस्वरूप निज आत्मा की महिमा करते ऐसा मालूम होने लगता है मानो उनकी आत्मा अरिहन्त बनने में संलग्न है। उनकी वाणी के वाक्य 'तू श्रद्धा में तो अरिहंत बन' 'अरिहंत जो कर सकते हैं वही तू भी कर सकता है' 'अरिहंत भी मात्र ज्ञाता दृष्ट ही हैं तो तू भी मात्र ज्ञाता दृष्टा ही हो सकता है' हृदयंगम करना चाहिए।

पूज्य स्वामीजी के द्वारा जैन जगत का महान उपकार हो रहा है, जिसका वर्णन करना असम्भव है। इस पामर सेवक पर तो जो उनका उपकार है, उसका कोई शब्दों में आभार प्रदर्शित करना तथा भवभवान्त में भी बदला चुकाने की सामर्थ्य नहीं है। मात्र यही भावना है कि पूज्य स्वामीजी चिरकाल तक जयवन्त रहकर हम मुमुक्षुओं को यथार्थ मार्ग प्रदर्शित करते रहें ताकि हम सब में उनके साथ ही साथ चरम दशा तक पहुँचने की सामर्थ्य जागृत होकर वृद्धिंगत होती रहे। ●

सम्पादकीय

अनोखा क्रान्तिकारी सन्त

पूज्य श्री कानजीस्वामी एक क्रान्तिकारी सन्त हैं, जिन्होंने जनमानस में नई क्रान्ति को जन्म देकर हजारों मानवों की जीवन दिशा ही बदल दी है। कुछ पुरानी विचारधारा ने उनका विरोध करने का प्रयत्न किया किन्तु वह नगण्य ही रहा, बल्कि जैसे-जैसे उनका विरोध बढ़ता गया, वैसे-वैसे ही उनके भक्तजन भी बढ़ते गये। आज भारत भर में उनके अनुयायी फैले हुए हैं।

वे एक ऐसे क्रान्तिकारी सन्त हैं कि किसी विरोध की परवाह किये बिना या किसी का कोई प्रतिवाद किये बिना जो एक पथ स्वीकार किया था, उस पर एक कुंजर की तरह निर्भीक चले जा रहे हैं। अपने अटल सिद्धांत में किसी भी शक्ति के आगे जरा भी झुकने या समझौता करने को तैयार नहीं हैं। उनकी उस समय भी वही गति थी, जब उनको कोई सहयोग देनेवाला नहीं था। और आज जब उनके भक्त लाखों प्राणी हैं, तब भी वही गति और मति है।

उनकी विचारधारा कोई उनके अपने मस्तिष्क की सूझ नहीं है। मार्ग वही है जो प्राचीनकाल में तीर्थंकर और आचार्य बता गये हैं तथा जो जैनधर्म की आत्मा है, धर्म का प्राण है और मुख्य प्रयोजनभूत प्राथमिक कर्तव्य है।

एक दिन वे इससे विपरीत विचारधारा में प्रभावशाली साधु थे। वहाँ उनकी अनोखी प्रतिष्ठा थी, महत्वपूर्ण प्रभाव था, वे परमात्मा की तरह पूजे जाते थे, उनका एक विशाल भक्त समुदाय था किन्तु उन्हें तो 'ध्रुवसत्य' की खोज करनी थी और वह सत्यपथ उन्हें अनायास मिला, तब वे उसका निश्चय करने के लिए वर्षों एकान्त जंगल में मनन करते रहे और उनके मार्गदर्शी 'समयसार' में से उन्हें जो रहस्य मिला, उसका उन्होंने प्रचार प्रारम्भ कर दिया। उनके पुराने अनुयायी उनकी बात सुनते और उसका आदर करते किन्तु कोई पंथमोह छोड़ने को तैयार नहीं था। परन्तु आपको तो उस ध्रुवसत्य को जीवन में उतारकर उसका प्रचार करना था और तब आप धर्मक्षेत्र में निर्भीक हो कूद पड़े। आपने स्वामी समन्तभद्र और पण्डित टोडरमलजी की तरह शंखनाद फूंकते हुए तुमुल घोष किया।

प्रपूरय धर्मशंखं प्रताडय धर्मदुंदभि:।
प्रसारय धर्मध्वजां धर्मं कुरु धर्मं कुरु।।

यद्यपि बात नई नहीं, वही बात लाखों महापुरुष अपने-अपने युग में कह गये हैं, किन्तु अपनी

चालू मान्यतावाले भाई लोग चीखे, चिल्लाए और बड़ा शोर मचाया। 'धर्म डूबा, धर्म डूबा' के नारे लगाये, अपमान और विरोध किया, मार्ग में आड़े आये किन्तु उनका अपना प्रण था। उनकी धुन थी, उनका अपना दृढ़ संकल्प था। धर्म के अन्दर फैले हुए पोपडमवाद को देखकर उनकी आत्मा काँप उठी और वे जीवित अरमशहीद उठे, एक अंगडाई ली और अपने आपसे कहा –

प्रेरित हुए हो सत्य के विश्वास प्रेम से,
तो धैर्य नियम शौर्य से आगे बढ़े चलो।
कांटे गढ़ेंगे पैर में इकले सहोगे पीर,
उल्टे हँसेंगे लोग तुम्हारी कराह पर।
कुछ गालियाँ भी देंगे पर यह तो स्वभाव है,
छोड़ो उन्हें उन्हीं को, तुम आगे बढ़े चलो।

धन्य है उस क्रान्तिकारी सन्त को, सारी दुनियाँ एक तरफ और वह अकेला एक तरफ। उसने जब अटल संकल्प कर लिया – लोगों को सत्य का दर्शन कराना है तब–

कौन वहाँ बाधक हो सकता,
जहाँ अटल संकल्प महान।
खड़ा हिमालय भी हो पथ में,
हट जाएगा दे व्यवधान।।

फिर क्या था लोगों ने उनकी अनोखी वाणी सुनी, तो उन्हें ऐसा भान हुआ कि ये तो हमारी अपनी बात कह रहे हैं, सर्वज्ञ की वाणी बोल रहे हैं, जो अनोखी और नई सी लगते हुए भी सत्यवाणी सी लगती है। तब लोगों ने वह गले उतारी और उनका सन्मान किया।

उस समय उनके अनुयायी नाममात्र को थे, तो विरोधी गाँव–गाँव में थे किन्तु वे जीवित अमर शहीद सन्त गाँव–गाँव अलख जगाते हुए निकले, तब जनता ने हृदय खोलकर उनकी राह में पलक पावड़े बिछा दिये। कुछ ने विरोध भी किया, हो हल्ला मचाया किन्तु समताभावी सन्त ने यह कुछ भी नहीं देखा कि कहाँ हमारे भक्त हैं और कहाँ हमारे विरोधी। किन्तु वे तो जहाँ से निकले, निर्भय अलख जगाते रहे जिससे आज गाँव–गाँव सत्य अनुयायियों की संख्या बढ़ती जा रही है। उन्होंने सत्य का दर्शन कराया, जीवन को नई दिशा दी और भूले भटके पथिकों को राह दिखाई। ऐसे परमोपकारी सन्त का कोई भी क्या आभार मान सकता है या बदला चुका सकता है, या प्रत्युपकार कर सकता है। बस अपनी श्रद्धा और भक्ति ही व्यक्त कर सकता है। अत: मैं उनकी ७३वीं वर्षगाँठ पर कोटि–कोटि श्रद्धांजलि अर्पित करता हुआ शुभकामना करता हूँ कि वे हजारों वर्ष धर्म–प्रचार करते रहें और उनकी वाणी अमर रहे। ●

यह लघु प्रयास

पूज्यश्री कानजीस्वामी के ७३वीं वर्षगाँठ पर सन्मति सन्देश ने अपने थोड़े से श्रद्धा सुमन चढ़ाने का लघु प्रयास किया है। यद्यपि कुछ साधनों के अभाव से जैसा सजाना चाहिए, इस विशेषांक को हम नहीं सजा सके। उसके अनेक कारण हैं। प्रथम तो जो काम दो माह में होना चाहिए था उसे २० दिन में पूरा करना पड़ा। दूसरे जैन पत्रों के सामने सबसे जबरदस्त समस्या आर्थिक साधन की रहती है। तीसरे दिल्ली जैसी महंगी नगरी में बिना सहयोग के इतना विशाल कार्य सम्पन्न कर सकना असम्भव है। फिर भी कुछ श्रद्धावश एवं भाई बंशीधरजी एम०ए० शास्त्री कलकत्ता की प्रेरणा और सहयोग से जैसा जो कुछ रूखा-सूखा अलोना आध्यात्मिक भोजन रख सके हैं, वह धर्मप्रेमी पाठकों के सामने है। इसमें से जो कुछ स्वादिष्ट हो, वह सब आपका है और जो कुछ बेस्वाद हो वह सब हमारी धृष्टता का प्रयास है। इसके लिए जैसा कुछ बनाना और सजाना चाहते थे, साधनों की कमी से नहीं बना सके। क्योंकि हजारों पाठक बन्धुओं से अभी तक वार्षिक मूल्य ५) भी प्राप्त नहीं हो सका, अत: यह अंक अधिक भी नहीं छपा सके। सिर्फ एक हजार अधिक छपाया है।

जैन समाज का सम्यग्ज्ञान प्रचार जैसे प्रमुख कार्य की तरफ ध्यान कम है, जबकि अपने चालू संस्कारों की तरफ अधिक। फिर भी दूसरे पत्रों की अपेक्षा सन्मति सन्देश से प्रेम की अधिकता देखकर साधनों की कमी में भी उत्साह बढ़ता रहता है। ●

पूज्यश्री गुरुदेव की महती कृपा से

श्री दि० जैन मन्दिरों का निर्माण

पूज्य श्री कानजी के प्रभाव से सौराष्ट्र प्रान्त में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारतवर्ष में धर्म की महान प्रभावना हुई है। सौराष्ट्र में तो २० हजार से अधिक श्वेताम्बर बन्धु दिगम्बर धर्म स्वीकार कर स्वामीजी के परमभक्त बन गये हैं। तथा यहाँ हर स्थान पर दिगम्बर मन्दिरों की स्थापना भी हो चुकी है। स्वामीजी के जीवन परिचय में वींछिया, लाठी, राजकोट, मोरबी, पोरबन्दर और बांकानेर के मन्दिरों का संक्षिप्त विवरण दे चुके हैं। अब आगे कुछ मन्दिरों का विवरण दे रहे हैं –

सुरेन्द्रनगर में २०१० में ५० हजार की लागत से मन्दिर बना। मूल नायक भ० शान्तिनाथ हैं तथा सुमतिनाथ, सीमन्धर भगवान और महावीरस्वामी की प्रतिमाएँ हैं।

सावरकुण्डला में २०१५ में मन्दिर बना। २०१७ में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा हुई। आदिनाथ, शान्तिनाथ और भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमाएँ हैं।

खैरागढ़ (म.प्र.) में २०१५ में शान्तिनाथ दि० जैन मन्दिर २५ हजार की लागत से बनकर प्रतिष्ठा हुई। इसी समय पूज्यश्री की छत्रछाया में २ कुमारिका बहिनों ने ब्रह्मचर्य दीक्षा ली।

जैतपुर (सौराष्ट्र) में २०१५ में ५० हजार की लागत से मन्दिर बना। मूल नायक श्रेयांसनाथ भगवान हैं।

वढ़वाण (सौराष्ट्र) में २००६ में ३६ हजार की लागत से दो मंजिल मन्दिर बना। ऊपर भगवान सीमन्धर स्वामी की प्रतिमा है, नीचे स्वाध्याय भवन है। २०१० में वेदी प्रतिष्ठा हुई।

लींवड़ी (सौराष्ट्र) में २०१४ में ६० हजार की लागत से पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर बना। गुरुदेव के सान्निध्य में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा हुई। जिसमें २७ हजार रुपये खर्च हुआ।

जामनगर (सौराष्ट्र) में २०१७ में कुल २ लाख ७६ हजार रुपये की लागत से मन्दिर निर्माण और पंचकल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई। १५ भाई स्टीमर और हवाई जहाज से 'केन्या' से प्रतिष्ठा में आये थे।

बम्बई, झबेरी बाजार में संवत २०१५ में भव्य मन्दिर की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा हुई थी। जो पूज्य गुरुदेव के सान्निध्य में इतनी प्रभावशाली हुई थी कि बम्बई की जनता उसे याद करती है।

यहाँ पर दूसरा मन्दिर बहुत ही भव्य संगमरमर का बन रहा है।

श्री गोगीदेवी दिग० जैन श्राविका–ब्रह्मचर्याश्रम, सोनगढ़

(इस आश्रम में धर्मात्मा पूज्य बेनश्री–बेनजी की वात्सल्यपूर्ण छाया में करीब २५ बालब्रह्मचारिणी बहिनें रहती हैं, आपका सारा दिन धार्मिक कार्यक्रम में बीतता है। दैनिक कार्यक्रम निम्न प्रकार है।)

सुबह	४। से ५।।	मंगल प्रार्थना
	६।। से ७।।	श्री देव–गुरु–शास्त्र दर्शन–पूजन
	८ से ९	पूज्य गुरुदेव का प्रवचन
दोपहर	१.०० से १।।	शास्त्र स्वाध्याय
	३ से ४	पूज्य गुरुदेव का प्रवचन
	४ से ४।।।	जिनमन्दिर में भक्ति
शाम को	७ से ७।	आरती
	७। से ७।।	धर्मचिन्तन
	७।। से ८।	शास्त्रस्वाध्याय
	८।। से ९।।	पूज्य बेनश्री–बेनजी का वांचन
	९।। से १०।	भक्तिकार्य
	१०। से १०।।	प्रार्थना, चिन्तन

(आश्रम की बहिनों ने मोक्षशास्त्र, द्रव्यसंग्रह, छहढाला, सिद्धांत प्रवेशिका, पंचाध्यायी, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, षट्खण्डागम के कोई कोई भाग, नियमसार आदि के गाथासूत्र, नाटक समयसार आदि कई ग्रन्थों का अध्ययन किया है।)

क्षमा याचना

मैंने तारीख २ और ३ अप्रेल को विद्वान लेखकों को आमन्त्रण पत्र भेज दिये थे, जिसके फलस्वरूप लेख और श्रद्धांजलियाँ इतनी अधिक आ गईं कि जिनसे ऐसा एक विशेषांक और प्रकाशित किया जा सकता था। कुछ सम्माननीय उच्च विद्वानों के लेख अति विलम्ब से आये, अत: उनमें से बहुत से वापिस करने पड़े, कुछ रोकने पड़े और कुछ बिल्कुल संक्षिप्त करने पड़े। अनेक लेख कविताएँ प्रकाशित ही नहीं हो सकीं, अनेक यथास्थान प्रकाशित नहीं कर सके तथा यथासमय सामग्री न मिल सकने से व्यवस्थित विभागवार भी प्रकाशित नहीं कर सके। अत: अपने सम्माननीय विद्वान लेखकों एवं कवियों से इस विवशता के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ। – सं०

सोनगढ़ के सन्त चिरायु हों

श्री दि० जैन मुमुक्षु मण्डल, कलकत्ता

इस बीसवीं सदी के भौतिकताप्रधान युग में सोनगढ़ के सन्त श्री कानजीस्वामी ऐसे महान व्यक्ति हैं जो श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्य के समयसार के अमृत का अपनी वाणी द्वारा भव्यजनों को रसास्वादन करा रहे हैं। इनके उपदेश निश्चय और व्यवहारनय का आश्रय लेते हुए आध्यात्मिकता से ओतप्रोत रहते हैं। इस युग में इनके द्वारा वीतरागता प्रधान जैनधर्म की जो प्रभावना हुई व हो रही है और होगी वह अकथनीय है। इनके शास्त्राधारित सरल उपदेशों से उद्बुद्ध अनेक भव्यजीव अपना आत्मकल्याण कर रहे हैं। इनके उपदेशों का संकलन जैन साहित्य की अनुपम निधि है। इनका आवास स्थान सोनगढ़ – अपने आध्यात्मिक वातावरण से तीर्थक्षेत्रतुल्य हो गया है।

जैनधर्म के महान प्रभावक सोनगढ़ के सन्त आत्मार्थी श्रद्धेय श्री कानजीस्वामी के ७३वें जन्मदिवस पर उनके गुणों एवं उपकारों का स्मरण करते हुए कामना करते हैं कि वे चिरायु हों एवं अपने सरस, सरल एवं आध्यात्मिक उपदेशों से भव्य जीवों का उद्बोधन करते हुए अन्त में निश्रेयस सुख की प्राप्ति करें।

●

अध्यात्ममूर्ति

श्री शान्तिलालजी वनमाली सेठ, एवं श्रीमती दयाकुमारी शान्तिलालजी सेठ, दिल्ली

वर्तमान युग में अध्यात्ममूर्ति श्री कानजी महाराज श्री सन्त शिरोमणि हैं। वे आध्यात्मिक जीवन का जो सन्देश दे रहे हैं – वह अपूर्व है। उन्होंने अध्यात्म की जो त्रिधारा बहाई है, उसमें अवगाहन कर जीवन पुनीत और पवित्र हो सकता है। वे युग-युग जियें और निरन्तर आत्मचिन्तन की प्रेरणा देते रहें, यही मेरी अन्तर्भावना और श्रद्धांजली है।

कार्यालया का पता – ५३५, गांधीनगर, दिल्ली – ३१

प्रकाशक – प्रकाश 'हितैषी' शास्त्री, ५३५, गाँधीनगर दिल्ली, मुद्रक – रूप वाणी प्रिंटिंग हाउस, २३ दरियागंज, दिल्ली

Sanmati Sandesh May 1962
Regd. No. D. 1064

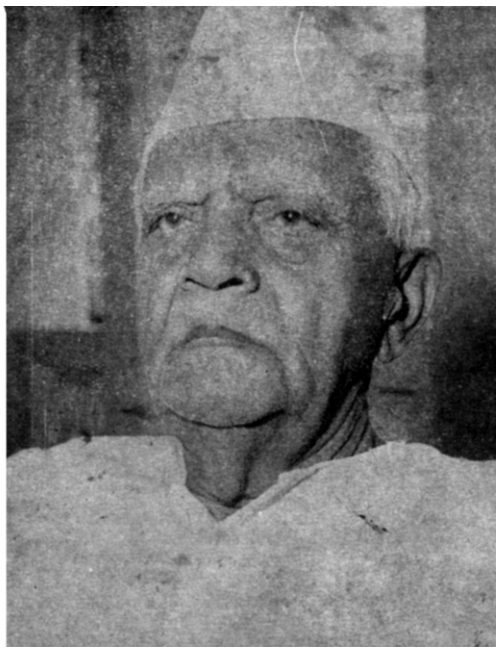

प्रमुख
श्री रामजीभाई वकील

जो सौराष्ट्र के प्रमुख वकील थे। जिनसे महात्मा गाँधीजी और पटेल साहब कानूनी सलाह लेते थे, वही आज मोक्षमार्ग की वकालत कर रहे हैं।

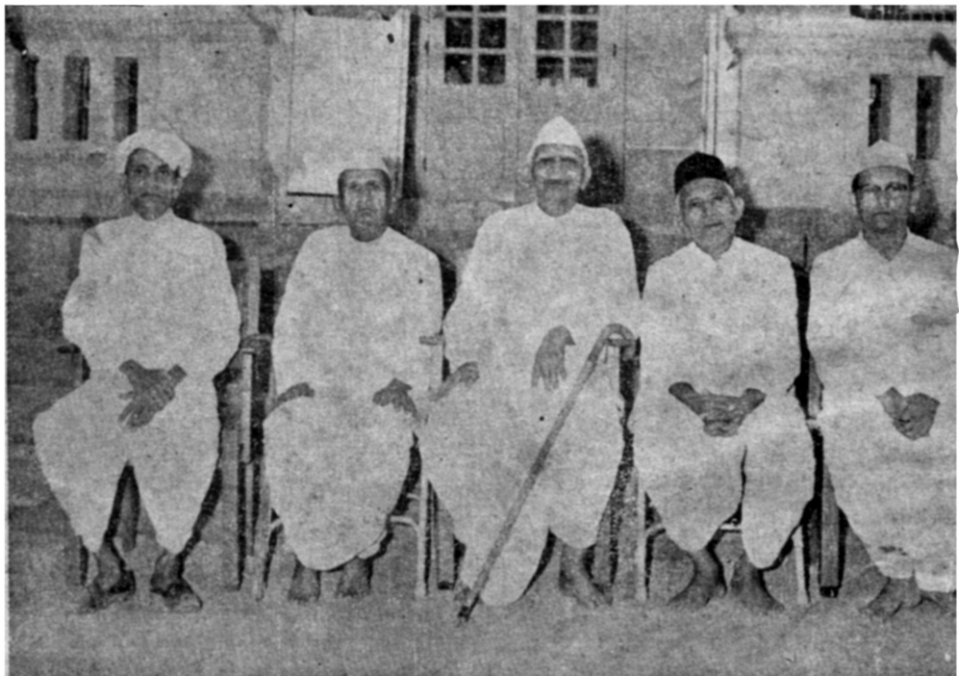

ट्रस्टीगण – (१) श्री प्रेमचन्द मगनलाल (२) श्री नानालाल कालीदास (३) श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी, वकील (प्रमुख) (४) श्री मगनलाल तलकसीभाई (५) श्री लालचन्द अमरचन्द